चुहिया

सलोनी को अभी ठीक से बोलना नहीं आता। एक या दो अक्षर वाले शब्द ही ज़्यादा अच्छे ढंग से बोल पाती है। तीन अक्षर वाले शब्दों को दो अक्षरों में कम करके बोल पाती है या बीच वाला अक्षर बदलकर बोलती है।

चार अक्षर वाले शब्दों को तीन अक्षरों में कम करके बोल पाती है। अपनी कोशिश से वह सही ही बोलती है। उसे अपने आप में भी ऐसा ही लगता है, पर......

अपना नाम उसके मुँह से ऐसे निकलता है, 'सोनी।' भाई सरस का नाम ऐसे निकलता है, 'सस।' कबूतर निकलता है – 'कूतर।' स्कूटर निकलता है – 'कूटर।'

सलोनी कमरे में घूम रही है। कुछ गुनगुना रही है। मुँह बन्द है, पर चल रहा है। उसके बाएँ हाथ में कटोरी थमी है।

भुजिया (बारीक खारे) के कुछ महीन-महीन टुकड़े उसके ओंठों पर चिपके हैं। कुछ टुकड़े फर्श पर बिखर गए हैं। मामा की नजर उस पर पड़ती है, 'यह क्या कर रही हो?'

सलोनी मामा की ओर देखने लगती है। ऐसे, जैसे वे बुद्धू हों।

वे फिर कहते हैं, 'गन्दा कर रही हो?'

'नई!' कहकर सोचती है, 'ये तो एकदम बुद्धू हैं।'

मामा झुककर उसकी आँखों में आँखें डालते हैं। हाथ से जमीन पर बिखरे टुकड़ों की ओर इशारा करते हैं, 'कौन खाएगा इन्हें?'

'चुइया!'

यह कहकर वह फिर अपने काम में लग जाती है। मामा शरमाकर मुस्कुराते हैं। ऐसे, जैसे उसकी तारीफ कर रहे हों।



● रावेन्द्र कुमार 'रवि'
● चित्र : कैलाश दुबे

चिड़ियाघरों की कहानी

जानवरों को पालने और उनको प्यार करने का शौक बहुत पुराने समय से ही चला आ रहा है। प्राचीन मिस्र के राजा अन्य इलाकों के जानवरों को अपने यहाँ लाने के लिए शिकारी भेजते थे। ऐसे जानवरों को पहले विशेष पार्कों में रखा जाता था, जिससे वे अपने आपको मिस्र की जलवायु के अनुसार ढाल सकें। खुशी के अवसरों पर इन जानवरों के जुलूस निकाले जाते थे। हाथियों, ऊँटों और यहाँ तक कि शेरों को भी रथ खींचना सिखाया जाता था। बिल्लियों, चीतों और सिंहों से शिकार कराए जाते थे।

ऐसा कहा जाता है कि लगभग तीन हज़ार साल पहले, मध्य-पूर्व एशिया के देशों पर राज करने वाले, राजा सोलोमन ने हज़ारों हिरन, बाज, तोते, मोर, घोड़े, बंदर आदि पाल रखे थे। वह समय-समय पर पड़ोसी देशों के राजाओं के साथ जानवरों की अदला-बदली भी करता था। लगभग उसी काल में चीन के सम्राट, वेन वांग ने अपने पालतू जानवरों के लिए 1500 एकड़ क्षेत्र में एक बड़ा पार्क बनवाया था। उसे वे 'लिंग-यू' यानी 'बुद्धि का बगीचा' कहते थे। उसमें राज्य के कोने-कोने से इकट्ठे किए गए तरह-तरह के जानवर रखे जाते थे।

साथ ही जीव-जंतु पालने के शौकीन अनेक लोग उस समय भी इन जीवों के बारे में हर बात ध्यान से देखते और उन्हें लिखते थे।

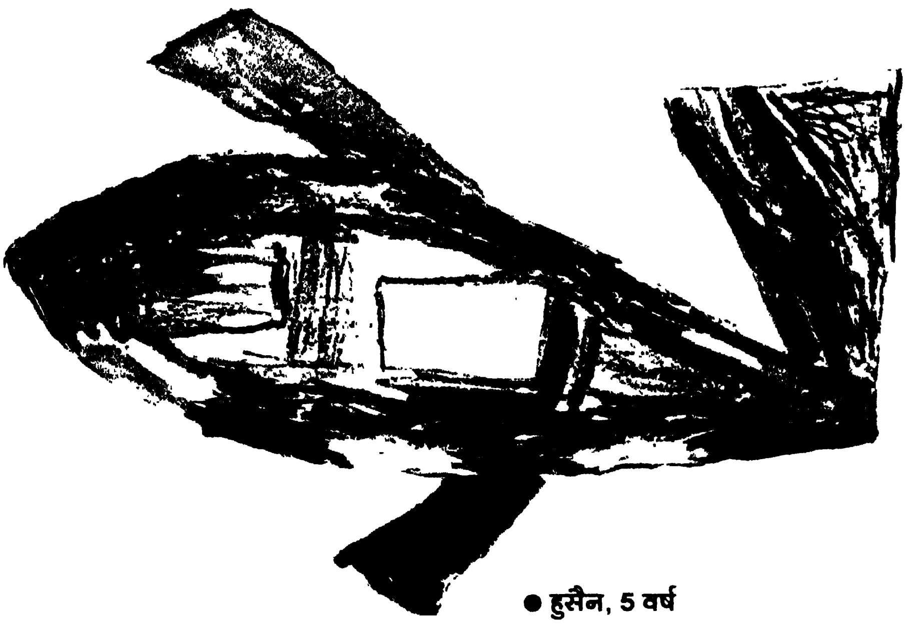
प्राचीन यूनान में भी शासकों और धनवानों को जानवर पालने और उनका अध्ययन करने का शौक था। वहाँ कई सौ साल पहले से ही देश-विदेश के कई किस्मों के जीव-जंतु पाले जाते थे। साथ ही वहाँ के लोगों को जीव-जन्तुओं की स्वाभाविक प्रवृत्ति, गुणों और आदतों के बारे में नई-नई बातें सीखने का मौका मिलता था। इसलिए अरस्तू ने उस समय, आज से लगभग दो हज़ार तीन सौ साल पहले, अपने ग्रंथ 'जानवरों का इतिहास' में जीव-जंतुओं के बारे में लिखा था।

सिकंदर ने अनेक देश जीते थे। वह अपने विजय अभियान के दौरान जीते गए देशों के विचित्र जानवरों को अपने देश यूनान भेजता रहता था। सिकंदर की मृत्यु के बाद उसके राज्य के कई टुकड़े हो गए। उसका एक सरदार, टॉलमी प्रथम के नाम से मिस्र की गद्दी पर बैठा। टॉलमी प्रथम ने ही 'सिकंदरिया' शहर की स्थापना की थी। साथ ही वहाँ उसने एक चिड़ियाघर भी बनाया था। उसमें भारतीय हाथी, सिंह, चीते, तोते, मोर, घोड़े आदि शामिल थे।

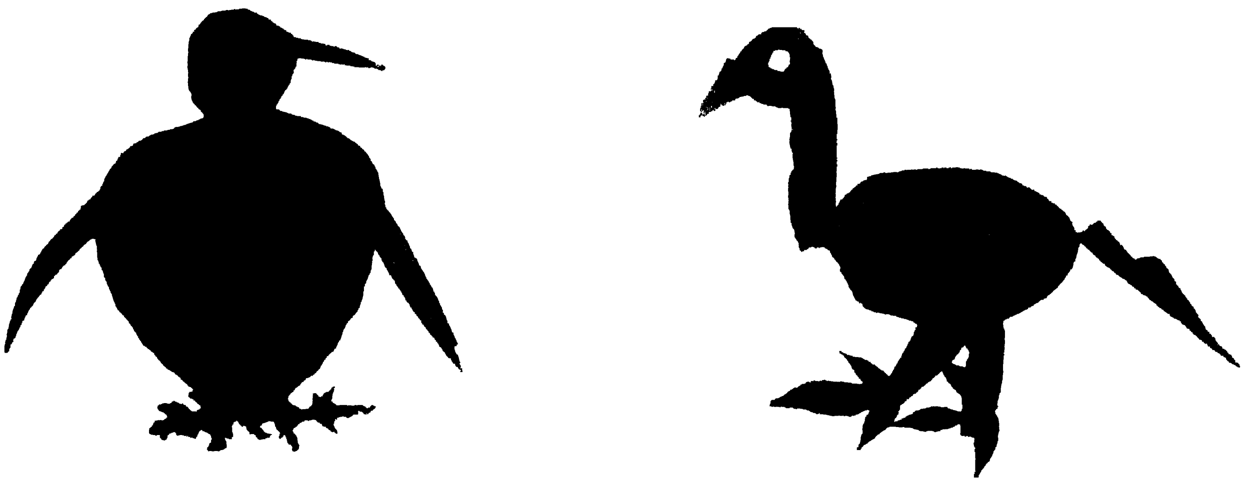
प्राचीन रोम के शासकों को भी जीव-जंतु पालने का शौक था। वे कुछ ऐसा कर दिखाना चाहते थे, जो किसी भी व्यक्ति ने पहले कभी नहीं किया हो। केवल प्रदर्शन के लिए रोम के अनेक अमीर व्यक्तियों ने भी अपने छोटे-छोटे चिड़ियाघर बना रखे थे।

ईसा के जन्म से लगभग सौ वर्ष पहले रोम के एक सरदार, मारकस टेरेनटियस वारो का चिड़ियाघर सबसे बड़ा और सबसे विचित्र था। दरअसल उसमें जानवरों की अपेक्षा पक्षियों की संख्या अधिक थी।





● हुसैन, 5 वर्ष



● चिनियाँ और भारती, भोपाल



● फकरू, चौथी, सतवास, देवास

एकलव्य का प्रकाशन

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष-18 अंक-1 जुलाई 2002



पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता –
एकलव्य
ई-7/453 एच.आई.जी.
अरेरा कॉलोनी,
भोपाल - 462 016
(म.प्र.)
फोन : 463380

कवर का काग़ज़ : यूनीसेफ के सौजन्य से

चंदे की दरें

एक प्रति :	10.00 रुपए
छमाही :	50.00 रुपए
वार्षिक :	100.00 रुपए
दो साल :	180.00 रुपए
तीन साल :	250.00 रुपए
आजीवन :	1000.00 रुपए

सभी में डाक खर्च हम देंगे।

चंदा, मनीऑर्डर/ड्राफ्ट/चेक से एकलव्य के नाम पर भेजें। भोपाल से बाहर के चेक में बैंक चार्ज 15.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

कहानी

कविताएँ

खेल-प्रयोग

हर बार की तरह

और यह भी

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यावसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

इस बार की बात . . .

जुलाई का महीना, फिर से पढ़ाई, किताबें, बस्ते, पेन, पेंसिल और नए-पुराने दोस्त। किसी ने बीते साल की क्लास में खूब सारे नम्बर पाए होंगे तो कोई नम्बर पाने में थोड़ा पीछे रह गया होगा। लेकिन पढ़ाई का मतलब सिर्फ अच्छे नम्बर पाना ही तो नहीं है। तुमने जो कुछ पढ़ा-सीखा है उसमें से कितना अच्छी तरह समझ पाए हो यह ज़्यादा ज़रूरी है। फिर भले ही खूब ढेर सारे नम्बर नहीं मिले तो दुख क्या बात है।

स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद तुम्हारे सामने कई रास्ते होंगे जिनमें से एक या दो को तुम चुनोगे। और जिन्हें तुम चुनोगे वह तुम्हारी इच्छा के अनुसार होगा। बस यहीं पिछले सालों में की गई पढ़ाई काम आएगी। तो आगे तुम्हारी इच्छा जो काम करने की है, उसके हिसाब से अभी से पढ़ाई करना होगी। इसके लिए किसी के ज़ोर देने से काम नहीं चलेगा। बल्कि तुम्हें खुद ही सोचना है।

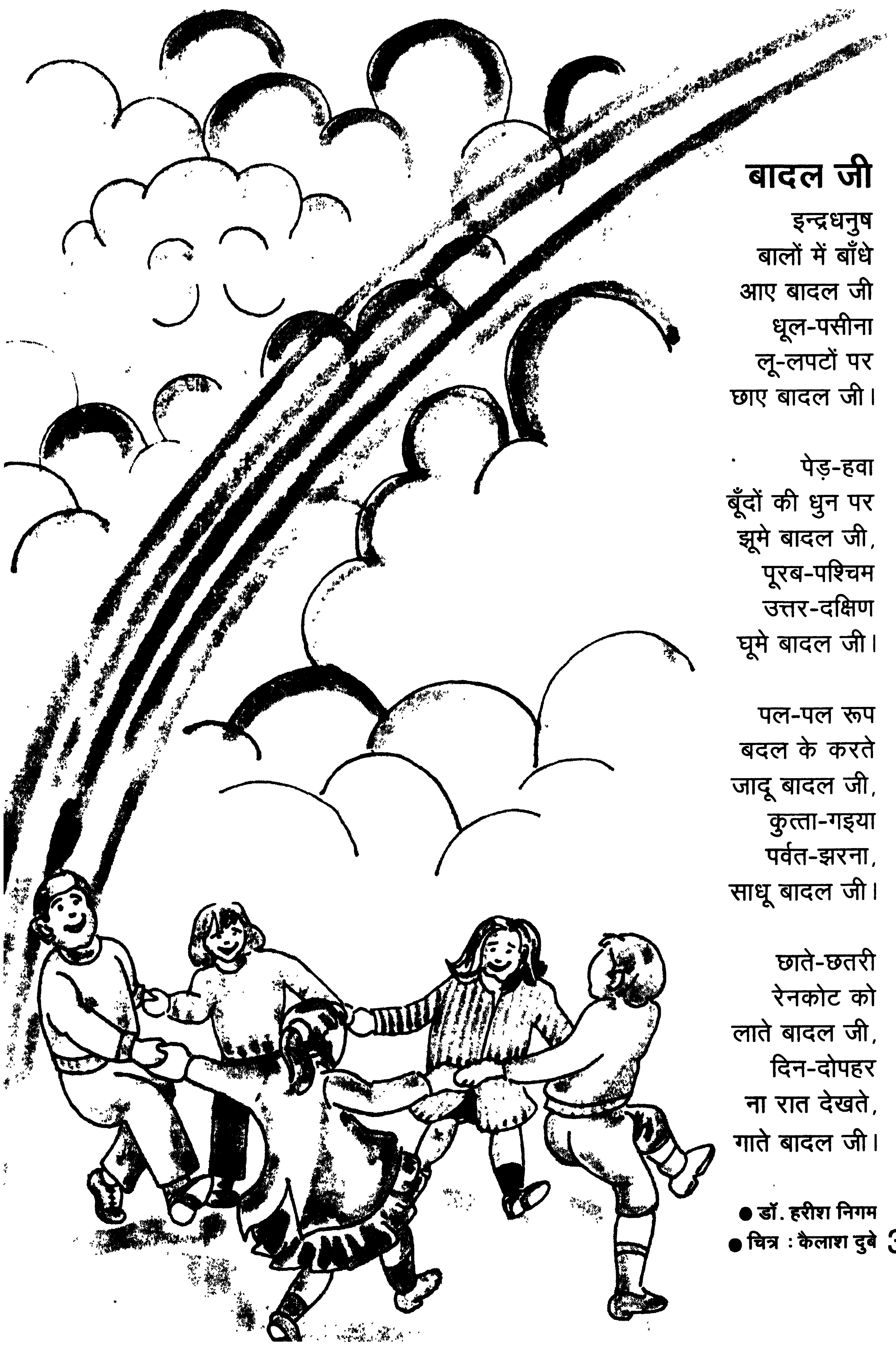
बस तो जुट जाओ पढ़ाई में, और हाँ साथ-साथ में अपने आसपास की घटनाओं पर भी सोच-विचार करते रहना।

और, इस बार चकमक में जो कुछ पढ़ोगे उस पर अपनी राय हमें ज़रूर लिखना।



पिछला यानी मई-जून का अंक चकमक का 200 वाँ अंक था। बच्चों के एक कार्यक्रम में बच्चों ने ही 200वें अंक का विमोचन किया। उसी का एक चित्र।

-चकमक



बादल जी

इन्द्रधनुष
बालों में बाँधे
आए बादल जी
धूल-पसीना
लू-लपटों पर
छाए बादल जी।

पेड़-हवा
बूँदों की धुन पर
झूमे बादल जी,
पूरब-पश्चिम
उत्तर-दक्षिण
घूमे बादल जी।

पल-पल रूप
बदल के करते
जादू बादल जी,
कुत्ता-गइया
पर्वत-झरना,
साधू बादल जी।

छाते-छतरी
रेनकोट को
लाते बादल जी,
दिन-दोपहर
ना रात देखते,
गाते बादल जी।

● डॉ. हरीश निगम
● चित्र : कैलाश दुबे



वर्षा



जितेंद्र पलाश्या, सतवास, देवास, म. प्र.

वर्षा के रूप अनेक
कई अनोखे रूप धरती के
कभी खुशी से है यह आती
कभी क्रोध में है बह जाती

जल में तो है इतनी शक्ति
रोक सके न कोई हस्ती
प्रलय मचा दे, महल गिरा दे
चट्टानों को गले लगा ले

काले बादल छाते जाएँ
वर्षा का है संदेश सुनाएँ
रिमझिम-रिमझिम पानी बरसे
धरती की प्यास बुझाएँ

सागर में मिल एक हो जाए
अन्तर नज़र न आए
वर्षा के रूप अनेक

● सुरेन्द्र कुमार वैष्णव, आठवीं, मकरेड़ा, राजस्थान



● नीलेश, सतवास, देवास, म. प्र.



ऐसे थे हमारे गुरुजी

जब मैंने कक्षा छठवीं में प्रवेश किया तब श्री एस.डी. गौर से परिचय हुआ। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें थीं। पेंट-शर्ट पहनते थे। उनका व्यवहार बहुत अच्छा था। पर जब वह हमसे कुछ पूछते तो पिटाई निश्चित। वह अक्सर हिन्दी में विषय सूची पूछते थे। उनका विषय हिन्दी और सामाजिक अध्ययन था। जब किसी दिन सूची पूछी समझो पिटाई हुई। हमारे यहाँ शनिवार को बाज़ार लगता तो वह कहते यदि सूची याद नहीं करोगे तो तख्ती बनवाकर गले में लटकाकर बाज़ार में रैली निकलवाऊँगा और यदि किसी ने पूछा यह क्या हो रहा है तो कहूँगा कि न याद करने का यह परिणाम है। मगर जब उनका मूड अच्छा रहता तब खूब अच्छी बातें बताते। किसी भी दिन कुछ शब्द ब्लैकबोर्ड पर लिखवा लेते फिर स्वयं उनका अर्थ लिख देते।

वे हमें हिन्दी और सामाजिक अध्ययन बहुत अच्छे ढंग से पढ़ाते थे। उनका कहना था कुछ रटने से परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होगे। उत्तीर्ण होने के लिए लगन, मेहनत करना चाहिए। पर वह मारने में प्रसिद्ध थे। परन्तु उनकी मार की हमें कुछ आदत सी पड़ गई थी। उनका हम कभी बुरा नहीं मानते थे। उनका कहना था– मेहनत करके उत्तीर्ण होना, नकल से नहीं।

वे बालों और नाखूनों पर चिढ़ते थे। अक्सर नाखून कटवा देते थे।

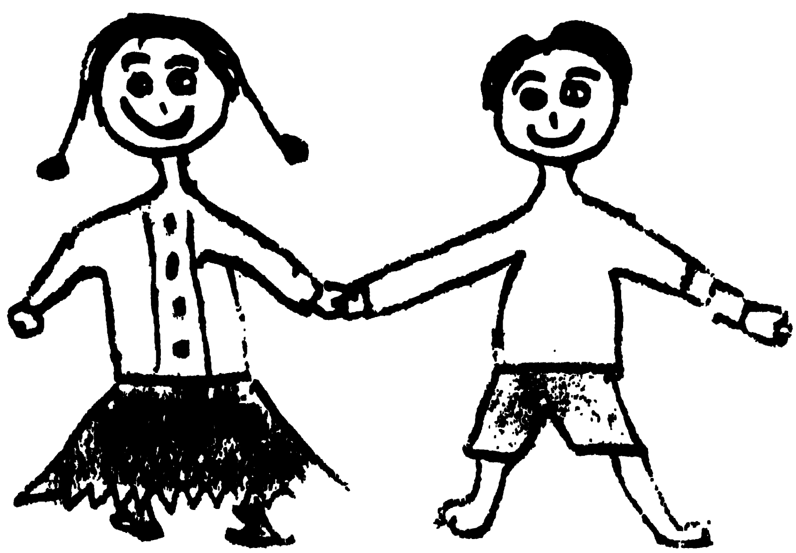
हम जब कक्षा आठवीं में आए तो एक नई प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी, वह थी श्लोक की। श्लोक को लिखो और याद न हो तो मुर्गा बनना पड़ता था। फिर उन श्लोक को ब्लैकबोर्ड पर लिखना पड़ता था। सर जुलाई 2001 में रिटायर हो गए। उनकी अभी भी हमें बहुत याद आती है। उन्होंने मुझसे कहा था कि दसवीं एक झटके में उत्तीर्ण कर लेना। मैं उनके कहे अनुसार मन लगाकर पढ़ रहा हूँ और उनकी आज्ञा का पालन करूँगा।

● पवन कुमार मालवीय, नवमीं, हिरनखेड़ा, होशंगाबाद, म. प्र.

अजब सवेरा

उठा सुबह तो
मैंने पाया
अजब सवेरा आया
सारी चिड़ियाँ भों..भों. करतीं,
चीं..चीं.. कुत्तों को करते पाया।
अजब सवेरा आया।
बिल्ली रानी करती गुटरगूँ
कबूतर ने म्याऊँ.. म्याऊँ कर
उसे भगाया
अजब सवेरा आया।

●वीरेश सहगल, पहली, बीकानेर, राजस्थान



फहीम, सतवास, देवास, म. प्र.



मेरा पन्ना



● फहीम खाँ, सतवास, देवास, म. प्र.

बरखा आई, बरखा आई

बरखा आई, बरखा आई
झिलमिल, झिलमिल बूँदें लाई
आसमान में उठे बरखा
गड़-गड़ आवाज आई।
ताल, तलैया लगे छलकने,
खेतों में फसलें लहराई।
बरखा आई बरखा आई
धरती ने चुनरी ओढ़ी है
बाग-बगीचे महक उठे हैं।
किसान के चेहरे पे
रौनक लौट आई
बरखा आई, बरखा आई।

● अनिकेत श्रीवास्तव (जगह नहीं लिखी)

मैंने झूठ बोला

जब मेरी गणित की कॉपी मिली तो मैं हैरान रह गया। मेरे नम्बर बहुत कम आए थे। कॉपी में मैंने देखा कि हर प्रश्न में नम्बर कटे हैं। मैं सोच रहा था कि मेरे 40 में से 30 के आसपास आएँगे। और 35 तक भी आ सकते हैं। लेकिन जब कॉपी देखी तो उसका उल्टा ही हुआ।

कॉपी देखने के बाद मैंने सोचा कि नम्बर बहुत कम आए हैं। इसलिए आज ही बता दूँगा। फिर सोचा कि पापा घर पर बहुत डाँटेंगे। मम्मी ने हज़ारों धमकियाँ पहले से दे रखी थीं।

फिर मैंने सोचा कि पापा मुझे बुक-फेयर नहीं ले जाएँगे। और अगर मैंने बुक-फेयर में किसी पुस्तक की माँग की तो कहेंगे कोर्स की किताब पढ़ी नहीं जाती, दूसरी बुक पढ़ोगे।

मैंने सोचा कि अगर कोई और कॉपी मिलती है और उसमें अच्छे नम्बर होते हैं तो मैं नम्बर बताऊँगा। इतिहास की कॉपी मिली। उसमें मेरे नम्बर सबसे अधिक थे। लेकिन मैं उन नम्बरों से खुश नहीं था क्योंकि मैंने गणित में बहुत मेहनत की थी और यह हाल रहा।

जब मैं घर आया तो जानता था कि मम्मी का तुरंत फोन आएगा। हमेशा की तरह फोन आया और जब मम्मी ने पूछा कि कोई कॉपी मिली तो मेरे मुँह से नहीं निकल गया।

फोन रखने के बाद मैंने सोचा कि मैं पापा-मम्मी को किस मुँह से नम्बर बताऊँगा। अंत में मैंने यह फैसला किया कि बुक-फेयर से आने के बाद बताऊँगा। इसलिए मुझे झूठ बोलने की ज़रूरत पड़ी।

जल्दी नम्बर बताने के परिणाम और झूठ बोलने के परिणाम मुझे एक जैसे लगने लगे। दोनों में से एक चीज़ करनी थी। मैंने प्रण किया आगे से कभी झूठ नहीं बोलूँगा।

● अचिन्त्य शर्मा, दिल्ली

हाथी

एक था हाथी
वह बन गया मेरा साथी,
उसके थे लम्बे बड़े कान,
और नाखून थे लम्बे लमबार।
सूँड से लेता था वह हाथों का काम
गन्ने और केलों का चारा खाकर
बन गया था बहुत बलवान।
अपने लम्बे दाँतों से कर देता वह
शेर का काम तमाम।
करता था मुझसे बहुत प्यार
और घुमाता था मुझे
अपनी पीठ पर सवार।
एक था हाथी
और वह बन गया
मेरा प्यारा-सा जीवन साथी।

● सारांश महतानी, पाँचवीं, चंडीगढ़

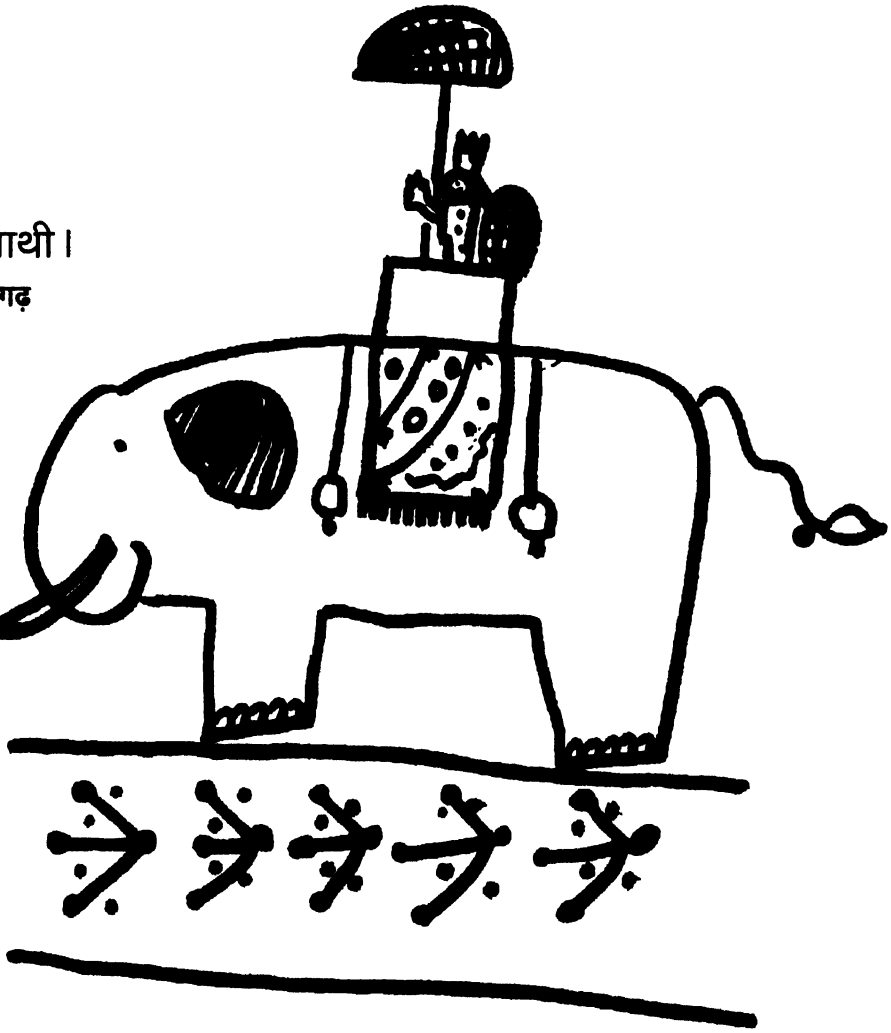
गणित की पहेलियाँ

एक रुपए के नीबू दो,
कितने के होंगे नीबू सौ।

पच्चीस रुपए में पेन मिलते पाँच,
बताओ कितने के होंगे सात।

एक सौ बीस हैं कुल गाय और भैंस,
सत्तर भैंसें चली गईं कितने गायें शेष।

● रामचन्द्र राठौर, शाजापुर, म.प्र.



सखी चावला, भोपाल, म.प्र.



एक दुर्घटना

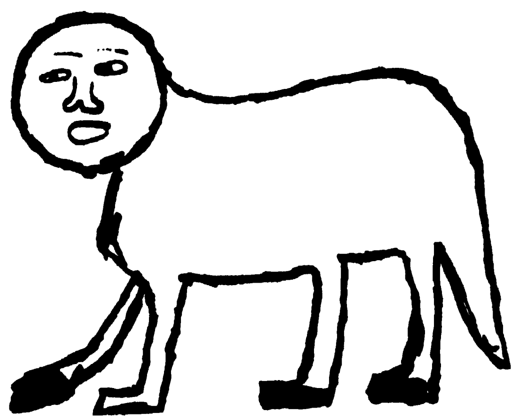
यह एक दुर्घटना है जो मेरे साथ तीन साल पहले घटी। तब मैं सातवीं कक्षा में पढ़ती थी। यह दुर्घटना टैम्पो के पलटने से हुई थी। मैं और मेरे साथ के बच्चे उस टैम्पो से स्कूल जाते थे। वह टैम्पो चालक टैम्पो एक मोड़ पर बहुत तेज़ गति से चलाता था। कुछ बच्चे उसे टैम्पो तेज़ चलाने को कहते पर मैं और मेरी कुछ सहेलियाँ उसे मना करते। लेकिन वो हमारी बात नहीं सुनता था। और अचानक एक दिन वह टैम्पो पलट गया और बहुत से बच्चों को चोट लगी। जिसमें मुझे सिर में चोट आई थी। और मुझे चार टाँके लगे थे। इस कारण से मैं अपने स्कूल में चल रहे कार्यक्रमों में भाग नहीं ले पाई थी। इस दुर्घटना को मैं अगर भुलाना भी चाहती तो नहीं भुला पाती।

● रूपल पटेल, दसवीं, देवास, म.प्र.

सफेद चूहा और काला चूहा

एक सफेद चूहा और एक काला चूहा था। दोनों अपनी गुफा में जा रहे थे तो एक बिल्ली ने सफेद चूहे को पकड़ लिया। तो काला चूहा बोला कि मेरे दोस्त को छोड़ दो। तो बिल्ली बोली कि मेरे लिए दूध ला। चूहा गाय के पास गया। चूहा गाय से कहने लगा कि गाय..गाय मुझे दूध दे। तो गाय बोली मेरे लिए घास ला। तो चूहा किसान के पास गया, किसान...किसान मुझे घास दे। तो किसान बोला, कि मेरे लिए शक्कर ला। तो चूहा गया सेठ के पास, सेठ...सेठ मुझे शक्कर दे। तो सेठ बोला कि मेरे घर से सारे चूहे निकाल दे। चूहा बोला, चलो दोस्त मेरे साथ, मेरी गुफा में। तो सब चूहे निकल पड़े। तो सेठ ने शक्कर दे दी और किसान ने घास दे दिया और गाय ने दूध दे दिया। और चूहे ने दूध बिल्ली को दे दिया। बिल्ली ने चूहे को छोड़ दिया। और सब साथ अपनी गुफा में घुस गए।

● प्रिती बाला, सातवीं, बालागुड़ा, मंदसौर, म. प्र.



● विकास, सतवास, देवास, म.प्र.

एक कहानी

एक था भालू
वह था चालू।
उसने सोचा
चलकर कुछ खा लूँ।
इतने में आया
खेत का मालिक कालू।
भालू ने सोचा,
अब मैं अपने आप को बचा लूँ॥

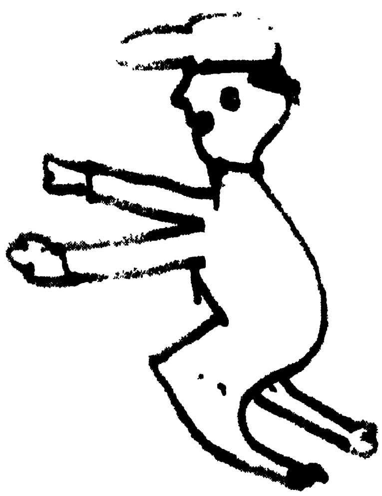
● जितेन्द्र कुमार गुप्ता, आठवीं (जगह नहीं लिखी)

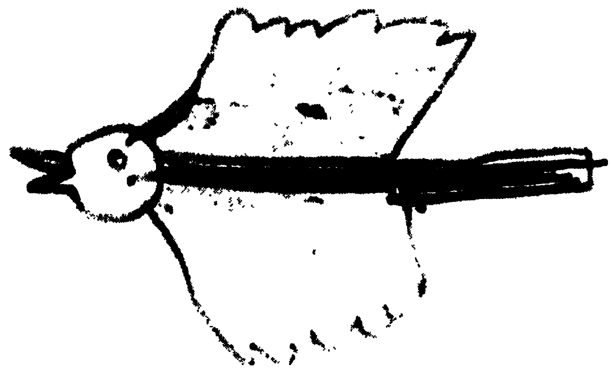


प्यारे पक्षी

प्यारे-प्यारे पक्षी आते
मेरे घर वे रोज़ मँडराते।
खाते हैं वे रोज़ खाना
पड़ता है मुश्किल से लाना।
मैं उनको रोज़ दाना देती
कुछ नहीं उनसे वापस लेती।
फिर मैं कहती अब चले जाओ
जल्दी से कल वापस आओ॥

● **खंजन देसाई, तीसरी, बड़ौदा, गुजरात**





अंकित हरियाले, सतवास, देवास, म. प्र.

तोता

मेरे घर पर एक तोता आया था। वह तार के छोटे पिंजरे में था। तोता थोड़ा बड़ा था। उस पिंजरे में वह चल नहीं पाता था। उसके पंख भी बड़े थे। हम फिर बड़ा पिंजरा लाए। उसके पंख भी थोड़े छोटे कर दिए थे। उसको पिंजरे के अंदर डाल दिया। उसको खाने के लिए हमने टमाटर मिर्ची आदि दिया। वह भागने के लिए अपने पैरों की मदद से पिंजरा खोलना चाहता था।

एक दिन वह अपना सिर पिंजरे से रगड़ रहा था। फिर उसके सिर पर चोट लग गई। मैंने उसके सिर पर दवाई लगा दी। वह बहुत उदास हो गया था। मैंने एक दिन पिंजरा खोला तो वह नीचे भाग गया। फिर उसे पकड़ कर लाई। उसने मुझे काटना चाहा लेकिन मैंने उँगली हटा ली। उसने उड़ने की बहुत कोशिश की लेकिन उसके पंख छोटे भी थे, और मैंने उसे पकड़ भी रखा था। वह दूसरे दिन सुबह ही मर गया।

● **अमृता दुबे, पाँचवीं, देवास, म. प्र.**

आज भी चकमक पढ़ता हूँ।

ये बात कोई सौ साल पुरानी नहीं। सिर्फ 17 साल पहले की है। जुलाई, 198 एकलव्य भोपाल से बच्चों के लिए एक बाल विज्ञान पत्रिका चकमक निकलना शुरु उस समय मैं छठवीं कक्षा में पढ़ता था। जब मैं सातवीं कक्षा में पहुँचा तो चकमक प स्कूलों में मिलना शुरू हुई। हमारे स्कूल में भी चकमक आती थी व सिर्फ 1 रु ही प्राप्त हो जाती थी। मैं भी 1रुपए में चकमक खरीदने लगा। उस समय घर से 1 र मिलना भी कठिन था। पापाजी किताबों के लिए तो पैसे नहीं देते थे। पर मेरे आ का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने चकमक खरीदने के लिए पैसे देने की हाँ क

मैं चकमक खरीदता और पढ़ता। उस समय एक धारावाहिक 'आश्चर्य लो एलिस' चकमक में आता था। वह बड़ा ही मज़ेदार लगता। मुझे तो ऐसा लगता थ एलिस के साथ मैं भी आश्चर्य लोक में पहुँच गया। माथापच्ची के प्रश्न हम आप एक-दूसरे साथियों से पूछते व हल करते। कहानियाँ भी मज़ेदार लगती थीं। हम चक पत्रिका को पाकर खुश थे। क्योंकि एक तो हमारे शिक्षक ही से हमें खरीदना होता दूसरा घर में भी कोई कुछ नहीं कहता था और सबसे बड़ी बात कि चकमक में मज़े कहानी, कविता पढ़ने को व बहुत कुछ करने को मिलता था।

लेकिन यह खुशी ज़्यादा दिनों तक बनी नहीं रही। कुछ दिनों तक तो ह शिक्षक चकमक देते रहे लेकिन उसके बाद चकमक स्कूल में तो आ जाती। पर हम चकमक लेने पहुँचते तो सर कहते खाने की छुट्टी में देंगे। जब छुट्टी में पहुँ तो कहते की पूरी छुट्टी के समय देंगे। और जब पूरी छुट्टी का समय आता तो व कल ले लेना, जान मत खाओ। उस समय मुझे हमारे शिक्षक पर बहुत गुस्सा आ था। लेकिन हम कुछ कर नहीं सकते थे।

फिर जैसे बड़ी कक्षाओं में पहुँचने लगे। चकमक पत्रिका मिलना बंद हो गई। सन् 1990 अप्रैल में एकलव्य ने हमारे शहर परासिया में पुस्तकालय खोला मज़ेदार बात यह कि इस पुस्तकालय को चलाने की ज़िम्मेदारी मुझे मिली। चक पढ़ने का सिलसिला फिर चल निकला। और साथ ही कई और किताबें व पत्रिका प भी शुरू हो गया।

आज भी इतने सालों बाद मैं चकमक पढ़ता हूँ व अन्य लोगों को इसके बा जानकारी देता हूँ। मुझे लगता है कि हर बच्चे को चकमक पढ़ना चाहिए और सि चकमक ही नहीं और कई तरह की किताबें व पत्रिकाएँ भी पढ़ना चाहिए। क्योंकि कि हमें बहुत कुछ देकर ही जाती हैं। हमसे कुछ लेती नहीं हैं।

कार्तिक श
(कार्तिक एकलव्य के परासिया केंद्र में कई वर्षों से जुड़े रहे
आजकल एकलव्य के प्रकाशन समूह में काम करते

मैं चाहता हूँ बच्चों की तरह चित्र बनाना

अक्सर और अधिकतर बच्चों को अपनी पेण्टिंग का विषय बनाया है। उस की खास वजह है, वह यह कि मैं अपने चित्रों को सच्चाई के साथ सुन्दर भी बनाना :ता हूँ। जब भी मैं बच्चों को देखता हूँ तो उनकी हँसी में, उनके बोलने में, उनके ाने में, उनकी चाह में मुझे इतनी शुद्धता-निर्मलता लगती है जिसे महसूस भर किया सकता है।

दुनिया का हर बच्चा चित्र बनाता है। 'चिड़िया', 'फूल', 'छोटा-सा घर', 'पहाड़', ी', 'सूरज' – किसने सिखाया है उन्हें यह सब बनाना। मुझे लगता है कि सारी ाया को बच्चा हो जाना चाहिए या फिर बच्चे को बच्चे की तरह बड़ा होने देना चाहिए।

'पॉबलो पिकासो' ने कहा था – मैं बड़ों की तरह चित्र तो बना लेता हूँ लेकिन चों की तरह कभी बना नहीं पाया।

मैं भी चाहता हूँ बच्चों की तरह चित्र बनाना।

किशोर उमरेकर

(किशोर एक जाने-माने चित्रकार हैं।)

चकमक-सा दूजा दोस्त नहीं

आज मेरी आयु 24 वर्ष हो गई है, मुझे चकमक-सा दूजा दोस्त नहीं मिला। आज भी मुझे याद है। एक बार मैं अजब-सी उलझन लिए एक पत्रिका लेकर शोभा मौसी जी के पास पहुँचा। शोभा मौसी एकलव्य में कार्यरत हैं। मेरे हाथ में एक किताब, एक कागज़ और एक कार्बन था। मैं कार्बन से चित्र बनाने का प्रयास कर रहा था।

मौसी जी ने कहा, तुम कुछ बनाना, कुछ गढ़ना चाहते हो तो मैं तुम्हें एक किताब देती हूँ। वह किताब थी चकमक। तभी से चकमक से दोस्ताना रिश्ता बरकरार है। चकमक हमारे स्कूल के बच्चे, बाल पंचायत के बच्चे और कुछ बड़े भी पढ़ते हैं। बच्चे चकमक पर आधारित गतिविधियाँ करते हैं। हम अपना दीवार अखबार भी तैयार करते हैं।

चकमक में बच्चों की रचनाएँ और चित्र छपते हैं। इससे जो खुशी मिलती है उसका कोई सानी नहीं है। चकमक से जुड़ा यह दोस्ताना रिश्ता दिन ब दिन मज़बूत होता जा रहा है। चकमक से ये साथ सदा बना रहे, यही दुआ है।

नवीन भंवर, धार

(नवीन बचपन से चकमक पढ़ता था और अब धार में बच्चों के बीच उनके अधिकारों के लिए काम करता है।)

आज भी चकमक पढ़ता हूँ।

ये बात कोई सौ साल पुरानी नहीं। सिर्फ 17 साल पहले की है। जुलाई, 1985 स एकलव्य भोपाल से बच्चों के लिए एक बाल विज्ञान पत्रिका चकमक निकलना शुरू हुई। उस समय मैं छठवीं कक्षा में पढ़ता था। जब मैं सातवीं कक्षा में पहुँचा तो चकमक पत्रिका स्कूलों में मिलना शुरु हुई। हमारे स्कूल में भी चकमक आती थी व सिर्फ 1 रुपए में ही प्राप्त हो जाती थी। मैं भी 1रुपए में चकमक खरीदने लगा। उस समय घर से 1 रुपया मिलना भी कठिन था। पापाजी किताबों के लिए तो पैसे नहीं देते थे। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने चकमक खरीदने के लिए पैसे देने की हाँ कर दी।

मैं चकमक खरीदता और पढ़ता। उस समय एक धारावाहिक 'आश्चर्य लोक में एलिस' चकमक में आता था। वह बड़ा ही मज़ेदार लगता। मुझे तो ऐसा लगता था कि एलिस के साथ मैं भी आश्चर्य लोक में पहुँच गया। माथापच्ची के प्रश्न हम आपस में एक-दूसरे साथियों से पूछते व हल करते। कहानियाँ भी मज़ेदार लगती थीं। हम चकमक पत्रिका को पाकर खुश थे। क्योंकि एक तो हमारे शिक्षक ही से हमें खरीदना होता था। दूसरा घर में भी कोई कुछ नहीं कहता था और सबसे बड़ी बात कि चकमक में मज़ेदार कहानी, कविता पढ़ने को व बहुत कुछ करने को मिलता था।

लेकिन यह खुशी ज़्यादा दिनों तक बनी नहीं रही। कुछ दिनों तक तो हमारे शिक्षक चकमक देते रहे लेकिन उसके बाद चकमक स्कूल में तो आ जाती। पर जब हम चकमक लेने पहुँचते तो सर कहते खाने की छुट्टी में देंगे। जब छुट्टी में पहुँचते तो कहते की पूरी छुट्टी के समय देंगे। और जब पूरी छुट्टी का समय आता तो कहते कल ले लेना, जान मत खाओ। उस समय मुझे हमारे शिक्षक पर बहुत गुस्सा आता था। लेकिन हम कुछ कर नहीं सकते थे।

फिर जैसे बड़ी कक्षाओं में पहुँचने लगे। चकमक पत्रिका मिलना बंद हो गई। फिर सन् 1990 अप्रैल में एकलव्य ने हमारे शहर परासिया में पुस्तकालय खोला और मज़ेदार बात यह कि इस पुस्तकालय को चलाने की ज़िम्मेदारी मुझे मिली। चकमक पढ़ने का सिलसिला फिर चल निकला। और साथ ही कई और किताबें व पत्रिका पढ़ना भी शुरू हो गया।

आज भी इतने सालों बाद मैं चकमक पढ़ता हूँ व अन्य लोगों को इसके बारे में जानकारी देता हूँ। मुझे लगता है कि हर बच्चे को चकमक पढ़ना चाहिए और सिर्फ चकमक ही नहीं और कई तरह की किताबें व पत्रिकाएँ भी पढ़ना चाहिए। क्योंकि किताबें हमें बहुत कुछ देकर ही जाती हैं। हमसे कुछ लेती नहीं हैं।

कार्तिक शर्मा

(कार्तिक एकलव्य के परासिया केंद्र में कई वर्षों से जुड़े रहे हैं। आजकल एकलव्य के प्रकाशन समूह में काम करते हैं।)

चकमक
मई-जून, 2002

मैं चाहता हूँ बच्चों की तरह चित्र बनाना

मैंने अक्सर और अधिकतर बच्चों को अपनी पेण्टिग का विषय बनाया है। उस की एक खास वजह है, वह यह कि मैं अपने चित्रों को सच्चाई के साथ सुन्दर भी बनाना चाहता हूँ। जब भी मैं बच्चों को देखता हूँ तो उनकी हँसी में, उनके बोलने में, उनके देखने में, उनकी चाह में मुझे इतनी शुद्धता-निर्मलता लगती है जिसे महसूस भर किया जा सकता है।

दुनिया का हर बच्चा चित्र बनाता है। 'चिड़िया', 'फूल', 'छोटा-सा घर', 'पहाड़', 'नदी', 'सूरज' – किसने सिखाया है उन्हें यह सब बनाना। मुझे लगता है कि सारी दुनिया को बच्चा हो जाना चाहिए या फिर बच्चे को बच्चे की तरह बड़ा होने देना चाहिए।

'पॉबलो पिकासो' ने कहा था – मैं बड़ों की तरह चित्र तो बना लेता हूँ लेकिन बच्चों की तरह कभी बना नहीं पाया।

मैं भी चाहता हूँ बच्चों की तरह चित्र बनाना।

किशोर उमरेकर

(किशोर एक जाने-माने चित्रकार हैं।)

चकमक-सा दूजा दोस्त नहीं

आज मेरी आयु 24 वर्ष हो गई है, मुझे चकमक-सा दूजा दोस्त नहीं मिला। आज भी मुझे याद है। एक बार मैं अजब-सी उलझन लिए एक पत्रिका लेकर शोभा मौसी जी के पास पहुँचा। शोभा मौसी एकलव्य में कार्यरत हैं। मेरे हाथ में एक किताब, एक कागज़ और एक कार्बन था। मैं कार्बन से चित्र बनाने का प्रयास कर रहा था।

मौसी जी ने कहा, तुम कुछ बनाना, कुछ गढ़ना चाहते हो तो मैं तुम्हें एक किताब देती हूँ। वह किताब थी चकमक। तभी से चकमक से दोस्ताना रिश्ता बरकरार है। चकमक हमारे स्कूल के बच्चे, बाल पंचायत के बच्चे और कुछ बड़े भी पढ़ते हैं। बच्चे चकमक पर आधारित गतिविधियाँ करते हैं। हम अपना दीवार अखबार भी तैयार करते हैं।

चकमक में बच्चों की रचनाएँ और चित्र छपते हैं। इससे जो खुशी मिलती है उसका कोई सानी नहीं है। चकमक से जुड़ा यह दोस्ताना रिश्ता दिन ब दिन मज़बूत होता जा रहा है। चकमक से ये साथ सदा बना रहे, यही दुआ है।

नवीन भंवर, धार

(नवीन बचपन से चकमक पढ़ता था और अब धार में बच्चों के बीच उनके अधिकारों के लिए काम करता है।)

आज भी चकमक पढ़ता हूँ।

ये बात कोई सौ साल पुरानी नहीं। सिर्फ 17 साल पहले की है। जुलाई, 1985 एकलव्य भोपाल से बच्चों के लिए एक बाल विज्ञान पत्रिका चकमक निकलना शुरू हु उस समय मैं छठवीं कक्षा में पढ़ता था। जब मैं सातवीं कक्षा में पहुँचा तो चकमक पत्रि स्कूलों में मिलना शुरू हुई। हमारे स्कूल में भी चकमक आती थी व सिर्फ 1 रुपए ही प्राप्त हो जाती थी। मैं भी 1रुपए में चकमक खरीदने लगा। उस समय घर से 1 रुप मिलना भी कठिन था। पापाजी किताबों के लिए तो पैसे नहीं देते थे। पर मेरे आश्च का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने चकमक खरीदने के लिए पैसे देने की हाँ कर द

मैं चकमक खरीदता और पढ़ता। उस समय एक धारावाहिक 'आश्चर्य लोक एलिस' चकमक में आता था। वह बड़ा ही मज़ेदार लगता। मुझे तो ऐसा लगता था एलिस के साथ मैं भी आश्चर्य लोक में पहुँच गया। माथापच्ची के प्रश्न हम आपस एक-दूसरे साथियों से पूछते व हल करते। कहानियाँ भी मज़ेदार लगती थीं। हम चकम पत्रिका को पाकर खुश थे। क्योंकि एक तो हमारे शिक्षक ही से हमें खरीदना होता था दूसरा घर में भी कोई कुछ नहीं कहता था और सबसे बड़ी बात कि चकमक में मज़ेद कहानी, कविता पढ़ने को व बहुत कुछ करने को मिलता था।

लेकिन यह खुशी ज़्यादा दिनों तक बनी नहीं रही। कुछ दिनों तक तो हम शिक्षक चकमक देते रहे लेकिन उसके बाद चकमक स्कूल में तो आ जाती। पर ज हम चकमक लेने पहुँचते तो सर कहते खाने की छुट्टी में देंगे। जब छुट्टी में पहुँच तो कहते की पूरी छुट्टी के समय देंगे। और जब पूरी छुट्टी का समय आता तो कह कल ले लेना, जान मत खाओ। उस समय मुझे हमारे शिक्षक पर बहुत गुस्सा आ था। लेकिन हम कुछ कर नहीं सकते थे।

फिर जैसे बड़ी कक्षाओं में पहुँचने लगे। चकमक पत्रिका मिलना बंद हो गई। फि सन् 1990 अप्रैल में एकलव्य ने हमारे शहर परासिया में पुस्तकालय खोला अ मज़ेदार बात यह कि इस पुस्तकालय को चलाने की ज़िम्मेदारी मुझे मिली। चकम पढ़ने का सिलसिला फिर चल निकला। और साथ ही कई और किताबें व पत्रिका पढ़ भी शुरू हो गया।

आज भी इतने सालों बाद मैं चकमक पढ़ता हूँ व अन्य लोगों को इसके बारे जानकारी देता हूँ। मुझे लगता है कि हर बच्चे को चकमक पढ़ना चाहिए और सि चकमक ही नहीं और कई तरह की किताबें व पत्रिकाएँ भी पढ़ना चाहिए। क्योंकि कित हमें बहुत कुछ देकर ही जाती हैं। हमसे कुछ लेती नहीं हैं।

कार्तिक श

(कार्तिक एकलव्य के परासिया केंद्र में कई वर्षों से जुड़े रहे आजकल एकलव्य के प्रकाशन समूह में काम करते है

चकमक
मई-जून, 2002

मैं चाहता हूँ बच्चों की तरह चित्र बनाना

मैंने अक्सर और अधिकतर बच्चों को अपनी पेण्टिंग का विषय बनाया है। उस की एक खास वजह है, वह यह कि मैं अपने चित्रों को सच्चाई के साथ सुन्दर भी बनाना चाहता हूँ। जब भी मैं बच्चों को देखता हूँ तो उनकी हँसी में, उनके बोलने में, उनके देखने में, उनकी चाह में मुझे इतनी शुद्धता-निर्मलता लगती है जिसे महसूस भर किया जा सकता है।

दुनिया का हर बच्चा चित्र बनाता है। 'चिड़िया', 'फूल', 'छोटा-सा घर', 'पहाड़', 'नदी', 'सूरज' – किसने सिखाया है उन्हें यह सब बनाना। मुझे लगता है कि सारी दुनिया को बच्चा हो जाना चाहिए या फिर बच्चे को बच्चे की तरह बड़ा होने देना चाहिए।

'पॉबलो पिकासो' ने कहा था – मैं बड़ों की तरह चित्र तो बना लेता हूँ लेकिन बच्चों की तरह कभी बना नहीं पाया।

मैं भी चाहता हूँ बच्चों की तरह चित्र बनाना।

किशोर उमरेकर

(किशोर एक जाने-माने चित्रकार हैं।)

चकमक-सा दूजा दोस्त नहीं

आज मेरी आयु 24 वर्ष हो गई है, मुझे चकमक-सा दूजा दोस्त नहीं मिला। आज भी मुझे याद है। एक बार मैं अजब-सी उलझन लिए एक पत्रिका लेकर शोभा मौसी जी के पास पहुँचा। शोभा मौसी एकलव्य में कार्यरत हैं। मेरे हाथ में एक किताब, एक कागज़ और एक कार्बन था। मैं कार्बन से चित्र बनाने का प्रयास कर रहा था।

मौसी जी ने कहा, तुम कुछ बनाना, कुछ गढ़ना चाहते हो तो मैं तुम्हें एक किताब देती हूँ। वह किताब थी चकमक। तभी से चकमक से दोस्ताना रिश्ता बरकरार है। चकमक हमारे स्कूल के बच्चे, बाल पंचायत के बच्चे और कुछ बड़े भी पढ़ते हैं। बच्चे चकमक पर आधारित गतिविधियाँ करते हैं। हम अपना दीवार अखबार भी तैयार करते हैं।

चकमक में बच्चों की रचनाएँ और चित्र छपते हैं। इससे जो खुशी मिलती है उसका कोई सानी नहीं है। चकमक से जुड़ा यह दोस्ताना रिश्ता दिन ब दिन मज़बूत होता जा रहा है। चकमक से ये साथ सदा बना रहे, यही दुआ है।

नवीन भंवर, धार

(नवीन बचपन से चकमक पढ़ता था और अब धार में बच्चों के बीच उनके अधिकारों के लिए काम करता है।)

आज भी चकमक पढ़ता हूँ।

ये बात कोई सौ साल पुरानी नहीं। सिर्फ 17 साल पहले की है। जुलाई, 1985 से एकलव्य भोपाल से बच्चों के लिए एक बाल विज्ञान पत्रिका चकमक निकलना शुरू हुई। उस समय मैं छठवीं कक्षा में पढ़ता था। जब मैं सातवीं कक्षा में पहुँचा तो चकमक पत्रिका स्कूलों में मिलना शुरू हुई। हमारे स्कूल में भी चकमक आती थी व सिर्फ 1 रुपए में ही प्राप्त हो जाती थी। मैं भी 1रुपए में चकमक खरीदने लगा। उस समय घर से 1 रुपया मिलना भी कठिन था। पापाजी किताबों के लिए तो पैसे नहीं देते थे। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने चकमक खरीदने के लिए पैसे देने की हाँ कर दी।

मैं चकमक खरीदता और पढ़ता। उस समय एक धारावाहिक 'आश्चर्य लोक में एलिस' चकमक में आता था। वह बड़ा ही मज़ेदार लगता। मुझे तो ऐसा लगता था कि एलिस के साथ मैं भी आश्चर्य लोक में पहुँच गया। माथापच्ची के प्रश्न हम आपस में एक-दूसरे साथियों से पूछते व हल करते। कहानियाँ भी मज़ेदार लगती थीं। हम चकमक पत्रिका को पाकर खुश थे। क्योंकि एक तो हमारे शिक्षक ही से हमें खरीदना होता था। दूसरा घर में भी कोई कुछ नहीं कहता था और सबसे बड़ी बात कि चकमक में मज़ेदार कहानी, कविता पढ़ने को व बहुत कुछ करने को मिलता था।

लेकिन यह खुशी ज़्यादा दिनों तक बनी नहीं रही। कुछ दिनों तक तो हमारे शिक्षक चकमक देते रहे लेकिन उसके बाद चकमक स्कूल में तो आ जाती। पर जब हम चकमक लेने पहुँचते तो सर कहते खाने की छुट्टी में देंगे। जब छुट्टी में पहुँचते तो कहते की पूरी छुट्टी के समय देंगे। और जब पूरी छुट्टी का समय आता तो कहते कल ले लेना, जान मत खाओ। उस समय मुझे हमारे शिक्षक पर बहुत गुस्सा आता था। लेकिन हम कुछ कर नहीं सकते थे।

फिर जैसे बड़ी कक्षाओं में पहुँचने लगे। चकमक पत्रिका मिलना बंद हो गई। फिर सन् 1990 अप्रैल में एकलव्य ने हमारे शहर परासिया में पुस्तकालय खोला और मज़ेदार बात यह कि इस पुस्तकालय को चलाने की ज़िम्मेदारी मुझे मिली। चकमक पढ़ने का सिलसिला फिर चल निकला। और साथ ही कई और किताबें व पत्रिका पढ़ना भी शुरू हो गया।

आज भी इतने सालों बाद मैं चकमक पढ़ता हूँ व अन्य लोगों को इसके बारे में जानकारी देता हूँ। मुझे लगता है कि हर बच्चे को चकमक पढ़ना चाहिए और सिर्फ चकमक ही नहीं और कई तरह की किताबें व पत्रिकाएँ भी पढ़ना चाहिए। क्योंकि किताबें हमें बहुत कुछ देकर ही जाती हैं। हमसे कुछ लेती नहीं हैं।

कार्तिक शर्मा

(कार्तिक एकलव्य के परासिया केंद्र में कई वर्षों से जुड़े रहे हैं। आजकल एकलव्य के प्रकाशन समूह में काम करते हैं।)

मैं चाहता हूँ बच्चों की तरह चित्र बनाना

अक्सर और अधिकतर बच्चों को अपनी पेण्टिंग का विषय बनाया है। उस की खास वजह है, वह यह कि मैं अपने चित्रों को सच्चाई के साथ सुन्दर भी बनाना ता हूँ। जब भी मैं बच्चों को देखता हूँ तो उनकी हँसी में, उनके बोलने में, उनके ने में, उनकी चाह में मुझे इतनी शुद्धता-निर्मलता लगती है जिसे महसूस भर किया सकता है।

दुनिया का हर बच्चा चित्र बनाता है। 'चिड़िया', 'फूल', 'छोटा-सा घर', 'पहाड़', ो', 'सूरज' – किसने सिखाया है उन्हें यह सब बनाना। मुझे लगता है कि सारी ाया को बच्चा हो जाना चाहिए या फिर बच्चे को बच्चे की तरह बड़ा होने देना चाहिए।

'पॉबलो पिकासो' ने कहा था – मैं बड़ों की तरह चित्र तो बना लेता हूँ लेकिन चों की तरह कभी बना नहीं पाया।

मैं भी चाहता हूँ बच्चों की तरह चित्र बनाना।

किशोर उमरेकर

(किशोर एक जाने-माने चित्रकार हैं।)

चकमक-सा दूजा दोस्त नहीं

आज मेरी आयु 24 वर्ष हो गई है, मुझे चकमक-सा दूजा दोस्त नहीं मिला। आज भी मुझे याद है। एक बार मैं अजब-सी उलझन लिए एक पत्रिका लेकर शोभा मौसी जी के पास पहुँचा। शोभा मौसी एकलव्य में कार्यरत हैं। मेरे हाथ में एक किताब, एक कागज़ और एक कार्बन था। मैं कार्बन से चित्र बनाने का प्रयास कर रहा था।

मौसी जी ने कहा, तुम कुछ बनाना, कुछ गढ़ना चाहते हो तो मैं तुम्हें एक किताब देती हूँ। वह किताब थी चकमक। तभी से चकमक से दोस्ताना रिश्ता बरकरार है। चकमक हमारे स्कूल के बच्चे, बाल पंचायत के बच्चे और कुछ बड़े भी पढ़ते हैं। बच्चे चकमक पर आधारित गतिविधियाँ करते हैं। हम अपना दीवार अखबार भी तैयार करते हैं।

चकमक में बच्चों की रचनाएँ और चित्र छपते हैं। इससे जो खुशी मिलती है उसका कोई सानी नहीं है। चकमक से जुड़ा यह दोस्ताना रिश्ता दिन ब दिन मज़बूत होता जा रहा है। चकमक से ये साथ सदा बना रहे, यही दुआ है।

नवीन भंवर, धार

(नवीन बचपन से चकमक पढ़ता था और अब धार में बच्चों के बीच उनके अधिकारों के लिए काम करता है।)

आज भी चकमक पढ़ता हूँ।

ये बात कोई सौ साल पुरानी नहीं। सिर्फ 17 साल पहले की है। जुलाई, 1985 से एकलव्य भोपाल से बच्चों के लिए एक बाल विज्ञान पत्रिका चकमक निकलना शुरू हुई। उस समय मैं छठवीं कक्षा में पढ़ता था। जब मैं सातवीं कक्षा में पहुँचा तो चकमक पत्रिका स्कूलों में मिलना शुरू हुई। हमारे स्कूल में भी चकमक आती थी व सिर्फ 1 रुपए में ही प्राप्त हो जाती थी। मैं भी 1रुपए में चकमक खरीदने लगा। उस समय घर से 1 रुपया मिलना भी कठिन था। पापाजी किताबों के लिए तो पैसे नहीं देते थे। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने चकमक खरीदने के लिए पैसे देने की हाँ कर दी।

मैं चकमक खरीदता और पढ़ता। उस समय एक धारावाहिक 'आश्चर्य लोक में एलिस' चकमक में आता था। वह बड़ा ही मज़ेदार लगता। मुझे तो ऐसा लगता था कि एलिस के साथ मैं भी आश्चर्य लोक में पहुँच गया। माथापच्ची के प्रश्न हम आपस में एक-दूसरे साथियों से पूछते व हल करते। कहानियाँ भी मज़ेदार लगती थीं। हम चकमक पत्रिका को पाकर खुश थे। क्योंकि एक तो हमारे शिक्षक ही से हमें खरीदना होता था। दूसरा घर में भी कोई कुछ नहीं कहता था और सबसे बड़ी बात कि चकमक में मज़ेदार कहानी, कविता पढ़ने को व बहुत कुछ करने को मिलता था।

लेकिन यह खुशी ज़्यादा दिनों तक बनी नहीं रही। कुछ दिनों तक तो हमारे शिक्षक चकमक देते रहे लेकिन उसके बाद चकमक स्कूल में तो आ जाती। पर जब हम चकमक लेने पहुँचते तो सर कहते खाने की छुट्टी में देंगे। जब छुट्टी में पहुँचते तो कहते की पूरी छुट्टी के समय देंगे। और जब पूरी छुट्टी का समय आता तो कहते कल ले लेना, जान मत खाओ। उस समय मुझे हमारे शिक्षक पर बहुत गुस्सा आता था। लेकिन हम कुछ कर नहीं सकते थे।

फिर जैसे बड़ी कक्षाओं में पहुँचने लगे। चकमक पत्रिका मिलना बंद हो गई। फिर सन् 1990 अप्रैल में एकलव्य ने हमारे शहर परासिया में पुस्तकालय खोला और मज़ेदार बात यह कि इस पुस्तकालय को चलाने की ज़िम्मेदारी मुझे मिली। चकमक पढ़ने का सिलसिला फिर चल निकला। और साथ ही कई और किताबें व पत्रिका पढ़ना भी शुरू हो गया।

आज भी इतने सालों बाद मैं चकमक पढ़ता हूँ व अन्य लोगों को इसके बारे में जानकारी देता हूँ। मुझे लगता है कि हर बच्चे को चकमक पढ़ना चाहिए और सिर्फ चकमक ही नहीं और कई तरह की किताबें व पत्रिकाएँ भी पढ़ना चाहिए। क्योंकि किताबें हमें बहुत कुछ देकर ही जाती हैं। हमसे कुछ लेती नहीं हैं।

कार्तिक शर्मा

(कार्तिक एकलव्य के परासिया केंद्र में कई वर्षों से जुड़े रहे हैं। आजकल एकलव्य के प्रकाशन समूह में काम करते हैं।)

मैं चाहता हूँ बच्चों की तरह चित्र बनाना

मैंने अक्सर और अधिकतर बच्चों को अपनी पेण्टिंग का विषय बनाया है। उस की एक खास वजह है, वह यह कि मैं अपने चित्रों को सच्चाई के साथ सुन्दर भी बनाना चाहता हूँ। जब भी मैं बच्चों को देखता हूँ तो उनकी हँसी में, उनके बोलने में, उनके देखने में, उनकी चाह में मुझे इतनी शुद्धता-निर्मलता लगती है जिसे महसूस भर किया जा सकता है।

दुनिया का हर बच्चा चित्र बनाता है। 'चिड़िया', 'फूल', 'छोटा-सा घर', 'पहाड़', 'नदी', 'सूरज' – किसने सिखाया है उन्हें यह सब बनाना। मुझे लगता है कि सारी दुनिया को बच्चा हो जाना चाहिए या फिर बच्चे को बच्चे की तरह बड़ा होने देना चाहिए।

'पॉबलो पिकासो' ने कहा था – मैं बड़ों की तरह चित्र तो बना लेता हूँ लेकिन बच्चों की तरह कभी बना नहीं पाया।

मैं भी चाहता हूँ बच्चों की तरह चित्र बनाना।

किशोर उमरकर

(किशोर एक जाने-माने चित्रकार हैं।)

चकमक-सा दूजा दोस्त नहीं

आज मेरी आयु 24 वर्ष हो गई है, मुझे चकमक-सा दूजा दोस्त नहीं मिला। आज भी मुझे याद है। एक बार मैं अजब-सी उलझन लिए एक पत्रिका लेकर शोभा मौसी जी के पास पहुँचा। शोभा मौसी एकलव्य में कार्यरत हैं। मेरे हाथ में एक किताब, एक कागज़ और एक कार्बन था। मैं कार्बन से चित्र बनाने का प्रयास कर रहा था।

मौसी जी ने कहा, तुम कुछ बनाना, कुछ गढ़ना चाहते हो तो मैं तुम्हें एक किताब देती हूँ। वह किताब थी चकमक। तभी से चकमक से दोस्ताना रिश्ता बरकरार है। चकमक हमारे स्कूल के बच्चे, बाल पंचायत के बच्चे और कुछ बड़े भी पढ़ते हैं। बच्चे चकमक पर आधारित गतिविधियाँ करते हैं। हम अपना दीवार अखबार भी तैयार करते हैं।

चकमक में बच्चों की रचनाएँ और चित्र छपते हैं। इससे जो खुशी मिलती है उसका कोई सानी नहीं है। चकमक से जुड़ा यह दोस्ताना रिश्ता दिन ब दिन मज़बूत होता जा रहा है। चकमक से ये साथ सदा बना रहे, यही दुआ है।

नवीन भंवर, धार

(नवीन बचपन से चकमक पढ़ता था और अब धार में बच्चों के बीच उनके अधिकारों के लिए काम करता है।)

और पत्ते भी आएँगे!

चकमक से मेरा रिश्ता तीन साल पुराना है और इतना ही अरसा हुआ है बाल साहित्य की दुनिया में दाखिल हुए। बचपन में मैंने बाल साहित्य के नाम पर वेदप्रकाश शर्मा आदि के उपन्यास खूब पढ़े और कभी-कभी माया जैसी पत्रिकाएँ। इसलिए मेरे मन में चकमक से जुड़ने से पहले बाल साहित्य की शक्ल बिल्कुल साफ नहीं थी। बल्कि चकमक से जुड़ने के एक-दो महीने बाद भी कई सवाल उठते थे। क्या बाल साहित्य जैसी कोई चीज़ है या होनी चाहिए जिसका अपना अलग वजूद हो?.... शायद इसका कारण यह रहा हो कि मुझे बचपन में पढ़ा गया साहित्य भी कम मज़ेदार नहीं लगा था......। खैर! ये उन दिनों की बातें हैं जब मैं चकमक के आँगन से ही होकर लौट जाया करता था।... चकमक को ज्यों-ज्यों पलटता गया सवाल उठते गए और कुछ चीज़ें साफ होती गईं।

बचपन में कभी जब हम कुछ बोते थे तो दिन में चार बार उस जगह जाकर देखते थे... अंकुर उभरा कि नहीं और जब उभर जाता तो फिर उसके पत्तों का इंतज़ार रहता। यह वाक्या फिर हुआ... चकमक और बाल साहित्य की दुनिया में आते हुए।

चकमक से गुज़रते हुए ही लगा कि बच्चों की अपनी मुकम्मिल दुनिया है, उनके अपने तरीके हैं। उनकी दुनिया के शहंशाह वही हैं। ज़ाहिर है दखलंदाजी उन्हें पसंद नहीं ही होगी... यानी बच्चे 'बड़े हो गए' लोगों का छोटा संस्करण तो कतई नहीं हैं... न अब आप तोते के मरने पर तीन घण्टे रो सकते हैं न आधी रात में चोरी-छिपे कुत्ते को दो रोटी डाल सकते हैं। .... बहुत सारी चीज़ें जो पहले अहम होती थीं, महज़ होती चली जाती हैं... कम ही रास्ते हैं जो उस उमर से इस उमर तक आ पाते हैं....

चकमक की वाक्फियत बताती है कि यह एक पत्थर होता है जिसमें आग छुपी होती है... आमतौर पर लोग चकमक से बीड़ी-चिलम सुलगाते हैं। बड़ा वाजिब नाम है। लगता है चकमक बस इन दो मकसदों के लिए ही पनपी होगी – पहला उस आग को बाहर निकालना और नरम रूई में सहेजना और दूसरा उस आग को जाया होने से बचाना। उससे बीड़ी-चिलम की बजाय आसपास की सारी नाजायज़ चीज़ों को सुलगाने की तरफ एक कदम बढ़ाना... मंशा कम बड़ी नहीं है। पहले-पहल लगता था कि क्या चकमक के पाठकों (जो अभी-अभी उम्र के दो अंकों में आए होंगे) के कंधे और आँखें इन ज़िम्मेदारियों, इन सपनों के लिए ठीक-ठीक तैयार हो चुके होंगे.... 'मेरा पन्ना' की रचनाएँ समय-समय पर विश्वास दिलाती रहतीं।

कारगिल के साल में आठ वर्ष की शाना ने एक कविता लिखी। कविता चकमक के पाठकों ने शायद पढ़ी होगी। कुछ पंक्तियाँ –

चंडीगढ़ में बम नहीं गिरेगा
जंग तो कारगिल में चल रही है न! ......
वैसे चंडीगढ़ पाकिस्तान में होता
तो क्या हो जाता।
लोगों का सुखी रहना ज़रूरी है। .....
दुनिया के उन हिस्सों में जहाँ जंग नहीं है
बच्चे बड़े होंगे......

दूसरा तर्क जो मेरे सामने ऐसे वक्त आता वो

ता शुरुआत का! मैं ऐसी कितनी ही चीज़ें याद ार पाता हूँ जिन्हें मैंने सायास नहीं सीखा है, चाहे । – ''क्या ये औरतों जैसा कमरे में घुसा बैठा है'', । ''क्या जोरुओं जैसे रोना-धोना लगा रखा है'', ोसे कड़वे जुमले हों या फिर– ''क्या ये चमारों जैसी हरकतें कर रहा है।'' – इन जुमलों की फ़हरिश्त लम्बी है। याद कीजिए कितनी बार मर्द शब्द का इस्तेमाल औरत के पूरक के अर्थों में होता है। लगता है इन जुमलों की शुरुआत से कम छोटी शुरुआत तो यह नहीं ही है.. इसलिए उम्मीद है कि चकमक की सकारात्मक पैठ इससे कम नहीं ही होगी खैर!

चकमक को शुरू-शुरू में देखा था, तब लगा था कि ये भी कोई पत्रिका है? उलटे-सीधे आठ-दस चित्र, जिन्हें कोई भी बना सकता है। किसी ने साइकिल चलाना सीखा, किसी ने आलू बोए...। हिज्जे की गलतियाँ, अटपटे वाक्य, सब कुछ कच्चा-कच्चा-सा! अब लगता है यही चकमक की ताकत है। यही सरलता बच्चों को कुरेदती है। उन्हें उकसाती भी होगी। उन्हें लगता होगा कि यह सब तो वे भी रच सकते हैं। कोई बात नहीं अगर उन्हें बेहतरीन तरीके से लिखना नहीं आता। कोई हर्ज नहीं अगर हिज्जे की गलतियाँ होंगी या फिर बात बोलचाल की भाषा में कही गई होगी। कुछ भी हो वे जो सोचते होंगे उसे जैसे-तैसे लिखकर भेजने की कोशिश करेंगे।

यानी अगर आँखों में कुछ है तो महज़ हाथों के कच्चेपन की वजह से वह रुकना नहीं चाहिए। बच्चों की अभिव्यक्ति किसी भी माध्यम से आनी चाहिए। चकमक इन कोशिशों में आने वाली तमाम शुरुआती अड़चनों में कमी करती लगती! बात रही निखरने की तो वो करते-करते आ ही जाएगी। चित्रों में भी लगता है कि चकमक हाथों की कच्ची बोली से आँखों की उड़ानों को तौलती है।

चकमक के पन्नों को मैंने करीब से शक्ल लेते देखा है। एक साफ नज़रिया है... चकमक का हिस्सा बनने से पहले हर रचना अच्छी तरह ठोंकी-पीटी जाती है। छोटी-छोटी बातों का ख्याल रखा जाता है। चकमक के इस मिजाज़ के पीछे शायद वजह यह होगी कि चकमक होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की ज़मीन पर उगी थी जो परिवेश में, परिवेश से सीखने पर ज़ोर देता है।

माथापच्ची तैयार करते वक्त एक सवाल मैंने तैयार किया था – ''अगर पचास ग्राम आलू पाँच रुपए में आते हैं, तो तीन सौ ग्राम आलू कितने में आएँगे। ऐसे सवाल अक्सर माथापच्ची से कट जाते थे। मुझे लगता था इसमें क्या दिक्कत है, भई सवाल है पचास ग्राम पाँच रुपए में! इससे छह गुने यानी तीन सौ ग्राम तीस रुपए में। चकमक के साथ काम करते मुझे इसके अटपटेपन का पता चला। क्या आलू सौ ग्राम, पचास ग्राम की तौलों में बिकने वाली चीज़ है? दूसरे क्या असल में भी वह इतना महँगा है? ऐसी कितनी ही अटपटी बातें थीं जो सरसरी निगाह से देखने पर तब ठीक-ठाक लगती थीं।

....ऐसी तमाम बातें हैं चाहे चकमक को लम्बे-लम्बे पत्र लिखकर रचनाओं पर बात करने की, या फिर नन्हें रचनाकारों के साथ मिलकर बाल-साहित्य की एक नई पीढ़ी तैयार करने की... । कितनी ही बातें हैं.... जो आपसे बाँटना चाहता हूँ... । कितने ही सवाल भी हैं लेकिन फिर कभी....।

आज तीन साल में एक पत्ता दिखा है... लेकिन रोज़-रोज़ देखने का लड़कपन बाकी है, इसलिए इतना तो तय है कि और पत्ते भी आएँगे!

सुशील शुक्ल

और पत्ते भी आएँगे!

चकमक से मेरा रिश्ता तीन साल पुराना है और इतना ही अरसा हुआ है बाल साहित्य की दुनिया में दाखिल हुए। बचपन में मैंने बाल साहित्य के नाम पर वेदप्रकाश शर्मा आदि के उपन्यास खूब पढ़े और कभी-कभी माया जैसी पत्रिकाएँ। इसलिए मेरे मन में चकमक से जुड़ने से पहले बाल साहित्य की शक्ल बिल्कुल साफ नहीं थी। बल्कि चकमक से जुड़ने के एक-दो महीने बाद भी कई सवाल उठते थे। क्या बाल साहित्य जैसी कोई चीज़ है या होनी चाहिए जिसका अपना अलग वजूद हो?.... शायद इसका कारण यह रहा हो कि मुझे बचपन में पढ़ा गया साहित्य भी कम मज़ेदार नहीं लगा था......। खैर! ये उन दिनों की बातें हैं जब मैं चकमक के आँगन से ही होकर लौट जाया करता था।... चकमक को ज्यों-ज्यों पलटता गया सवाल उठते गए और कुछ चीज़ें साफ होती गईं।

बचपन में कभी जब हम कुछ बोते थे तो दिन में चार बार उस जगह जाकर देखते थे... अंकुर उभरा कि नहीं और जब उभर जाता तो फिर उसके पत्तों का इंतज़ार रहता। यह वाक्या फिर हुआ... चकमक और बाल साहित्य की दुनिया में आते हुए।

चकमक से गुज़रते हुए ही लगा कि बच्चों की अपनी मुकम्मिल दुनिया है, उनके अपने तरीके हैं। उनकी दुनिया के शहंशाह वही हैं। ज़ाहिर है दखलंदाजी उन्हें पसंद नहीं ही होगी... यानी बच्चे 'बड़े हो गए' लोगों का छोटा संस्करण तो कतई नहीं हैं... न अब आप तोते के मरने पर तीन घण्टे रो सकते हैं न आधी रात में चोरी-छिपे कुत्ते को दो रोटी डाल सकते हैं। .... बहुत सारी चीज़ें जो पहले अहम होती थीं, महज़ होती चली जाती हैं... कम ही रास्ते हैं जो उस उमर से इस उमर तक आ पाते हैं....

चकमक की वाक्फियत बताती है कि यह एक पत्थर होता है जिसमें आग छुपी होती है... आमतौर पर लोग चकमक से बीड़ी-चिलम सुलगाते हैं। बड़ा वाजिब नाम है। लगता है चकमक बस इन दो मकसदों के लिए ही पनपी होगी – पहला उस आग को बाहर निकालना और नरम रूई में सहेजना और दूसरा उस आग को जाया होने से बचाना उससे बीड़ी-चिलम की बजाय आसपास की सारी नाजायज़ चीज़ों को सुलगाने की तरफ एक कदम बढ़ाना... मंशा कम बड़ी नहीं है। पहले-पहल लगता था कि क्या चकमक के पाठकों (जो अभी-अभी उम्र के दो अंकों में आए होंगे) के कंधे और आँखें इन ज़िम्मेदारियों, इन सपनों के लिए ठीक-ठीक तैयार हो चुके होंगे.... 'मेरा पन्ना' की रचनाएँ समय-समय पर विश्वास दिलाती रहतीं।

कारगिल के साल में आठ वर्ष की शाना ने एक कविता लिखी। कविता चकमक के पाठकों ने शायद पढ़ी होगी। कुछ पंक्तियाँ –

चंडीगढ़ में बम नहीं गिरेगा
जंग तो कारगिल में चल रही है न! ......
वैसे चंडीगढ़ पाकिस्तान में होता
तो क्या हो जाता।
लोगों का सुखी रहना ज़रूरी है। .....
दुनिया के उन हिस्सों में जहाँ जंग नहीं है
बच्चे बड़े होंगे......

दूसरा तर्क जो मेरे सामने ऐसे वक्त आता वो

होता शुरुआत का! मैं ऐसी कितनी ही चीज़ें याद कर पाता हूँ जिन्हें मैंने सायास नहीं सीखा है, चाहे वो – ''क्या ये औरतों जैसा कमरे में घुसा बैठा है'', या ''क्या जोरुओं जैसे रोना-धोना लगा रखा है'', जैसे कड़वे जुमले हों या फिर– ''क्या ये चमारों जैसी हरकतें कर रहा है।'' – इन जुमलों की फेहरिश्त लम्बी है। याद कीजिए कितनी बार मर्द शब्द का इस्तेमाल औरत के पूरक के अर्थों में होता है। लगता है इन जुमलों की शुरुआत से कम छोटी शुरुआत तो यह नहीं ही है.. इसलिए उम्मीद है कि चकमक की सकारात्मक पैठ इससे कम नहीं ही होगी। खैर!

चकमक को शुरू-शुरू में देखा था, तब लगा था कि ये भी कोई पत्रिका है? उलटे-सीधे आठ-दस चित्र, जिन्हें कोई भी बना सकता है। किसी ने साइकिल चलाना सीखा, किसी ने आलू बोए...। हिज्जे की गलतियाँ, अटपटे वाक्य, सब कुछ कच्चा-कच्चा-सा! अब लगता है यही चकमक की ताकत है। यही सरलता बच्चों को कुरेदती है। उन्हें उकसाती भी होगी। उन्हें लगता होगा कि यह सब तो वे भी रच सकते हैं। कोई बात नहीं अगर उन्हें बेहतरीन तरीके से लिखना नहीं आता। कोई हर्ज नहीं अगर हिज्जे की गलतियाँ होंगी या फिर बात बोलचाल की भाषा में कही गई होगी। कुछ भी हो वे जो सोचते होंगे उसे जैसे-तैसे लिखकर भेजने की कोशिश करेंगे।

यानी अगर आँखों में कुछ है तो महज़ हाथों के कच्चेपन की वजह से वह रुकना नहीं चाहिए। बच्चों की अभिव्यक्ति किसी भी माध्यम से आनी चाहिए। चकमक इन कोशिशों में आने वाली तमाम शुरुआती अड़चनों में कमी करती लगती! बात रही निखरने की तो वो करते-करते आ ही जाएगी। चित्रों में भी लगता है कि चकमक हाथों की कच्ची बोली से आँखों की उड़ानों को तौलती है।

चकमक के पन्नों को मैंने करीब से शक्ल लेते देखा है। एक साफ नज़रिया है... चकमक का हिस्सा बनने से पहले हर रचना अच्छी तरह ठोंकी-पीटी जाती है। छोटी-छोटी बातों का ख्याल रखा जाता है।चकमक के इस मिजाज़ के पीछे शायद वजह यह होगी कि चकमक होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की ज़मीन पर उगी थी जो परिवेश में, परिवेश से सीखने पर ज़ोर देता है।

माथापच्ची तैयार करते वक्त एक सवाल मैंने तैयार किया था – ''अगर पचास ग्राम आलू पाँच रुपए में आते हैं, तो तीन सौ ग्राम आलू कितने में आएँगे।ऐसे सवाल अक्सर माथापच्ची से कट जाते थे। मुझे लगता था इसमें क्या दिक्कत है, भई सवाल है पचास ग्राम पाँच रुपए में! इससे छह गुने यानी तीन सौ ग्राम तीस रुपए में। चकमक के साथ काम करते मुझे इसके अटपटेपन का पता चला। क्या आलू सौ ग्राम, पचास ग्राम की तौलों में बिकने वाली चीज़ है? दूसरे क्या असल में भी वह इतना महँगा है? ऐसी कितनी ही अटपटी बातें थीं जो सरसरी निगाह से देखने पर तब ठीक-ठाक लगती थीं।

....ऐसी तमाम बातें हैं चाहे चकमक के लेखकों को लम्बे-लम्बे पत्र लिखकर रचनाओं पर बात करने की, या फिर नन्हें रचनाकारों के साथ मिलकर बाल-साहित्य की एक नई पीढ़ी तैयार करने की... । कितनी ही बातें हैं.... जो आपसे बाँटना चाहता हूँ... । कितने ही सवाल भी हैं लेकिन फिर कभी....।

आज तीन साल में एक पत्ता दिखा है... लेकिन रोज़-रोज़ देखने का लड़कपन बाकी है, इसलिए इतना तो तय है कि और पत्ते भी आएँगे!

सुशील शुक्ल

तर्क नमक भर तो कल्पना खाना भर

एक ज़माना था जब हम अपने बचपन में थे और मद्रास से निकलने वाली बाल-पत्रिका चन्दामामा के इन्तज़ार में रहा करते थे। संयोग से पिताजी ने अपने पढ़ने की आदतों के वशीभूत हो कलकत्ता के बड़ा बाज़ार में किताबों की दुकान खोल आर्यसमाजी साहित्य के साथ-साथ कुछ बाल पत्रिकाएँ बेचना भी शुरू कर दिया था। बच्चों की ढेर सारी कहानी पुस्तिकाएँ भी छपकर आया करती थीं।

जातक कथाएँ, पुराणों की कहानियाँ, ईसप की कथाएँ और पंचतंत्र के न जाने कितने संस्करण उन दिनों मेरे हाथों पड़े और मैं सुस्वादु और चटपटे भोजन की तरह उन्हें अपने भीतर उतारता चला गया। आज सोचता हूँ तो महसूस होता है कि उन दिनों की इन पुस्तिकाओं ने मेरे भीतर सोई हुई कल्पना शक्ति को खूब सींचा और झकझोरा। इन कहानियों को पढ़ते हुए अनजाने ही कल्पना करने की वृत्ति भीतर ही भीतर पनपती रही। बाद में तो मैंने थोड़ा बहुत लिखना गद्य-पद्य दोनों में, शुरू किया।

बड़ा हुआ तो शादी भी हुई और बच्चे भी। ढेर सारी रंगीन बाल-पत्रिकाएँ जहाँ-तहाँ स्टालों पर दिखीं। कई पूँजीपति घरानों की पत्रिकाओं के साथ-साथ मध्यप्रदेश सरकार के स्कूली शिक्षा विभाग ने भी समझ-झरोखा जैसी पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। किन्तु जो पत्रिका मुझे अपनी कल्पना प्रवण और मेधा प्रखर बेटियों के लिए सबसे सार्थक समझ में आई वह चकमक थी।

चकमक बच्चों के लिए ही नहीं बच्चों के द्वारा लिखी और सजाई जाती थी। कहा जाता है कि बच्चों की सोच में नयापन होता है। उनकी कल्पनाएँ मौलिक होती हैं। तर्क की मात्रा नमक भर तो कल्पना की खाने-पीने के सामान भर।

चकमक में चित्र, कविता, कथाएँ और विचार यहाँ तक कि शिल्प छायांकनों की सजावट और भराव ने बच्चों की अपनी एक ऐसी दुनिया रच दी जिसमें उनके शब्द मोती की तरह चमक रहे थे।

मेरी बेटी चित्रा कक्षा सात-आठ से ही कहानियाँ और कविताएँ लिख रही थी। और छोटी प्रिया जो इन दिनों शादी-वादी करके केअर जैसी संस्था में काम कर रही है, बचपन क्या बल्कि शैशव से ही घर की दीवारों और अलमारियों पर रेखाएँ खींचकर यह घोषित करने लग गई थी कि मैं सिर्फ पढ़ने और समझने के लिए नहीं रचने और सोचने के लिए पैदा हुई हूँ। संसार ने जितना दिया है उसमें कुछ और जोड़कर लौटाऊँगी नहीं तो मेरे ऊपर जो कर्ज़ है, वह उतरेगा नहीं।

यह चकमक जैसी पत्रिका ही थी जिसने बच्चों के एक बड़े संसार के मन में यह भरा कि वे सोचें कल्पना करें, रचें। सिर्फ पढ़ाकू होने से बात नहीं बनती। चीज़ों को रटकर उगलते रहने से प्रतिभा का स्वरूप प्रकट नहीं होता। चकमक वह मंच है जहाँ मनुष्य का सबसे निदाग मन और अबाध उड़ान अपने असली रूप में कुछ इस तरह उठ-बैठ और उड़ रहे हैं जैसे तितलियाँ उड़ा करती हैं। पक्षी फुदकते रहते हैं। हिरन चौकड़ी भर रहे होते हैं। यहाँ दिमागों की जटिल बुनावट के बदले उनका सरल और सीधा-सादा उछाह है। बेरोकटोक खींची गई रेखाएँ हैं। कुल मिलाकर एक ऐसी दुनिया है जो हमारे बचपन से ही हमसे जबरन छीनी जाती रही है।

अंत में मैं कहना चाहूँगा कि जिन लोगों ने भी चकमक का सपना देखा, जिन्होंने इसे साकार करने में अपनी भूमिका निभाई, जिन बच्चों ने अपनी मौलिक सृजनशीलता से इसे जीवंत किया, वे सब सचमुच बधाई के पात्र हैं। दो सौवें अंक में प्रवेश करने वाली चकमक के प्रति हमारी अशेष शुभकामनाएँ।

विजय बहादुर सिंह
(वरिष्ठ साहित्यकार, फिलहाल भोपाल के उत्कृष्टता संस्थान में पढ़ाते हैं।)

इसे पंख दे दो . .

से मेरा पहला परिचय एकलव्य के परिचय के साथ-साथ ही हुआ। मैं पहली बार किसी बाल मेले जैसे आयोजन में भाग ले रही थी जिसमें हर काम को मौज-मस्ती के साथ करवाया जाता था। उसी बाल मेले में उपहार स्वरूप मुझे पहली चकमक मिली। उसे पढ़कर लगा कि इसमें तो हम भी लिख सकते हैं। बस फिर क्या था अपनी कुछ रचनाएँ और चित्र चकमक तक भेज दिए। इनमें से सबसे पहले एक चित्र छपा। बस यहीं से मानो मुझे एक नई दिशा मिल गई। उसके बाद कुछ समय तक सारी गतिविधियाँ जैसे ओरीगेमी, गीत-कहानी, कठपुतली आदि को अच्छे से सीखा। और फिर आने वाले बाल मेलों में सिखाया भी।

इसी दौरान हमारे देवास एकलव्य से चकमक क्लब नाम से कुछ बच्चों के समूह बने। इनका मुख्य उद्देश्य मुख्यत: बच्चों को एक ऐसी जगह देना था जहाँ वे अपने मन की बात कह सकें, पढ़ सकें और वे सारे काम कर सकें जिनसे उनमें छुपी रचनात्मकता और प्रतिभा निकल आए। इन्हीं चकमक क्लबों के साथ मिलकर कई बाल मेले, नाट्य कार्यशालाएँ कीं जिनसे मज़े के साथ-साथ हर बार कुछ न कुछ नया सीखने को मिला था। बस इन्हीं सब के चलते खुद में नेतृत्व क्षमता और अपनी बात को सही ढंग से प्रस्तुत करना भी अपने आप आ गया। इन सब बातों का फायदा कहीं न कहीं मेरे वर्तमान तक मैं महसूस करती हूँ।

आज मैं एक शिक्षिका बन चुकी हूँ। हालाँकि कक्षा 11-12 तक क्लब से मेरा सम्बंध न के बराबर हो गया था। क्योंकि तब मैं एकलव्य के विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़ चुकी थी। विज्ञान विषय लेने के कारण इधर की ओर रुझान बढ़ता गया। एक लम्बे अंतराल के बाद चकमक से फिर तब जुड़ी जब मैंने बी.एड. किया। तब कई सारे चार्ट्स और गतिविधि कराने में इससे काफी मदद मिली। और हाँ, इसके बाद जब मैंने थोड़े समय के लिए 'सवालीराम' का काम किया तब चकमक ने मेरी काफी मदद की। बच्चों की भेजी रचनाएँ, उनके सवालों के लिए मैं अक्सर चकमक को ही याद करती थी।

कुल मिलाकर मेरी देखी हुई पहली ' (शायद 87 का कोई अंक) और अब की चकमक में काफी परिवर्तन आया है जो कि सकारात्मक है। नए माहौल, नई ज़रूरतें, नई जिज्ञासाएँ और नई रचनाओं के साथ चकमक में नयापन तो लाना ही था।

अंत में चकमक को 200वें अंक के प्रकाशन पर बधाई देती हूँ और इसके लिए कहीं सुनी हुई कुछ पंक्तियाँ लिख रही हूँ –

ऊँचे गगन में उड़ने का सपना
हथेली से बादल को छूने के अरमाँ
पाना है इसको नई मंज़िलों को
आशा भरी सुनहरी सुबह को . . .
इसे पंख दे दो . . इसे पंख दे दो . .

चेतना खरे
(अब देवास के एक हायर सेकेण्डरी स्कूल में पढ़ाती हैं।)

सारी दुनिया पढ़े चकमक

मुझे सही-सही तो याद नहीं पर चकमक हमारे यहाँ लगभग 7-8 साल से आ रही है। पहले जब हम दिल्ली में थे तब भी आती थी। जब पापा का तबादला बड़ौदा हो गया तब भी आती थी। सच बोलें तो मुझे कोर्स की किताबों से ज़्यादा अच्छी चकमक, संदर्भ लगती हैं। कितनी अच्छी बातें होती हैं इनमें। सारी दुनिया को पढ़ना चाहिए। मेरी चकमक तो न जाने कितने लोग पढ़ते हैं। पहले मैं पढ़ता हूँ फिर मेरी मम्मी, फिर पापा, भाई, छोटी बहन और दादाजी भी पढ़ते हैं। फिर मैं हर बार किसी नए बच्चे को चकमक दे देता हूँ। बड़ौदा में भी हम चकमक बच्चों को देते थे।

बड़ौदा कितनी अच्छी जगह है। पर न जाने अब वहाँ क्या-क्या हो रहा है। लगभग हर रोज़ 40-50 व्यक्ति मरते हैं सिर्फ धर्म के नाम पर। मैं पूरे छह साल बड़ौदा में रहा। फिर हम लोग दिल्ली आ गए। अभी थोड़े दिन पहले मैं बड़ौदा गया था। वहाँ सब दुकानें, बस्तियाँ जला दी गईं। कितना बुरा हुआ यह सब। मेरा एक दोस्त मुश्ताक वहाँ रहता था। उसके पिताजी आर्मी में थे। वह जिस इलाके में रहता था। वहाँ मुसलमानों को घर सहित ज़िंदा जला दिया। मैं बार-बार सोचता हूँ कि क्या मुश्ताक अभी सुरक्षित होगा ?

अचिन्त्य शर्मा, दिल्ली

चकमक के साथ-साथ.....

बात सात-आठ साल पहले की है। मैंने हिरनखेड़ा में कुछ अड़ोस-पड़ोस के बच्चों को इकट्ठा किया और उन्हें कुछ चित्र बनाने और लिखने को कहा। ऐसा आईडिया मुझे कविता दीदी के एक खत में मिला था। जिसमें दीदी ने लिखा था कि तुम तो बहुत सारी रचनाएँ भेजते हो पर कोशिश करो कि तुम्हारे गाँव से और बच्चे भी कुछ बना सकें। मेरी कोशिश में आगे चलकर मेरे साथ राकेश भी हो गया। हम दोनों ने बच्चों के बीच ढेरों गतिविधियाँ कीं। जिनमें चकमक में आने वाली कई गतिविधियाँ भी शामिल होती थीं। तुम भी बनाओ, माथापच्ची, शब्द पहेली के अलावा बच्चों ने ओरेगेमी को खूब रुचि से सीखा।

चकमक आज 200 वाँ अंक पूरा कर रही है। जब बच्चों से चकमक के विषय में पूछें तो अलग अलग बातें निकलती हैं। आशुतोष का सोचना है कि मैंने चकमक जैसी बाल पत्रिका आज तक नहीं देखी क्योंकि चकमक ने हमारी बातों को ध्यान से सुना है ना कि व्यवसाय की बातों को। बबीता का कहना है कि चकमक यानी एक महीना मौज मस्ती का क्योंकि इसकी गतिविधियों के सहारे हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है। सभी बच्चे चकमक की प्रगति और उन्नति की कामना रखते हैं। चकमक के साथ हमारा प्रयास भी निरंतर बढ़ेगा इसी उम्मीद के साथ।

चम्पालाल कुशवाह, हिरनखेड़ा, होशंगाबाद

(चम्पालाल अपने गाँव में ही एक स्कूल चलाता है। साथ ही गाँव के चकमक क्लब उर्फ बाल समूह को पूरी मदद देता है।)

शब्द और चित्र एक-दूसरे के पूरक

मेरा जुड़ाव चकमक पत्रिका से कब और कैसे शुरू हुआ यह तो अब याद नहीं है। समय का चक्र चलता रहा, साथ-साथ परिपक्वता बढ़ती रही। मेरी चकमक के साथ ये भावना हमेशा जागृत रही कि बच्चों के लिए अच्छा काम हो रहा है। तो मैं भी अच्छा ही काम करूँ।

बच्चों के लिए लिखी जाने वाली कहानी-कविता एवं वैज्ञानिक लेखों के लिए चित्र एवं कभी-कभी पत्रिका के आवरण भी मैंने बनाए। चित्रों में नवीनता एवं प्रयोगात्मक विचारधारा लाने की कोशिश मैं सदैव करता रहा हूँ। साथ-साथ बच्चों को भी मेरे चित्र आकर्षित करने चाहिए इसका ध्यान मैंने हमेशा रखा। इन सब चित्रों को चकमक ने बढ़ावा दिया, सहर्ष स्वागत किया।

कभी-कभी मैं यह सोचता हूँ कि सभी पाठकों की, खासकर बच्चों की नज़र शब्दों से पहले चित्रों पर जाती है। चित्र पहली ही नज़र में अपनी तरफ खींचते हैं। वैसे तो शब्द और चित्र अपने आप में एक-दूसरे के पूरक हैं। चित्र होने से कविता-कहानी का उद्देश्य एक ही दृष्टिकोण में नज़र आ जाता है। चित्र बनने से शब्दों को चार चाँद लग जाते हैं।

मैं करीबन 12-15 साल से बच्चों के लिए चित्र बनाने का काम कर रहा हूँ, और निरंतर करता रहूँगा। चकमक बाल विज्ञान पत्रिका मेरे जैसे चित्रकारों के लिए एक सशक्त माध्यम है, बच्चों से सम्वाद करने का और उनकी अभिव्यक्ति जानने का।

प्रचण्ड ऊर्जा से ओतप्रोत, सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड को अपने में समाहित करने वाले पत्थरों की घर्षण से निर्मित चमक को, बच्चों की मुट्ठी से पाने में लगी चकमक पत्रिका के सभी सदस्यों को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। 200 वें अंक के लिए बधाई।

धनंजय

(धनंजय चित्रकार व डिज़ाइनर हैं।)

सारी दुनिया पढ़े चकमक

मुझे सही-सही तो याद नहीं पर चकमक हमारे यहाँ लगभग 7-8 साल से आ रही है। पहले जब हम दिल्ली में थे तब भी आती थी। जब पापा का तबादला बड़ौदा हो गया तब भी आती थी। सच बोलें तो मुझे कोर्स की किताबों से ज़्यादा अच्छी चकमक, संदर्भ लगती हैं। कितनी अच्छी बातें होती हैं इनमें। सारी दुनिया को पढ़ना चाहिए। मेरी चकमक तो न जाने कितने लोग पढ़ते हैं। पहले मैं पढ़ता हूँ फिर मेरी मम्मी, फिर पापा, भाई, छोटी बहन और दादाजी भी पढ़ते हैं। फिर मैं हर बार किसी नए बच्चे को चकमक दे देता हूँ। बड़ौदा में भी हम चकमक बच्चों को देते थे।

बड़ौदा कितनी अच्छी जगह है। पर न जाने अब वहाँ क्या-क्या हो रहा है। लगभग हर रोज़ 40-50 व्यक्ति मरते हैं सिर्फ धर्म के नाम पर। मैं पूरे छह साल बड़ौदा में रहा। फिर हम लोग दिल्ली आ गए। अभी थोड़े दिन पहले मैं बड़ौदा गया था। वहाँ सब दुकानें, बस्तियाँ जला दी गईं। कितना बुरा हुआ यह सब। मेरा एक दोस्त मुश्ताक वहाँ रहता था। उसके पिताजी आर्मी में थे। वह जिस इलाके में रहता था। वहाँ मुसलमानों को घर सहित ज़िंदा जला दिया। मैं बार-बार सोचता हूँ कि क्या मुश्ताक अभी सुरक्षित होगा?

अचिन्त्य शर्मा, दिल्ली

चकमक के साथ-साथ.....

बात सात-आठ साल पहले की है। मैंने हिरनखेड़ा में कुछ अड़ोस-पड़ोस के बच्चों को इकट्ठा किया और उन्हें कुछ चित्र बनाने और लिखने को कहा। ऐसा आईडिया मुझे कविता दीदी के एक खत में मिला था। जिसमें दीदी ने लिखा था कि तुम तो बहुत सारी रचनाएँ भेजते हो पर कोशिश करो कि तुम्हारे गाँव से और बच्चे भी कुछ बना सकें। मेरी कोशिश में आगे चलकर मेरे साथ राकेश भी हो गया। हम दोनों ने बच्चों के बीच ढेरों गतिविधियाँ कीं। जिनमें चकमक में आने वाली कई गतिविधियाँ भी शामिल होती थीं। तुम भी बनाओ, माथापच्ची, शब्द पहेली के अलावा बच्चों ने ओरेगेमी को खूब रुचि से सीखा।

चकमक आज 200 वाँ अंक पूरा कर रही है। जब बच्चों से चकमक के विषय में पूछें तो अलग अलग बातें निकलती हैं। आशुतोष का सोचना है कि मैंने चकमक जैसी बाल पत्रिका आज तक नहीं देखी क्योंकि चकमक ने हमारी बातों को ध्यान से सुना है ना कि व्यवसाय की बातों को। बबीता का कहना है कि चकमक यानी एक महीना मौज मस्ती का क्योंकि इसकी गतिविधियों के सहारे हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है। सभी बच्चे चकमक की प्रगति और उन्नति की कामना रखते हैं। चकमक के साथ हमारा प्रयास भी निरंतर बढ़ेगा इसी उम्मीद के साथ।

चम्पालाल कुशवाह, हिरनखेड़ा, होशंगाबाद

(चम्पालाल अपने गाँव में ही एक स्कूल चलाता है। साथ ही गाँव के चकमक क्लब उर्फ बाल समूह को पूरी मदद देता है।)

शब्द और चित्र
एक-दूसरे के पूरक

मेरा जुड़ाव चकमक पत्रिका से कब और कैसे शुरू हुआ यह तो अब याद नहीं है। समय का चक्र चलता रहा, साथ-साथ परिपक्वता बढ़ती रही। मेरी चकमक के साथ ये भावना हमेशा जागृत रही कि बच्चों के लिए अच्छा काम हो रहा है। तो मैं भी अच्छा ही काम करूँ।

बच्चों के लिए लिखी जाने वाली कहानी-कविता एवं वैज्ञानिक लेखों के लिए चित्र एवं कभी-कभी पत्रिका के आवरण भी मैंने बनाए। चित्रों में नवीनता एवं प्रयोगात्मक विचारधारा लाने की कोशिश मैं सदैव करता रहा हूँ। साथ-साथ बच्चों को भी मेरे चित्र आकर्षित करने चाहिए इसका ध्यान मैंने हमेशा रखा। इन सब चित्रों को चकमक ने बढ़ावा दिया, सहर्ष स्वागत किया।

कभी-कभी मैं यह सोचता हूँ कि सभी पाठकों की, खासकर बच्चों की नज़र शब्दों से पहले चित्रों पर जाती है। चित्र पहली ही नज़र में अपनी तरफ खींचते हैं। वैसे तो शब्द और चित्र अपने आप में एक-दूसरे के पूरक हैं। चित्र होने से कविता-कहानी का उद्देश्य एक ही दृष्टिकोण में नज़र आ जाता है। चित्र बनने से शब्दों को चार चाँद लग जाते हैं।

मैं करीबन 12-15 साल से बच्चों के लिए चित्र बनाने का काम कर रहा हूँ, और निरंतर करता रहूँगा। चकमक बाल विज्ञान पत्रिका मेरे जैसे चित्रकारों के लिए एक सशक्त माध्यम है, बच्चों से सम्वाद करने का और उनकी अभिव्यक्ति जानने का।

प्रचण्ड ऊर्जा से ओतप्रोत, सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड को अपने में समाहित करने वाले पत्थरों की घर्षण से निर्मित चमक को, बच्चों की मुट्ठी से पाने में लगी चकमक पत्रिका के सभी सदस्यों को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। 200 वें अंक के लिए बधाई।

(धनंजय चित्रकार व डिज़ाइनर हैं।)

चकमक के सत्रह बरस

चकमक सन् 1985 से सतत् निकल रही है, यह अपने आप में एक उपलब्धि है। इसके पाठक वर्ग और इसकी विषय वस्तु दोनों में ही कई बदलाव आए, कई मोड़ आए, चकमक निकलते रहने पर भी कई सवाल उठे, पर चकमक ने इन सवालों की चुनौती का भी सामना किया। और फिर एक बार अपने को स्थापित रखने में जुटी हुई है।

चकमक का यह 200वाँ अंक इस 17 वर्षीय यात्रा पर एक नज़र डालने का अच्छा मौका है। चकमक से मेरा नाता काफी पुराना है। बच्चों के स्कूली कार्यक्रमों से जुड़े रहने के कारण कई बार लेख लिखने का आग्रह भी होता ..... कुछेक लेख मैंने लिखे भी। हर बार लेख में चुनौती होती कि 11–12 वर्ष के बच्चों को कुछ रोचक पढ़ने को मिले।

प्रकाशन से पहले बच्चों को पढ़ाकर भी देखती....कई जगह समझ में आता कि बात बन नहीं रही है फिर से लिखती। यह अनुभव मेरे लिए काफी रोचक रहा है। चकमक आसपास के बच्चों को भी पढ़ाती। कुछ को अच्छी लगती कुछ को नहीं। उसके रंगीन न होने के कारण बच्चों को आकर्षित करने में दिक्कत भी होती।

चकमक अधिकांश समय कई सरकारी और गैर सरकारी आदेशों के तहत माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक और प्राथमिक शालाओं में जाती रही है। कभी इन आदेशों से वितरण 40,000 तक बढ़ जाता तो कभी 2000 ही रह जाता। इस समस्या से उबरने के लिए चकमक को खुले बाज़ार में स्थापित करने की कोशिशें भी चलीं ताकि वह स्वतंत्र रुप से चल सके।

इन कोशिशों से दो तरह की बहस छिड़ गईं ......

एक तो यह कि चकमक की माँग बढ़ाने के लिए चकमक में जो सामग्री देनी होगी, उससे क्या हमारे सिद्धांतों पर सवाल नहीं उठेंगे?

दूसरी यह कि बाज़ार में जो व्यक्तिगत रूप से चकमक खरीद सकेंगे, वे मुख्यतया मध्यम या सम्पन्न वर्ग के होंगे। क्या इससे हम वंचित क्षेत्रों और समूहों को अच्छी सामग्री उपलब्ध कराने के उद्देश्य से दूर नहीं हो जाते?

इन सवालों से जूझते हुए कुछ बातें समझ में आईं। एक तो यह कि अधिकांश हिन्दी क्षेत्र के बच्चे 13-14 साल की उम्र तक स्वतंत्र पाठक नहीं बन पाते। ऐसे पाठक जो कि 4–5 पन्नों का लेख व कहानियाँ पढ़कर समझ जाएँ। इस उम्र के बच्चों को पढ़ने, पढ़कर समझने और समझकर करने में किसी वयस्क या थोड़े बड़े बच्चों की आवश्यकता होती है। अत: स्कूल, अन्य कार्यक्रमों और पढ़े-लिखे पालकों के माध्यम से कुछ बच्चे चकमक के पाठक बन सकते हैं। पिछले दशक के गुणात्मक सुधार के व्यापक कार्यक्रमों में ऐसी सामग्री की माँग बढ़ी है। यह भी ज़रूरत महसूस हुई है कि चकमक के लेखों को और आसान बनाया जाए। साथ ही शैक्षणिक समूहों में चकमक के उपयोग पर कार्यशालाओं की ज़रूरत भी है। ऐसी कार्यशालाएँ चकमक को लोकप्रिय बनाने में अवश्य कारगर होंगी।

आशा है कि रंगीन न होने के बावजूद अगले वर्षों में चकमक की लोकप्रियता बढ़ती जाएगी और वह अगली पीढ़ी को संवेदनशील, तार्किक व खोजी बनाने में अपनी भूमिका अदा करेगी।

अंजली नरोना

(अंजली एकलव्य में प्राथमिक शिक्षा के काम देखती हैं।)

बचपन
जीवन की पाठशाला है

बचपन में, जो रूप हम लगातार देखते हैं, जो स्वाद हम चखते हैं, जो रंग हमें लुभाते हैं, जो ध्वनियाँ हमें प्रिय लगती हैं और जो स्पर्श हमें अच्छे लगते हैं, उन्हीं की अनुभूतियाँ हमारे जीवन की दिशा और गति को निर्धारित करती हैं। इसीलिए बचपन को उन्मुक्त रखा जाना चाहिए।

स्वाभाविक ही बच्चों का अनुभव संसार छोटा होता है, लेकिन उनकी काल्पनिक शक्ति अपार होती है। वे बहुत उत्सुक भी होते हैं। इसीलिए वे अपने जीवन और आसपास की वस्तुओं, घटनाओं और वातावरण को लेकर रोचक प्रश्न करते हैं। अक्सर ऐसे प्रश्नों का, हम बड़े लोग कठिन, घुमावदार और जानकारीपूर्ण जवाब देने लगते हैं, जो बच्चों की जिज्ञासा का समाधान तो नहीं ही कर पाते, उन्हें भ्रमित जरूर कर देते हैं। यदि बच्चों को अपनी जिज्ञासाओं का हल ढूँढने के लिए खुला वातावरण दिया जाए तो निश्चित ही वे अधिक साहसी, धैर्यवान, अध्ययनशील और व्यवहारिक बनेंगे।

बच्चे जितने मासूम, भोले और पारदर्शी होते हैं, उनका मन उतना ही जटिल और गहरा होता है। अपने मन पर दर्ज़ हो रहे अनुभवों को अभिव्यक्त करने की नैसर्गिक प्रतिभा उनमें होती है। और अभिव्यक्ति के लिए अपना मनपसंद माध्यम वे स्वयं चुनते हैं। प्राय: इसी मामले में बड़े लोग बच्चों की ज़िंदगी में अनुचित दखल देते हैं। उनकी निश्छल और मौलिक भावनाओं पर हम अपनी इच्छाएँ, महत्वाकांक्षाएँ, पूर्वाग्रह और ज्ञान थोपने लगते हैं, जो अन्तत: बच्चों को एक नकली और अस्वाभाविक जीवन की ओर ले जाता है।

चकमक के साथ रचनात्मक तौर पर जुड़ते समय मन में तसल्ली रहती है कि बड़े हो जाने के बावजूद हमें बच्चों की दुनिया को, बच्चों की नज़र व उन्हीं के शब्दों से देखने का सुअवसर मिल रहा है।

बच्चों के साथ, उनकी शर्तों पर जीवन को समझने की कोशिश, सचमुच रोमांचकारी होती है।

मनोज कुलकर्णी
(मनोज चित्रकार भी हैं और कहानियाँ भी लिखते हैं)

चकमक
मई-जून, 2002

चकमक की चिंगारी

चकमक के साथ मैंने दो साल से कुछ कम वक्त काम किया – पहले 18-19 अंकों तक। पर आज भी चकमक से मेरा नाम जोड़ा जाता है। शायद इसलिए कि इसके ढाँचे, शक्ल और विषय सामग्री की कल्पना की थी मैंने। आज लोग शिकायत करते हैं कि इतने सालों में भी इस पत्रिका के बुनियादी ढाँचे में कोई खास फर्क नहीं आया है। यह एक कमज़ोरी कही जा सकती है। या फिर एक ताकत भी।

इस पत्रिका का नाम 'चकमक' एक प्रतियोगिता से निकला था। इसे अरविन्द गुप्ता ने सुझाया था। इस नाम के पीछे उनका कहना था कि चकमक की चिंगारी बच्चों में रचनाशीलता की लौ जगाएगी।

यह आम राय थी कि हम म. प्र. सरकार द्वारा पत्रिका की थोक खरीद की गुंजाइश तलाशेंगे और साथ ही साथ, खुले बाज़ार में बिक्री के प्रयास भी करेंगे। लेकिन पहला अंक आने से पहले ही साथ पहली हो गई। पत्रिका म. प्र. माध्यम के साथ मिलकर निकाली जानी थी। लेकिन ऐसा नहीं हो सका क्योंकि माध्यम को पहले सम्पादकीय में भोपाल गैस त्रासदी के बाद सरकार की भूमिका पर लिखी गई एक लाइन से आपत्ति थी। पर हमने अपना पक्ष नहीं छोड़ा। सम्पादकीय स्वतंत्रता के लिए यह छोटा कदम था। इससे सामाजिक कोशिशों और सरकारी नीतियों के बीच की वह खाई भी स्पष्ट हो गई जो आज तक बनी हुई है।

पत्रिका की गैर-पेशेवर शक्ल के लिए व्यावसायिक डिज़ाइनर, ग्राफिक विशेषज्ञ और कलाकारों द्वारा हमारी हँसी भी उड़ाई गई। फिर भी हमने इसे वैसा ही बनाए रखा। क्योंकि हमें लगा कि इसका अनगढ़पन इसके बाल पाठकों के ज्यादा करीब होगा और उन तक इसकी पहुँच को बढ़ाएगा।

इस तरह से स्थानीय तथा खुद के प्रयासों से पत्रिका निकालने का एक और कारण था। हम चकमक के सहारे इस क्षेत्र में हिन्दी पत्रकारिता को पनपाना भी चाहते थे। और निश्चित ही चकमक ने इस दिशा में अभिनव काम किया। चकमक उन शुरुआती प्रकाशनों में से है जिसने लेखकों और चित्रकारों को उचित मानदेय देने का प्रावधान रखा। पारम्परिक और जनजातीय शैली के चित्रों का अपनी पत्रिका में हमने खूब उपयोग किया। आज भी जनजातीय कलाकारों का एक बड़ा समूह है जो पत्रिका को एक अलग शक्ल देता है।

चलिए अब विषयवस्तु की थोड़ी बात करें। मैं साइंस टुडे के अनुभवों से बेहद प्रभावित था जो चकमक के बुनियादी प्रारूप से साफ झलकता है। सो चकमक में विज्ञान की सामग्री की भरमार रहती थी। दरअसल यह जन्मी ही एक बाल विज्ञान पत्रिका के रूप में थी। शुरू-शुरू में पत्रिका कुछ ज़्यादा ही भारी-भरकम हुआ करती थी। यह शायद इसलिए कि हम अक्सर भूल जाते थे कि हम पत्रकार हैं। हम खुद को शिक्षक या उपदेशक के रूप में देखने लगते हैं। बच्चों की रुचियों और ध्यान लगाने की क्षमताओं के बारे में हमें तब बहुत कुछ सीखना बाकी था।

इसके अलावा चकमक में अधिकतर बच्चों के लिए गतिविधियाँ और कहानियाँ-कविताएँ होती थीं। कोशिश तो यह थी कि पत्रिका सहभागिता और संवाद को बढ़ावा दे। पर मेरा पन्ना को छोड़ दें तो हम हमेशा इसमें कामयाब नहीं हो पाते थे।

कई चीज़ें हमने सोच-समझकर कीं। जैसे शब्दों और भाषा का इस्तेमाल, जेण्डर के मुद्दों को संवेदनशीलता के साथ उठाना आदि। हमने भाषा का उपयोग समाज के एक जीवन्त पहलू की तरह किया। पारम्परिक साहित्यकारों की संस्कृतनिष्ठ भाषा से अलग हमने रोज़मर्रा के बोलचाल की भाषा को चुना। शब्दकोष के कठिन शब्दों के बजाय सहज-सरल विकल्पों का प्रयोग किया। हमने अंग्रेज़ी के सरल और प्रचलित शब्दों का हिन्दी भाषा में उपयोग करके हिंग्लिश के विकास में अपना योगदान दिया।

हमने जेण्डर के मसलों पर खास ध्यान देते हुए पत्रिका में बालिकाओं की ओर एक संवेदनशील रुख अपनाया। सर्वनामों में स्त्रीलिंग का अधिक उपयोग, जहाँ सम्भव हो लिंगभेदहीन तरीके से लिखना और कहानी-कविताओं तथा चित्रों में ज़्यादा महिला पात्रों को जगह देना। यहाँ हमें पुरुष प्रधान समाज का सामना करना था जो भारतीय समाज में बहुत गहरे पैठी हुई है।

शुरुआती समय में हम बच्चों से बच्चों की तरह पेश आने में कामयाब नहीं हो सके। उन्हें हमने कम उम्र के वयस्कों की तरह देखा। न ही हम बच्चों के लिए बच्चे बन पाने में ही ज़्यादा कामयाब हो पाए। हमारा बड़ा होना हमारे शब्दों, हमारी शैली से झलकता था। यह एक ऐसा संघर्ष है जिसमें

हम लगातार जूझ रहे हैं। हमें अभी भी बच्चों की आज़ादी और बराबरी के बारे में बहुत कुछ सीखना है।

हमें यह भी याद रखना है कि चकमक शून्य में खड़ी मात्र एक पत्रिका नहीं है। अधिकतर लोगों का मानना है कि चकमक हमारे स्कूली कार्यक्रमों की एक ज़रूरत से उपजी थी। अच्छी पूरक सामग्री की ज़रूरत जो बच्चों को रोचक लगे, पाठ्य पुस्तक से अलग हो, और स्कूल की पढ़ाई को पुख्ता करे। पर मेरे लिए चकमक हमेशा ही एक बड़े चित्र का एक हिस्सा है। इस चित्र के बाकी हिस्से हैं खास पाठकों के लिए निकाली जाने वाली अन्य पत्रिकाएँ। एक पत्रिका शिक्षकों के लिए, एक और किशोर उम्र के पाठकों के लिए। शायद और भी कई। पर इस चित्र में सिर्फ पत्रिकाएँ ही नहीं है।

चकमक दरअसल चकमक क्लबों के एक बड़े जाल का हिस्सा है। चकमक क्लब बच्चों में वैज्ञानिक सोच विकसित करने का एक ज़रिया माना जा सकता है। एक तार्किक मन जो विकास के उस सलीके पर सवाल खड़ा कर सके जो समाज के कुछ खास तबकों के लिए बेहद फायदेमन्द है। लेकिन उन लाखों करोड़ों पर सिर्फ दया करना जानता है जो उसी विकास के चलते और गरीब रह जाते हैं। समस्या की विशालता को देखें तो यह एक बहुत ही छोटा-सा कदम है, पर एक ज़रूरी कदम। एक ऐसी जगह बनाना जहाँ बच्चे मिल-बैठ सकें, रचनात्मक गतिविधियाँ कर सकें, अपनी नेतृत्व की क्षमताएँ विकसित कर सकें, एकजुटता और अपनापन महसूस कर पाएँ। यह एक कमरा हो सकता है जहाँ वे मिलें, पढ़ने के लिए कुछ किताबें हों, खेलने के लिए कुछ खेल, आराम से बैठकर बतियाने के लिए और चर्चा करने के लिए थोड़ी सी जगह।

हमने चकमक क्लबों का एक जाल खड़ा करने की पुरज़ोर कोशिशें कीं। ये प्रयास देवास के इलाके में काफी कामयाब रहे पर लम्बे समय तक नहीं चल पाए। पर इससे एक बात तो साबित हो पाई। यह कि बच्चों को अगर स्वतंत्र चिंतन और काम के मौके दिए जाएँ तो वे मुखर, रचनाशील और धर्मनिरपेक्ष विचारकों के रूप में बड़े हो सकते हैं।

फिर यह तो है ही कि प्रजातांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष विचार का आधार वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही है। आज की बढ़ती ज़रूरत भी यही है। अस्सी के दशक के अन्त और नब्बे के दशक की शुरुआत में देश में हुई घटनाओं ने ग्रामीण और कस्बाई बच्चों के लिए एक धर्मनिरपेक्ष विकल्प की इस ज़रूरत को और रेखांकित कर दिया है। यही वह समय था जब कट्टरवाद का घातक वायरस फैला। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक धार्मिक कट्टरता एक साथ ही पनपते हैं। दुनिया के आर्थिक रूप से सबसे अग्रणी समाजों में भी ऐसा ही होता है। वे चाहे ईसाई हों, मुस्लिम या हिन्दु कट्टरपंथी। ये सभी उग्र, संकीर्ण विचारधारा वाले और इतिहास को अपने नज़रिए के मुताबिक लिख डालने को तत्पर हैं।

यह एक ऐसी धारा थी जिसे दुनिया के मंच पर हो रही घटनाओं से बल मिला। यही वह दौर था जब डब्ल्यू.टी.ओ. जैसे विषय चर्चा में आने लगे थे और नया-नया वैश्वीकरण और निजीकरण विकासशील दुनिया पर तलवार की तरह लटक रहा था। खतरा था कि वह इस दुनिया को गरीब उपभोक्ता की तरह हाशिए पर धकेलकर रख देगा।

जैसे-जैसे निजीकरण को अपनाया जाने लगा, सामाजिक संगठन भी कमज़ोर होते गए। इससे एक किस्म की अस्थिरता का माहौल बना। भविष्य अनिश्चित, रोज़गार की दुनिया अस्त-व्यस्त। शांत स्थिर जीवन की जगह अस्थिर उतार-चढ़ावों ने ले लिया। इसी समय सैटेलाइट टी.वी. का भी प्रसार हुआ और उसके साथ ही फैली एक सतही बनावटी वैश्विक संस्कृति। एक ऐसी वैश्विक मूल्य व्यवस्था जो नैतिकता के प्रति एक उदासीन उपभोक्ता तैयार करती है।

ऐसे में फासीवाद, तानाशाही प्रवृत्ति, पुरुषप्रधान सामाजिक व्यवस्था और झूठे इतिहासों के विकल्प के रूप में चकमक क्लबों ने लोकतंत्र, सहयोग, सहिष्णुता, व्यापक व खुला नज़रिया और जेण्डर समानता को चुना। गुजरात से स्पष्ट है कि हम पहले रास्ते पर कितना आगे निकल गए हैं। अब भी वक्त है कि हम लौट आएँ।

इसीलिए यह चिन्ता का विषय है कि चकमक क्लब गाँवों के जीवन का एक अभिन्न अंग नहीं बन पाए। एक तरह से ये सामुदायिक जीवन से हमेशा कटे हुए ही रहे। सिर्फ स्कूल के विस्तार के रूप में और बच्चों की एक खास गतिविधि के रूप में सिमटकर रहे, जिससे बड़ों का कोई लेना-देना नहीं था। यह हमारी बड़ी नाकामयाबी है। हमें परखना होगा कि हम कहाँ चूक गए और अपने में सुधार करना होगा। अब भी देर नहीं हुई है। हम फिर से कोशिश कर सकते हैं। और करते रहेंगे। क्योंकि वे छोटे लोगों के छोटे-छोटे प्रयास ही हैं जो दुनिया को बदल सकते हैं।

रैक्स डी. रोज़ारियो

दुनिया के बदलते रंग चकमक के संग

चकमक के 200 वें अंक का मतलब है कि इसे निकलते हुए 17 साल हो चुके हैं। अब किसी भी प्रकाशन के लिए 17 साल तक लगातार निकलना, खासकर बच्चों की पत्रिका, वह भी हिन्दी में, एक बहुत बड़ी बात है। जिसके लिए सबसे पहले आइए हम सब मिलकर ताली बजाएँ।

17 साल में तो दुनिया बहुत बदल गई है। पहले पाठकों से ही शुरू करें। जो जुलाई, 85 के आसपास जन्में हैं (जब चकमक की शुरुआत हुई) वे तो चकमक पढ़ने की उम्र से शायद आगे बढ़ गए हैं। यानी 17 साल के हो गए हैं। जबकि वे बच्चे जो चकमक की शुरुआत के समय 10-12 साल के थे, आज 30 साल के आसपास की उम्र के हैं। शायद उनमें से कई के बच्चे भी हो गए होंगे। मालूम नहीं उनमें से कितने आज भी चकमक को याद करते हैं या अपने बच्चों को पढ़ाने का इरादा रखते हैं। मुझे याद है कि भोपाल गैस पीड़ित अनाथ बच्चों को हमने शुरू से ही चकमक देना शुरू किया था। उन पर एक कहानी व उनके चित्र भी छापे थे। मालूम नहीं वह आज कहाँ हैं।

यह तो रहा पाठकों का बदलता रंग। हम निकालने वालों, सम्पादकों का क्या? वे तो 17 साल और बुढ़ा गए। मेरी उम्र तो 50 से अधिक हो गई है, बाल झड़ गए हैं। लेकिन बच्चों की अहमियत मेरे अपने नज़रिए में कुछ कम नहीं हुई है। हाँ पहले ज़्यादा तार्रुफ मध्यप्रदेश के बच्चों से होता था, अब देश के और राज्यों में भी उनसे मिलना-जुलना होता है। लेकिन चकमक टीम से जुड़े दो लोगों की तरफ ध्यान जाता है। एक तो हैं टुलटुल, जो एक समय चकमक की पाठक थी (उसके पिता चकमक टीम में थे), आज एक लेखिका, एक सामाजिक कार्यकर्त्ता है। नन्हीं-सी टुलटुल (वह आज भी दुबली-पतली है) आज चकमक का काफी काम सम्हालती है।

दूसरा है शिवेंद्र, पाठक की हैसियत से वह बचपन से ही चित्र बनाता था। उसकी रुचि को देख कभी-कभी हम उससे कहानियों के चित्र बनवाते थे। वह कार्टून भी तैयार करता था। आठवीं, नौवीं, बारहवीं पार करके वह आज भोपाल का एक जाना-माना चित्रकार व डिज़ाइनर है। दोनों टुलटुल और शिवेंद्र को देखकर ऐसा लगता है कि उनकी तरह चकमक के अन्य बाल पाठक भी आज कुछ रचनात्मक काम कर रहे होंगे। जब किसी दूर शहर या गाँव में ऐसे पूर्व पाठक मिलते हैं, हाँ कभी-कभी मिलते भी हैं, तो बहुत खुशी होती है। तुम को यह भी बता दूँ कि शुरूआत से ही चकमक की साज-सज्जा करने वाली जया विवेक आज देश की नामी शिल्पकार बन गईं हैं। लेकिन जब भी मुलाकात होती हैं, चकमक की कहानियों का दौर चालू हो जाता है।

यह तो रही हमारी-तुम्हारी बातें, लेकिन इन 17 सालों में दुनिया कहाँ पहुँच गई है? भई हमें तो लगता है बहुत तेज़ी से आगे निकल गई है

फास्ट फूड के ज़माने में केवल फूड ही फास्ट नहीं है सभी कुछ फास्ट हो गया है। ऐसे समय में जहाँ आज रंगबिरंगी दुकान खुलती है और एक- दो वर्ष में बंद हो जाती है। ऐसे में 17 साल तक चकमक का लगातार निकलना कुछ पिछली शताब्दी की घटना जैसा है।

संगीत बदल गया, कपड़े बदल गए, वाहन बदल गए, व्यंजन बदल गए, बात करने का अंदाज़ बदल गया ....। बदलाव तो ज़िंदगी का नियम है। अब यह सब बदलाव अच्छे हैं या नहीं, इसका फैसला तो तुम्हारी नई पीढ़ी को ही करना चाहिए। नहीं तो तुम कहोगे कि हमेशा की तरह बड़े लोग ही अच्छा-बुरा तय करने लगे। खासकर एक ऐसे दौर में जहाँ पीढ़ियों के बीच फर्क और भी ज़्यादा हो गया है। लेकिन मैं हमेशा इस विचार का रहा हूँ कि पीढ़ियों के बीच का फर्क, कम पीढ़ी वालों के लिए शोषण करने का वायिस नहीं बनना चाहिए। बच्चों के भी हक है, सोच है, उनको बच्चा कहकर दबाना व नज़रअदाज़ नहीं करना चाहिए। बड़ों की ताकत शारीरिक, मानसिक या सामाजिक – बच्चों को दबाने का ज़रिया नहीं बनना चाहिए। ना ही घर और स्कूल में और ना ही समाज में। तुम को क्या इस पहलू में पहले से कुछ फर्क दिखने लगा है?

लेकिन दुनिया में एक बदलाव गहरे संकट का कारण बनता जा रहा है। पृथ्वी से जो हमें पानी, भोजन, जंगल, धातु वगैरह मिलते हैं, इन 17 सालों में उनका दोहन इतना अधिक हो गया है कि अगर इसी या आगे और तेज़ गति से यह दोहन होता रहा तो आने वाली पीढ़ियों के लिए हम कुछ नहीं छोड़ेंगे। तो वह कैसे जिएगी? फास्ट फूड वाली दुनिया का यह पहलू हम भूल नहीं सकते हैं। अगर आने वाली पीढ़ियों का जीवन सुरक्षित रखना है तो इस फास्ट दोहन में कुछ ब्रेक लगाना होगा। इस बात की ज़िम्मेदारी हमारी पीढ़ी के साथ-साथ तुममें से 16–17 वर्ष की पीढ़ी वालों की भी उतनी ही होगी। करोगे ना मिलकर इसका हल?

इन 17 सालों में दो रचनाएँ जो पाठकों ने भेजी थी मैं कभी भूलता नहीं हूँ। और जगह-जगह उनका ज़िक्र करता हूँ। एक थी बस्तर के फूलसिंह ठाकुर की कहानी ''लोमड़ी और ज़मीन''। शायद आज फास्ट फूड वाली दुनिया की आने वाली हालत का सही बयान इस कहानी में है। बहुत ही गजब की कहानी है यह। दूसरी है शुक्ला चौधरी की एक कविता ''जैसा मैं चाहती हूँ , मेरे गुरूजन मुझे वैसा नहीं पढ़ाते।''

पूरे मुल्क में पाठ्यक्रम बदलाव के झगड़े में काश हमारे शिक्षाविद् इस कविता पर ध्यान देते तो समझते कि बच्चों के दिल में झाँके बिना उनकी शिक्षा तय करना एक तरह का अपराध ही है।

हम जैसे लोगों ने जो भी चकमक में अगड़म-बगड़म लिखा, वह कितना अच्छा या मज़ेदार था, वह तुम जानो। लेकिन ''लोमड़ी और ज़मीन'' और ''जैसा मैं चाहती हूँ..'' व अन्य कई ऐसी रचनाएँ जो तुम लोगों ने भेजी हैं, से वाकई में चकमक में निखार आता रहा है। उम्मीद है यह निखार कम नहीं होगा।

बहुत बधाई, चकमक की तरफ से।

विनोद रायना

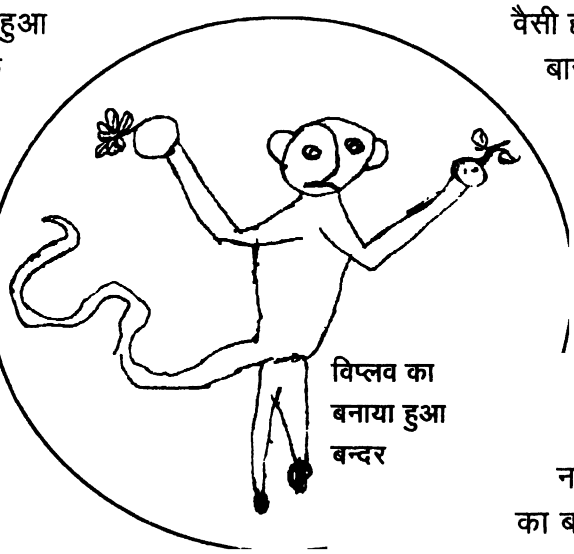
बच्चों के चित्र

चकमक की जो चीज़ मुझे अच्छी लगती है, वह है उसकी चित्रकारी। खासकर बच्चों या ऐसे लोगों द्वारा बनाए चित्र जिन्होंने कला की पढ़ाई नहीं की है। (हालाँकि मैं उन लोगों में से हूँ जिन्होंने इसे पढ़ा-सीखा है।) इसका कारण यह नहीं कि चकमक के सम्पादक उन बेचारे बच्चों पर दया कर रहे हैं जिन्हें ठीक से चित्र बनाना नहीं आता। बल्कि इसलिए कि मुझे ये चित्र वाकई बहुत अच्छे लगते हैं।

एक बार चकमक में छपने वाली एक कविता के लिए मुझे एक बन्दर का चित्र बनाना था। मैंने बन्दर तो बहुत देखे हैं। किताबों में उनके फोटो और लोगों के बनाए हुए बन्दर के चित्र भी देखे हैं। पर जब मैं बन्दर का चित्र बनाने की कोशिश करने लगी, तो मुझे अचानक एहसास हुआ कि मैं तो जानती ही नहीं कि एक बन्दर दिखता कैसा है। मैंने थोड़ा-बहुत इधर-उधर की कोशिशें करीं। मुझे लगा कि एक बन्दर को कुछ-कुछ आदमी जैसा दिखना चाहिए, पर आदमी से कुछ अलग भी होना चाहिए। पर जो भी मैं बनाती वह बहुत अजीब दिखता था। वह कहीं से भी बन्दर जैसा नहीं होता।

फिर मुझे याद आया कि मेरे पास विप्लव का बनाया हुआ बन्दर का एक चित्र था। यह उसने तब बनाया था जब वह 9 साल का था। मैंने अपनी पुरानी कॉपियाँ छाँटीं और आखिरकार मुझे यह चित्र मिल गया।

मैं चकित थी – यहाँ मैं घण्टों से कोशिश कर रही थी कि एक बन्दर का चित्र बना पाऊँ और यहाँ इस 9 साल के लड़के ने कितनी आसानी से चन्द सरल लकीरें खींचकर एक ऐसी छवि बनाई थी जो बिलाशक एक बन्दर की ही थी। और यह महज़ एक बन्दर नहीं था। यह एक व्यक्तित्व वाला बन्दर था। इस बन्दर में भावनाएँ थीं। इस बन्दर का चेहरा बिल्कुल भी इन्सान का चेहरा नहीं था, पर फिर भी इन्सान के चेहरे जैसा था। यह एक सचमुच के बन्दर जैसा दिखता था। इस बात के बावजूद भी कि यह बन्दर के किसी भी फोटो से बहुत अलग था। एक अद्भुत घुमावदार दुमवाला बन्दर था। मैं जो दुम बना रही थी वो हो सकता है कि आकार में किसी सचमुच के बन्दर की दुम से बहुत मिलती-जुलती हो, पर विप्लव के चित्र वाले बन्दर की दुम इतनी ज़्यादा बन्दरनुमा थी और उसका आकार भी मज़ेदार था।



विप्लव का बनाया हुआ बन्दर

मैंने विप्लव के बन्दर जैसा ही बन्दर बनाने की कोशिश की। मैंने वैसा ही आकार और वैसी ही लाइनें बनाईं। मैंने बहुत बारीकी से उसकी नकल उतारनी चाही। यहाँ तक कि मैंने उस चित्र को खिड़की के शीशे पर रखकर उसे ट्रेस करने की भी कोशिश की। जो भी मैं करती रही, नतीजे में उतना अच्छा और सहज-स्वाभाविक बन्दर नहीं बना पाई जितना विप्लव का बन्दर था।

इसलिए मुझे लगता है कि यह अच्छी बात है कि चकमक बच्चों के ऐसे सुन्दर चित्र छाप सकती है। बच्चों के चित्र किसी बड़े चित्रकार द्वारा बना पाना सम्भव ही नहीं है। हालाँकि ऐसे कई सारे बड़े चित्रकार हैं जो बच्चों की तरह चित्र बना पाएँ तो उन्हें बहुत अच्छा लगेगा।

कैरन हेडॉक

(कैरन चित्रकार और जैव-भौतिक शास्त्री हैं। कई साल पहले एकलव्य में काम करती थीं। अब चण्डीगढ़ में बच्चों व शिक्षकों के साथ काम करती हैं।

हिन्दी पढ़ना सीखा

न् 1985 की एक सुबह मैं अरेरा कॉलोनी के ई-इलाके से गुज़र रहा था। एक मकान में बेलों और त्तियों से लगभग छिपा हुआ एक बोर्ड दिखाई दिया ज़स पर लिखा था – एकलव्य। कुछ ही दिनों पहले क छोटी-सी पुस्तिका पर भी मैंने यही नाम देखा ा। पुस्तिका भोपाल गैस त्रासदी के बारे में थी और समें लिखी गई बातें (सरकार के निराशाजनक वैये पर) मेरे विचारों से मेल खाती थीं।

मैं कौतूहलवश उस दफ्तर में प्रवेश कर गया और वहाँ मेरी मुलाकात श्री मोहन से हुई। मेरे लिए ह सुखद आश्चर्य का विषय था कि उन्होंने मुझसे ाफ बांग्ला में बात की और मुझे अन्दर ले गए डॉ. वेनोद रायना से मिलाने। बाद में ये विनोद भाई बन ाए!

आपसी परिचय के बाद उन्होंने मुझे बताया कि वे लोग एक बच्चों की पत्रिका निकालने जा रहे हैं। उन्होंने मेरे अनुभवों के बारे में सुनकर वहीं, उसी दिन मुझसे उस पत्रिका के लिए काम करने की पेशकश की। मैंने यह कहकर मना किया कि छपाई के क्षेत्र में लम्बा अनुभव होते हुए भी मैं लगभग बहरा हूँ और मुझे हिन्दी भी अच्छी तरह नहीं आती। तब उन्होंने कहा कि इन बातों से खास फर्क नहीं पड़ेगा। अगर मैं काम करना चाहूँ तो दफ्तर आकर कुछ दिन आज़माकर देख लूँ।

जीवन भर बी.एच.ई.एल. में नौकरी करने के बाद उन दिनों मैंने घर पर एक फोटोकॉपी की मशीन लगाई थी और घर पर ही कई ऑफिसों के काम लाकर किया करता था। पर बीच में मेरी तबीयत खराब हो जाने के कारण कई दफ्तरों से सम्पर्क छूट गया था। इसलिए काम भी पहले जैसा नहीं चल रहा था। फिर बाज़ार में ऑटोमेटिक जापानी मशीनें भी आ गई थीं जिनसे टक्कर लेना पागलपन होता। सो मैंने एकलव्य में काम करके देखने का फैसला किया। और बहुत सारे जवान ऊर्जावान लोगों के बीच मैं फिर से डटकर काम करने का मज़ा लेने लगा।

मुझे यहाँ चकमक के वितरण के सारे कागज़ात और हिसाब-किताब रखने होते थे। यह काम तो मैं अंग्रेज़ी में ही करता था, पर चकमक में काम करते हुए मैंने छपी हुई हिन्दी पढ़ना सीखा – 60-62 साल की उम्र में!

बी.एच.ई.एल. में मैंने वहाँ के छपाई विभाग को शुरू से गढ़ा था। इसके लिए मुझे कुछ समय के लिए मैनचेस्टर जाकर ऑफसेट छपाई का प्रशिक्षण भी लेना पड़ा था। उसका कुछ लाभ मुझे चकमक की छपाई करवाने के समय भी मिला। चकमक की छपाई भी ऑफसेट मशीन पर ही होती थी।

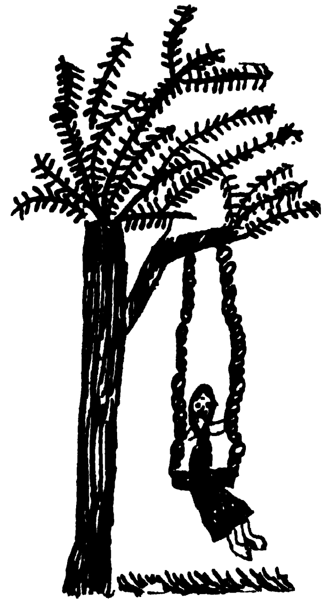
इसके अलावा एकलव्य के दफ्तर में हमने एक छोटा-सा फोटोग्राफी का डार्क-रूम (अँधेरा कमरा) भी बनाया था। कई बार अपनी ज़रूरत के हिसाब से हम तस्वीरों के छोटा-बड़ा कर लेते थे। यहाँ कुछ उत्साही लोगों को मैंने स्क्रीन प्रिंटिंग भी सिखाई।

छह साल बाद फिर लगातार बीमार रहने के कारण मैंने काम छोड़ दिया। पर एकलव्य में काम करते हुए ऐसा नहीं लगता था कि मैं किसी ऑफिस में काम कर रहा हूँ। लगता था कि सभी एक परिवार के सदस्य हैं और मिल-जुलकर काम कर रहे हैं। काम छोड़ने के बाद भी वैसा ही रिश्ता एकलव्य के साथ आज भी बना हुआ है।

हिमांशु विस्वास

खट्टा-मीठा

चकमक के संग-बचपन के रंग



जब से मैंने चकमक में काम करना शुरू किया है तब से एक काम लगातार कर रही हूँ, वह है मेरा पन्ना की रचनाएँ देखना-पढ़ना। रचनाएँ भेजने वालों को पत्र भी लिखती रही हूँ। इन रचनाओं को देख या पढ़कर सचमुच मैंने बहुत सीखा है, अब तक जो कुछ बड़ों का लिखा पढ़ा है उससे भी कहीं ज़्यादा।

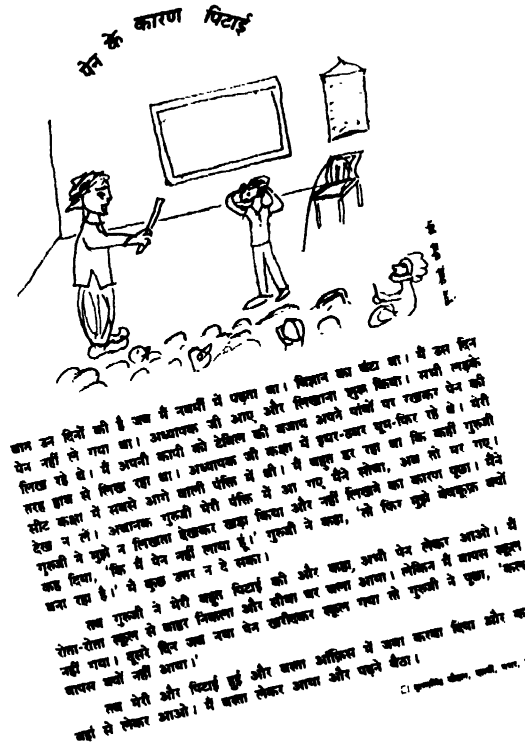
अक्सर मैंने 'बड़ों' को बहस करते सुना है कि बच्चों को यह सिखाया जाना चाहिए, वह बताया जाना चाहिए। लेकिन मैंने महसूस किया है कि बच्चों से हमें बहुत कुछ सीखना चाहिए।

एक कहानी है - एक बच्चा उदास बैठा रहता है। उसकी टीचर उससे पूछती है कि तुम उदास क्यों हो। वह कहता है कि मुझे कोई अपने साथ नहीं खिलाता इसलिए। यही बात उसने अपनी माँ से भी कही। फिर शायद माँ ने उसके साथ पढ़ने वाले किसी बच्चे से यह बात कह दी। दूसरे दिन से बच्चे उसको अपने साथ खेलने के लिए खींचकर ले गए। वह बहुत खुश हुआ।

इस कहानी में छोटी-छोटी खुशियाँ पाना और देना, दोनों की बात है। और सबसे बड़ी बात है बच्चे द्वारा इसकी अभिव्यक्ति।

बहुत सारी रचनाएँ ऐसी होती हैं जिनमें बच्चों को उनके माता-पिता या किसी बड़े ने डाँट दिया या मार दिया, और फिर बच्चों को बहुत दुख हुआ। वे बहुत रोए। साथ ही किसी में यह भी होता कि जब उन्होंने थोड़ा-सा प्यार किया तो वे खुश हो गए।

इस तरह की बातें पढ़कर अक्सर मैं भी अपने बचपन में लौट जाया करती। दुनिया भर की भागदौड़ के बीच कुछ पल अपने लिए अपने-आप ही निकल आते।



बात उन दिनों की है जब मैं नवमीं में पढ़ता था। विज्ञान का पीरियड था। मैं उस दिन पेन नहीं ले गया था। अध्यापक जी आए और लिखाना शुरू किया। सभी लड़के लिख रहे थे। मैं अपनी कापी को टेबिल की बजाय अपने पाँवों पर रखकर पेन की तरह हाथ से लिख रहा था। अध्यापक जी कक्षा में इधर-उधर घूम-फिर रहे थे। मेरी सीट कक्षा में सबसे आगे वाली पंक्ति में थी। मैं बहुत डर रहा था कि कहीं गुरुजी देख न लें। अचानक गुरुजी मेरी पंक्ति में आ गए मैंने सोचा, अब तो मर गए। गुरुजी ने मुझे न लिखता देखकर खड़ा किया और नहीं लिखने का कारण पूछा। मैंने कह दिया, 'कि मैं पेन नहीं लाया हूँ।' गुरुजी ने कहा, 'तो फिर मुझे बेवकूफ क्यों बना रहा है।' मैं कुछ उत्तर न दे सका।

तब गुरुजी ने मेरी बहुत पिटाई की और कहा, अभी पेन लेकर आओ। मैं रोता-रोता स्कूल से बाहर निकला और सीधा घर चला आया। लेकिन मैं वापस स्कूल नहीं गया। दूसरे दिन जब नया पेन खरीदकर स्कूल गया तो गुरुजी ने पूछा, 'कल वापस क्यों नहीं आया।'

तब मेरी और पिटाई हुई और बस्ता ऑफिस में जमा करवा दिया और कहा, वहाँ से लेकर आओ। मैं बस्ता लेकर आया और पढ़ने बैठा।

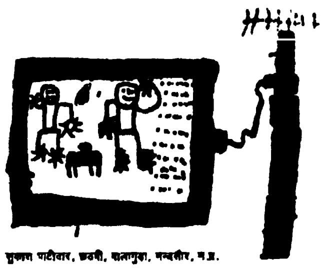
बच्चों के साथ जुड़ा एक मुख्य मसला होता है ढ़ाई का। उनके स्कूल की बातें, उनके शिक्षकों की ातें और पढ़ाई की बातें भी रचनाओं के विषय होते । मुझे अच्छी तरह याद है बहुत कम रचनाएँ ऐसी ातीं जिनमें पढ़ाई या स्कूल से खुश होने की बात नखी गई हो। ज़्यादातर में पढ़ाई और स्कूल के प्रति नका गुस्सा और दुख झलकता है। इसका मतलब ह नहीं निकलता कि वे पढ़ाई नहीं करना चाहते ा स्कूल नहीं जाना चाहते। हम सब जानते हैं कि च्चों में किन चीज़ों का गुस्सा है।

अपने दोस्तों, स्कूल, घर, मोहल्ले के बारे में रों बातें, मेरा पन्ना के चित्रों और कविता-कहानी ं होती हैं। अगर बच्चे आम चोरी करने गए, वहाँ न्हें बाग वाले ने देख लिया और पकड़ लिया और ारा। तो यह सब बेबाक होकर लिखते हैं। इस पूरी टना में जो मज़ा उन्होंने लिया होगा, उसका ंदाज़ हम रचना पढ़कर लगा सकते हैं।

बहरहाल मैंने इस लम्बे अर्से में बहुत सारे च्चों के दुख-सुख, उनके मज़े और बोरियत को महसूस किया है। बहुत पाया है, धन्यवाद बच्चो।

कविता सुरेश

सब ऐसा क्यों करते?



[illegible] पाटीदार, छठवी, [illegible], मन्दसौर, म.प्र.

सब टी.वी देखा करते
अखबार पत्रिका कोई नही लेते
माँ सब ऐसा क्यों करते है?
क्यों नही अखबार पढते?
क्यों नही पत्रिका लेते?
क्यो सब ध्यान नही देते?
माँ सब ऐसा क्यों करते है?

❑ गोवर्धन राठौड़, दसवी, [illegible], खरगोन।



[illegible], चौथी, सुखतवा, होशंगाबाद, म.प्र.

यह कैसा इनाम?

एक दिन हमारी कक्षा में गणित के सर ने एक सवाल पूछा। पूरी कक्षा में केवल मैंने ही सही उत्तर दिया। मैं बहुत खुश था कि सर मुझे शाबाशी देंगे। सर मेरे उत्तर से खुश तो हुए पर उन्होंने मुझसे कहा कि चलो सब लड़कों को एक-एक चाँटा लगाओ। मैं डर गया मैंने कहा कि मैं चाँटा नहीं लगा सकता। मुझे मालूम था कि स्कूल के बाहर मुझे सब मिलकर मारेंगे। फिर अपने सहपाठियों को इस बात पर मारना मैं अच्छा भी नहीं समझता था। सो मैंने कह दिया, "सर मैं चाँटा नहीं लगा सकता।"

सर ने लाल-लाल आँखे निकालकर कहा, "अच्छा तू चाँटा नहीं लगा सकता तो आजा मैं लगाना सिखाऊँ।"

यह कहकर उन्होंने मेरे गाल पर पूरे जोर से थप्पड़ मार दिया। मेरे आँसू निकल पड़े। पूरे दिन मुझे इस बात का दुख होता रहा कि मेरे सही जवाब का इनाम क्या बस यह थप्पड ही था?

❑ [illegible], आठवी, ग्वालियर, म.प्र.

मील का पत्थर

चकमक का 200वाँ अंक निकल रहा है, सुखद आश्चर्य, एवं आत्मसंतोष, एक आंदोलन.... रचनात्मक, बच्चों का आत्मविश्वास... पता नहीं क्या...क्या... समाए हुए है 'चकमक' अपने आप में।

'चकमक' के पहले अंक से मेरा जुड़ना मुझे आज भी याद है। यह उन दिनों की बात है जब मैं भोपाल में नई-नई थी और कई तरह की गतिविधियों से जुड़ी हुई थी। मेरे पास दैनिक भास्कर का महिला वाला स्तम्भ था। एक फीचर लेख सेवा थी और म.प्र. 'माध्यम' द्वारा प्रकाशित होने वाले रोजगार निर्माण से मैं जुड़ी हुई थी। माध्यम एक अर्धसरकारी उपक्रम के रूप में उभर रहा था और मुझे वहाँ स्थाई पद मिलने वाला था। उन्हीं दिनों यह भी बात चली थी कि चकमक माध्यम द्वारा प्रकाशित की जाएगी, सम्पादकीय सामग्री एकलव्य की होगी।

किसी काम से रेक्स भाई, अरविंद चतुर्वेदी से मिलने आए थे। चतुर्वेदी जी ने मेरा उनसे परिचय करवाया और पूछा क्या मैं चकमक में काम करना पसंद करूँगी? उन दिनों मुझे भोपाल में किसी भी अशासकीय संस्था ने बहुत अधिक प्रभावित नहीं किया था। मैं अहमदाबाद में सेवा संस्था का काम देख चुकी थी। और वहाँ के समाचार पत्र मुझे आदर्श के रूप में लगते थे। एक गुजराती बाल साप्ताहिक झगमग से मैं परिचित थी। पराग, नंदन, जैसी पत्रिकाएँ भी पढ़ते ही थे।

'एकलव्य' के कार्यालय में पहली बार मैं थोड़े बेमन से ही गई थी सोचा था या तो राजनैतिक महत्व रखने वाले लोग होंगे या आभिजात्य छलकाती लिपी-पुती महिलाएँ। विनोद, रेक्स, राजेश उत्साही से मुलाकात हुई और मैंने कहा कि मैं अपना एक रुपक (आकाशवाणी के लिए) पूरा करने के बाद ज्वाइन करूँगी। इसी बीच इंदिरागाँधी को गोली मार दी गई... भास्कर के लिए मुझे कुछ लिखना था।... वह लिखकर मैं सोचने बैठी कि क्या करूँ? कमलेश के अनुसार रोजगार निर्माण में ज्यादा स्थायित्व था। लेकिन मुझे लगा कि एकलव्य से जुड़ा जाए।

नवम्बर में एकलव्य से जुड़ना हुआ। दिसम्बर में गैस काण्ड हो गया। शासन और एकलव्य के सम्बंधों में कटुता आ गई। मुझे गैस काण्ड से जुड़े सर्वे, अनुवाद भी करने होते थे। कई बार रेक्स भाई से बहस होती थी। झगड़ा होता था लगता था मैं क्यों चकमक में सिर फोड़ूँ? हम सभी के लिए चकमक चुनौती थी। अंग्रेज़ी से हिन्दी में अनुवाद करना मुझे बड़ा बोरिंग लगता था और मेरे हिस्से यही आता था। कमल, शफीक, रेक्स और राजेश आदि हम्माल की तरह जुटे रहते थे। मुझे घर में सास को भी देखना होता था। अखबारों के लिए लिखना होता था और थोड़ा बहुत

कमलेश के हिसाब से भी लिखना होता था उन्हीं दिनों मैं संबल (ओ.पी. मेहरा की संस्था) से भी जुड़ी हुई थी। लेकिन चकमक मेरे लिए सबसे ऊपर ही रही। बाद में पूर्वा के जन्म और उसकी दादी की बीमारियों की वजह से मुझे चकमक छोड़ना पड़ा लेकिन मुझे कभी लगा नहीं कि मैं चकमक से अलग हो गई हूँ। मुझे हमेशा यही लगता रहा है कि जो मैं कहना चाहती हूँ वही चकमक कह रही है।

टुलटुल, शिवेन्द्र जैसे कई बच्चे हैं जो चकमक को पढ़ते...पढ़ते बड़े हुए और चकमक से जुड़े हुए हैं। बालसाहित्य में चकमक मील का पत्थर सिद्ध हो रही है। आज के उपभोक्ता युग में जब दूरदर्शन ने बच्चों की सारी रचनात्मकता को सोख लिया है ऐसे में चकमक की ज़िम्मेदारी बहुत अधिक बढ़ जाती है। खासकर के अभिभावकों और स्कूल वालों को चाहिए कि वे अपने बच्चों में चकमक के प्रति रुचि जगाएँ उन्हें चकमक पढ़ने के लिए प्रेरित करें। 'प्यारा कुनबा' जैसी चीज़ें अगर रस लेकर पढ़ी जाएँ तो वे बड़ों को भी आनंद देती हैं।

चकमक के 200वें अंक के लिए और क्या कहूँ यह तो ऐसा लग रहा है जैसे अपने बच्चे वयस्क हो जाएँ और लोग उनका रिश्ता लेकर आएँ और हमें लगे अरे हमारे बच्चे इतने बड़े हो गए?

चकमक इसी तरह चुनौतियाँ झेलती हुई आगे बढ़ती रहे, नई-नई पीढ़ियाँ उससे जुड़ती रहें... ऐसा मन कर रहा है कि चकमक के अब तक के प्रकाशित सारे अंकों को एक बार फिर से पढ़ लूँ और हर एक को पढ़वाऊँ।

आप सोचेंगे कि मैंने चकमक की कोई आलोचना नहीं की तो यही कहना है कि कोई इतना भी करके दिखाए। आलोचना करना बहुत सरल है... लेकिन रचनात्मक आंदोलन से जुड़े रहना बहुत कठिन। एकलव्य परिवार और चकमक से जुड़े हर व्यक्ति हर बच्चे को बहुत-बहुत बधाई।

निशा व्यास



मेरा परिवार : चकमक परिवार

चकमक के बारे में लिखने बैठो तो इतनी सारी बातें होती हैं मन में कि समझ नहीं आता कहाँ से शुरू करें और कहाँ से खत्म। इसी उलझन में और 200वाँ अंक निकालने की आपाधापी में समय निकला जा रहा है। और कविता कह रही है कि 'अब तो तुम्हारी बात के बगैर ही अंक छपने चला जाएगा!'

खैर, बहुत से लोगों ने बहुत-सी बातें लिखी हैं। मैं तुम लोगों के साथ चकमक तैयार करने वाले लोगों के बारे में कुछ बाँटना चाहती हूँ। पहले ही बता दूँ कि हम सब एक-दूसरे से बहुत लड़ते हैं। भीषण झगड़े होते हैं हमारे बीच। इत्ती इत्ती सी बातों को लेकर उलझना, एक-एक शब्द के पीछे गहमा-गहमी। पर एक-दूसरे से बहुत बहुत प्यार भी करते हैं हम। और शायद ये झगड़े, ये बहसें इसलिए होती हैं कि हम चकमक से बहुत प्यार करते हैं। हम सब यही चाहते हैं कि उसमें जो भी छपे वह बेहतर हो। और उसी बेहतर बनाने के चक्कर में एक-दूसरे से उलझ जाते हैं हम!

मैं जब चकमक से जुड़ी थी, तब 15 साल की थी और 10वीं में पढ़ती थी। मेरे बाबा चकमक में काम करने लगे थे और इसका डमी अंक तैयार हो रहा था। मुझे वो दफ्तर ले जाया करते थे क्योंकि वहाँ एक बहुत मज़ेदार पुस्तकालय था और मुझे किताबें पढ़ने का शौक था। वहाँ मुझे किताबें पढ़ने से भी ज़्यादा मज़ा इस बात का आने लगा कि ये बड़े लोग अक्सर चकमक के लिए लेख वगैरह लिखकर मुझे पढ़ाते थे। पूछते थे कि कैसा लगा? पढ़ने में मज़ा आता है कि नहीं? और क्या होना चाहिए इसमें? यह पहेलियाँ देखो तो तुम्हारे जैसे बच्चे हल कर पाएँगे कि नहीं? और सबसे बड़ी बात कि जो भी मैं कहूँ, मुझसे ज़्यादा गम्भीरता से उस बात को सुनते-समझते थे। फिर अपने लेखों में उस हिसाब से बदलाव भी करते थे।

यूँ हमारे घर में बहुत खुला माहौल था। फिर भी किसी गम्भीर विषय में बच्चों की राय लेना तो कभी नहीं होता था। स्कूल में कब कौन पूछता था कि किताब में जो लिखा है वह अच्छा लगता है कि नहीं, समझ आता है कि नहीं। पहली बार ऐसा माहौल देख रही थी। तो तब से यह बात मन में बहुत गहरे पैठ गई कि जो भी चीज़ हम जिसके लिए कर रहे हैं, उसमें उसकी राय ज़रूर ली जानी चाहिए। हो सके तो उनके साथ मिलकर वह चीज़ या कार्यक्रम या सामग्री तैयार की जानी चाहिए। बच्चों के लिए काम करें, तो बच्चों की। किसानों के लिए काम करें तो उनकी, औरतों के लिए तो उनकी।

रेक्स (रेक्स डी रोज़ारियो) और विनोद भाई (विनोद रायना) से भी मैंने बहुत सीखा है। वैसे दोनों ही चकमक से हकीकत में कभी बहुत पास होते हैं तो अक्सर बहुत दूर। पर कागज़ों पर यही दोनों सर्वेसर्वा हैं चकमक के! आज सोचती हूँ तो लगता है कि रेक्स वह व्यक्ति है जिसने मेरे अन्दर बहुत आत्मविश्वास भरा। वर्ना मैं काफी सहमी-सी हुआ करती थी। और मज़ेदार बात यह कि यह सब शायद अनजाने में ही हुआ। कभी इस बारे में कोई भाषण या नसीहत नहीं दी उसने मुझे। बस अनायास होने वाली गपशप के ज़रिए ही यह हुआ होगा। विनोद भाई से मुझे लिखने के लिए विषय ढूँढना, हर विषय को समाज के आइने में चमकाकर देखना... इसमें बहुत मदद मिलती थी। यह तब की बात है जब वे काफी समय चकमक टीम के साथ

बिताया करते थे। घण्टों किसी विषय पर चर्चा, बहस, बातचीत हुआ करती थी टीम में।

चकमक टीम के दो लोग हैं जिनका ज़िक्र यहाँ ज़रूरी है। एक तो हैं राजेश भाई (राजेश उत्साही)। आजकल वो चकमक का काम नहीं देख रहे हैं। पर जब 1991 में मैंने औपचारिक रूप से चकमक में काम करना शुरू किया, तो वही काफी बड़े पैमाने पर इसकी बागडोर सम्भाले हुए थे। जो कुछ कच्चा-पक्का मैं लिखती थी, उसको छापने लायक वही बनाते थे। और फिर धीरे से कभी-कभी तारीफ भी कर देते थे। शायद इसलिए ताकि मैं और लिखती रहूँ! दूसरी है कविता (कविता सुरेश)। अगर वह हर पल मेरी बंगाली हिन्दी के लिए मुझे टोकती न रहती तो आज मैं इतनी कम गलतियों के साथ न लिख पाती। कभी डाँटकर कहती – 'धूप आ गया नहीं, धूप आ गई!' अब भी पूरी तरह तो नहीं सीख पाई हूँ हिन्दी के लिंग के पेंच, पर जो कुछ सुधार आया है, उसका श्रेय कविता को जाता है। बच्चों के साथ बहुत सहज रूप से बहुत अंतरंग बातचीत कर पाने का हुनर भी कविता में गज़ब का है। जो मैं चाहकर भी आज तक नहीं सीख पाई हूँ।

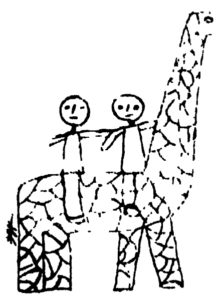
जया दीदी (जया विवेक) के बिना भी बात अधूरी है। जब लगभग चार साल पहले उन्होंने चकमक छोड़ी, तो उनका कुछ काम कविता और कुछ मैं सम्हालने लगे। काफी कुछ तो उन्हीं से सीखा था। पर अब भी कई मौके ऐसे आ ही जाते हैं जब उनकी कमी खलती है।

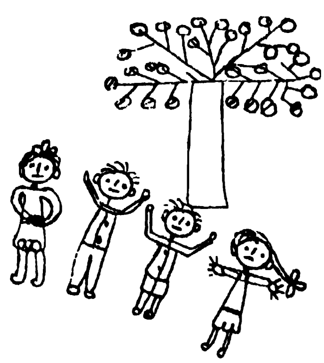
कमल भाई (कमल सिंह) और मनोज (मनोज निगम) भी एक लम्बे अरसे से चकमक के वितरण का काम देख रहे हैं। वह कमल भाई ही हैं जो चकमक छपाई के लिए देर से जाने पर हमें बार-बार टोकते हैं – 'जल्दी करो, नहीं तो डबल डाकखर्च लग जाएगा। फिर बच्चों को पत्रिका इतनी लेट मिलेगी तो कैसा लगेगा उन्हें?'

और अन्त में मार्टिन चाचा। यूँ तो इनका नाम मार्तण्ड है, पर राजेश भाई के बेटे उन्हें बचपन से मार्टिन चाचा कहते थे। सो हम भी उन्हें मार्टिन चाचा बुलाने लगे। वे शुरू से चकमक को डाक में भेजने के लिए पैकिंग का काम करते रहे हैं। तुम सब तक चकमक पहुँचाने में उनका भी बहुत महत्वपूर्ण रोल रहा है। पहले उनके साथ एक उदय भाई भी यह काम किया करते थे। बीच में उदय भाई ने काम छोड़ दिया, पर मार्टिन चाचा डटे रहे। आज भी डटे हैं।

हमारी इस टीम में नया-नया जुड़ा है सुशील – सुशील शुक्ल। उसकी बहुत सुन्दर कविताएँ तो तुम सब पढ़ ही रहे हो। इस टीम में जान और जोश तो पहले ही था, बचपन और जवानी की खूबसूरती ला दी है सुशील ने।

*तो यह है चकमक परिवार के उस हिस्से का एक नज़ारा जो यहाँ भोपाल में है। पर यह तो अधूरा है। **यह** तब पूरा होता है जब उसमें उन बच्चों को भी जोड़ा जाए जो चकमक पढ़ते हैं, उसके लिए लिखते हैं। उनकी बातें अगली बार। अभी तो हमें 300वाँ, 500वाँ अंक भी निकालना है! है न?*





टुलटुल विस्वास

चकमक के बारे में

मुझे याद है जब मैं छठवीं कक्षा में पढ़ती थी, हमारे स्कूल में बालमेले का आयोजन हुआ। हमें बताया गया कि इस मेले में हमें ढेर सारी मज़ेदार गतिविधियाँ सिखाई जाएँगी। इसी मेले में कविता, कहानी लिखना जैसी गतिविधियाँ भी हो रही थीं। उस समय मेरा परिचय चकमक से हुआ। मुझे पता चला कि ऐसी कोई पत्रिका भी है जिसमें बच्चों के बनाए चित्र और कविता, कहानी भी छपते हैं।

इसके बाद शुरू हुआ चकमक के लिए अपनी रचनाएँ भेजने का सिलसिला। हममें से जिसकी रचना छप जाती उसके लिए तो बेहद खुशी की बात होती। साथ ही बाकी बच्चों पर उसकी साख भी जम जाती।

बहरहाल यह बात थी 15 साल पहले की। परंतु आज यदि मध्यप्रदेश के विभिन्न स्कूलों के बच्चों का सर्वे कर बच्चों से सवाल पूछा जाए कि उनकी पसंदीदा पत्रिका कौन-सी है तो बहुत कम बच्चे चकमक का नाम लेंगे। इसका कारण वही है जो हमारे समय था – बच्चे इस पत्रिका के बारे में जानते ही नहीं हैं।

आज चकमक अपने 200 वें अंक की तैयारी कर रही है। इतने लम्बे अनुभव के बाद इस बात पर विचार करना ज़रूरी है कि क्यों चकमक प्रमुखता से पसंद की जाने वाली पत्रिका के रूप में अपना स्थान नहीं बना पाई।

मेरे विचार से अन्य पत्रिकाओं में दी जाने वाली सामग्री, बच्चों की पसंद, पत्रिका की कीमत और पत्रिका की साज-सज्जा पर विचार करना चाहिए। इसके अलावा प्रचार-प्रसार पर भी ध्यान देना चाहिए।

और भी ढेरों बिंदू हैं सोचने विचारने के, पर अभी इतना ही।

छाया दुबे, उज्जैन
(छाया एकलव्य के विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में काम करती हैं।)

अचानक चकमक ने उन दिनों की याद दिला दी जब मैं करीब 12-13 वर्ष का था। उस समय मेरे पिता जी, जो कि पुलिस विभाग में हैं, ने डेप्यूटेशन पर भारत भवन में मुख्य प्रशासनिक अधिकारी का पद ग्रहण किया था जहाँ से मेरे पढ़ने की रुचि बढ़ी। पिताजी का रुझान शुरू से ही साहित्य में रहा। मतलब मुझे साहित्यिक वातावरण एक तरह से धरोहर में ही मिला। पिता द्वारा प्रोत्साहन तथा रुचि मुझे भारत-भवन के पुस्तकालय तक ले गई। जहाँ मेरा पहला परिचय 'चकमक' से हुआ। शुरू में बिना कुछ सोचे बस यूँ ही पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते कब ये एक आदत बन गई, फिर ज़रूरत।

जब तक भारत-भवन में जाता रहा, पढ़ता रहा। फिर लगभग तीन -साढ़े तीन साल बाद पिताजी का स्थानांतरण हो गया। ऐसा लगा कि चकमक का साथ बस छूट ही जाएगा। लेकिन फिर पिताजी ने चकमक लाने की व्यवस्था कर दी।

चकमक में मेरी पहली पसंद है बच्चों की कविताएँ, चित्र विशेषकर अंत के पृष्ठों पर छपे चित्र। छुट्टियाँ आते ही बस पुरानी चकमक के बंडल खोलना उन्हें फिर से पढ़ना मेरी रुचि में था।

यह पढ़ने-पढ़ाने का सिलसिला दसवीं तक रहा। फिर स्कूल और कैरियर में ऐसा उलझा कि चकमक दूर हो गई। पर कई वर्ष बाद जब मुझसे इस विषय में पूछा गया तो मुझे बड़ा अच्छा लगा। कुछ-कुछ गौरव का अनुभव हुआ। अब तो घर के बच्चों की चकमक उठाकर पढ़ता हूँ। एकलव्य के कार्यालय में पुरानी जिल्द की हुई चकमक पढ़कर पुरानी याद ताज़ा करता हूँ। अभी भी कविता-कहानी पढ़कर अकेले में हँसता हूँ या उदास हो जाता हूँ।

चकमक में एक खास बात यह है कि इसमें कोई बंधन नहीं है सभी की कृतियाँ उतनी ही महत्वपूर्ण हैं। छोटे बच्चों के चित्र उनके मानस पटल से उतरकर सीधे चकमक में आते हैं। जहाँ एक ओर चकमक बच्चों की दोस्त बनी वहीं एक माध्यम भी। आज की भयानक स्थिति में चकमक उसी रंग में रंगी है जैसा कि उसे सोचकर रंगा गया था।

चकमक वास्तव में बच्चों के मनोविज्ञान पर आधारित एक उत्कृष्ट पत्रिका है जो बच्चों के तथा ज्ञान के मध्य एक रास्ते की तरह काम कर रही है।

निशांत
(निशांत भोपाल में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ फॉरेस्ट मैनेजमेंट में पढ़ाई कर रहे हैं।)

200 वें अंक में

चकमक के पुराने अंकों से

इस हिस्से में है, चकमक के पुराने अंकों में से कुछ चुनिंदा सामग्री। चकमक के शुरुआती अंकों में ढेर सारी जानकारी होती थी। साथ ही कई सामाजिक पहलुओं पर बातचीत की जाती थी। वैसे चकमक का एक रूप हमेशा रहा है, और वह है किसी भी विषय पर तार्किक दृष्टि से बात रखना। पिछले अंकों से छँटाई करके हमने कुछ इसी तरह की सामग्री निकाली है। इसमें जहाँ सामाजिक मुद्दों को देखने समझने का एक खास नज़रिया है वहीं वैज्ञानिक विषयों को सामाजिक सरोकारों से जोड़कर देखने की कोशिश भी है।

कहाँ है क्या है



चित्र : धनंजय

चकमक की कहानी

तुम यह ज़रूर जानना चाहते होगे कि चकमक का इतिहास क्या है? वह कैसे छपती है? छापने के पहले क्या तैयारियाँ करनी पड़ती हैं? संपादन, कला-सज्जा, उत्पादन और वितरण का क्या अर्थ है? पर पहले जानो कि चकमक शुरू कैसे हुई? चकमक प्रकाशित करने वाली संस्था एकलव्य क्या है?

एकलव्य क्या है?

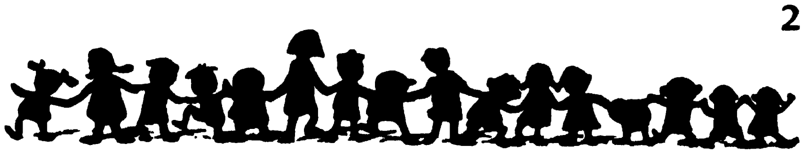
अब से कई साल पहले कुछ शिक्षक, वैज्ञानिक, शोधकर्ता, सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा उनके समर्थकों ने मिलकर एक संस्था स्थापित करने का निर्णय लिया। ये लोग देश की शिक्षा प्रणाली से असंतुष्ट थे और कई सालों से एक शैक्षिक प्रयोग से जुड़े थे। यह प्रयोग होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है। इस कार्यक्रम को होशंगाबाद ज़िले में स्थित 'किशोर भारती' बनखेड़ी, एवं 'मित्र मंडल केन्द्र', रसूलिया संस्थाओं ने दिल्ली विश्वविद्यालय तथा अन्य संस्थाओं के सहयोग से शुरू किया था। यह कार्यक्रम होशंगाबाद ज़िले के 16 माध्यमिक स्कूलों में सन् 1972 में शुरू किया गया था। सन् 1978 से ज़िले की सभी माध्यमिक शालाओं में चल रहा है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत विज्ञान के परंपरागत पाठ्यक्रम के स्थान पर नया पाठ्यक्रम तथा पुस्तकें लागू की गईं हैं।

सन् 1982 में यह सोचा गया कि इस शैक्षिक प्रयोग को केवल होशंगाबाद ज़िले तक ही सीमित न रखा जाए, बल्कि अन्य ज़िलों में भी ले जाया जाए। साथ ही इस प्रयोग से जुड़े लोग अन्य विषयों खासकर भाषा, गणित तथा सामाजिक अध्ययन में भी नया पाठ्यक्रम विकसित करने में रुचि रखते थे।

इन सब बातों की पृष्ठभूमि में 1982 में एक नई संस्था शैक्षिक शोध एवं नवाचार संस्थान की स्थापना की गई। इसी संस्था का नाम 'एकलव्य' है। एकलव्य की स्थापना में किशोर भारती ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। मध्यप्रदेश शासन के अलावा कई प्रख्यात राष्ट्रीय संस्थाओं ने एकलव्य की मदद करने के लिए हाथ बढ़ाए। इनमें भारत शासन के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, पर्यावरण विभाग, योजना आयोग तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मुख्य हैं।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की मुख्य जिम्मेदारी अब एकलव्य के पास है। यह कार्यक्रम अब होशंगाबाद ज़िले के अलावा मध्यप्रदेश के 13 अन्य ज़िलों के कुछ स्कूलों में चल रहा है।

एकलव्य की यह मान्यता है कि स्कूली शिक्षा में रटने की बजाए ज्ञान को समझना, इसे हासिल करना तथा उपयोग में लाने का तरीका सीखना ज़्यादा अर्थपूर्ण है। शिक्षा



का वास्तविक उद्देश्य अपने समाज, जीवन, मानव तथा पर्यावरण आदि के बारे में समझ विकसित करना है, और यह केवल स्कूली तंत्र में सीमित रहकर सम्भव नहीं है। इसीलिए एकलव्य ने स्कूल के बाहर भी समाज में शिक्षा का काम करना शुरू किया। विज्ञान यात्राएँ, प्रदर्शनी, बाल मेले, विज्ञान क्लब, पुस्तकालय, गोष्ठियाँ, कार्यशाला आदि के माध्यम से कई ज्वलंत समस्याओं जैसे प्रदूषण, पर्यावरण, स्वास्थ्य, भोपाल गैस त्रासदी आदि पर जन साधारण में जानकारी फैलाने तथा समझ विकसित करने में पहल की है। **चकमक** का प्रकाशन इस पहल की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

चकमक कैसे शुरू हुई?

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका का पहला अंक तो जुलाई, 1985 में आया था, पर वास्तविक शुरूआत उससे दो साल पहले ही हो चुकी थी।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में कार्यरत शिक्षकों के लिए एक बुलेटिन (पत्रिका) का प्रकाशन सन् 1980 में शुरू हुआ। इसका नाम था 'होशंगाबाद विज्ञान।' यह देखा गया कि लोगों के साथ सम्वाद स्थापित करने के लिए पत्रिका एक अच्छा माध्यम है। पर बच्चों तक पहुँचने का एक ऐसा कोई माध्यम उपलब्ध नहीं था। धीरे-धीरे होशंगाबाद विज्ञान पत्रिका में ही बच्चों के लिए कुछ सामग्री डालना शुरू किया गया। जैसे माथापच्ची, विज्ञान की कहानियाँ, जीव-जंतुओं की कहानियाँ आदि। बच्चों ने बड़ी संख्या में पत्रिका खरीदना शुरू किया। उनके पत्र भी आने लगे पर एक ही पत्रिका के माध्यम से शिक्षक और बच्चों तक पहुँचना ज़रा मुश्किल था। अंत में तय किया गया कि बच्चों के लिए एक पत्रिका बिल्कुल अलग से निकाली जाए। होशंगाबाद विज्ञान पत्रिका का नाम बदलने के लिए एक प्रतियोगिता की गई। उस प्रतियोगिता में जो नाम आए उनमें **चकमक** भी एक था। होशंगाबाद विज्ञान पत्रिका का नाम तो नहीं बदला, पर चकमक नाम बच्चों की पत्रिका के लिए चुन लिया गया।

पत्रिका निकालना आसान काम नहीं है। पहली बात तो यह कि पत्रिका के लिए पाठक होना चाहिए और दूसरे, पत्रिका छापने के लिए पैसा। एक मोटे हिसाब-किताब से उस समय एक प्रति पर लगभग तीन रुपए लागत आती थी। हम चाहते थे कि पत्रिका बच्चों तक एक रुपए में पहुँचे पर यह संभव नहीं था। आखिरकार ढाई रुपए में बेचने का फैसला किया गया। उम्मीद थी कि घाटा विज्ञापन आदि लेने से पूरा हो जाएगा।

मध्यप्रदेश शासन के एक निगम 'माध्यम' के साथ एक समझौता हुआ। समझौते

के अनुसार 'माध्यम' पत्रिका के उत्पादन, छपाई, वितरण आदि की जिम्मेदारी उठाएगा, और एकलव्य संपादन की। 'माध्यम' उत्पादन का सारा खर्च वहन करने के लिए तैयार था। यह उन दिनों की बात है जब भोपाल में यूनियन कार्बाइड के कारखाने से जहरीले गैस का रिसन हुआ था। एकलव्य ने इस गैस त्रासदी पर जनसाधारण की जानकारी के लिए काफी सामग्री का प्रकाशन किया। पोस्टर प्रदर्शनी आयोजित की। प्रकाशनों में प्रदर्शनी पर आधारित पुस्तिका, वैज्ञानिक तथ्य, पर्यावरण रिपोर्ट आदि शामिल थे। इन सब में गैस त्रासदी के संदर्भ में शासन की भूमिका पर भी सवाल उठाए गए थे। फलस्वरूप 'एकलव्य' पर कई गैर तार्किक आरोप लगाए गए। नतीजा यह रहा कि 'माध्यम' के साथ मिलकर चकमक के प्रकाशन की योजना सम्भव न हो सकी।

कुछ दिनों बाद एकलव्य ने हिम्मत करके चकमक को अपने ही बल पर प्रकाशित करने का फैसला किया। मुख्य समस्या पैसे की थी। इसके लिए राष्ट्रीय विज्ञान एवं तकनॉलॉजी संचार परिषद (विज्ञान एवं तकनालॉजी विभाग, भारत शासन) से बात की गई। परिषद मदद करने के लिए तैयार हो गई।

फिर वितरण के बारे में सोचा गया। अखबार तथा पत्रिका एजेंटों के पास जाने पर पता चला कि वे 50 प्रतिशत कमीशन माँगते हैं, यानी पत्रिका की एक प्रति पर 1.25 रुपए। यह तो घाटे का सौदा होता। तब यह विचार किया गया कि चूंकि पत्रिका आमतौर पर स्कूली बच्चों के लिए ही निकाली जा रही है, तब क्यों न सीधे शिक्षा विभाग व आदिम जाति कल्याण विभाग से संपर्क किया जाए। इन प्रयासों का यह फल निकला कि मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग और आदिम जाति एवं हरिजन कल्याण विभाग, अपनी सभी उच्चतर माध्यमिक एवं माध्यमिक शालाओं के लिए चकमक खरीदने के लिए तैयार हो गए।

अब शुरू हुआ काम। पर इतने बड़े पैमाने पर पत्रिका निकालने का अनुभव एकलव्य में किसी का भी नहीं था। पहले दो महीने तो लगभग हम लोग सीख ही रहे थे। दिन-रात काम करना पड़ा और आखिरकार चकमक का पहला अंक जुलाई, 1985 में आ ही गया। ●●



चित्र साभार एनीमेजिक



श्रीमान संपादक महोदय जी,

आप मेरे बेटे, गणपत को चकमक मत भेजना क्योंकि यह पढ़ने में होशियार तो है नहीं और सारे दिन खेलता रहता है। ये इसके चक्कर में एक बार फेल हो गया। यह दिन भर प्रश्न पूछता रहता है। आपसे मैं आशा करता हूँ कि इसे अब चकमक न भेजकर एक पत्र लिखकर कह दो कि अब पैसे भेजो और चकमक मँगवाओ। कृपया आप चकमक नहीं भेजें। मैं इसको कुछ कहता हूँ तो यह हमारे सामने बोलता है। अतः आपसे अनुरोध है कि आप इसे चकमक न भेजें।

● गेंदालाल महाजन, पालड़ी, राजस्थान

हमारी बात

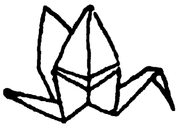
जैसा कि तुम सब जानते हो राष्ट्रीय विज्ञान एवं तकनालॉजी संचार परिषद् तथा आकाशवाणी द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित 'विज्ञान विधि' कार्यक्रम के विजेताओं को चकमक पत्रिका उपहार स्वरूप भेजी जा रही थी। गणपत इन्हीं में से एक है। गणपत अपने पिता से ही नहीं हमसे भी पत्र लिखकर ढेरों सवाल पूछा करता है।

यह पत्र इस बात का प्रमाण है कि चकमक अपने उद्देश्य में सफल रही है। बच्चे अपनी जिज्ञासाओं को सामने लाएँ, उन्हें शांत करने के माध्यम ढूँढें, प्रश्न पूछें और उत्तर खोजने का प्रयत्न करें। असली शिक्षा यही है। इन्हीं प्रक्रियाओं से गुज़रते हुए उनका उचित विकास हो सकता है। पर हम यह नहीं कहते कि वे अपनी स्कूल की पढ़ाई न करें। गणपत के फेल होने के पीछे और भी कारण हो सकते हैं। चकमक किताबें पढ़ना, प्रश्न पूछना या उनके उत्तर खोजना, खेलना शायद सही कारण नहीं हैं।

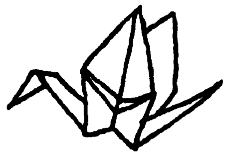
हम गणपत के पिता और उन जैसे तमाम लोगों से कहना चाहते हैं कि वे गणपत (या अपने बच्चों) की जिज्ञासाओं, सवाल पूछने की आदत और हिम्मत को दबाएँ नहीं। हाँ, अगर आपके पास उनके सवालों के जवाब नहीं है तो अपने पास-पड़ोस, गली-मुहल्ले, गाँव-शहर में ऐसे व्यक्ति, संस्थाएँ ढूँढें जो उनकी मदद कर सकें। बच्चे समाज में अपनी उचित जगह बना सकें।। किसी भी घटना, कारण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परख सकें।

गणपत और उस जैसे तमाम दोस्तों से हमारा कहना है कि स्कूल की पढ़ाई तो उन्हें करनी ही होगी। यह जानते हुए भी कि उसमें तमाम बातें ऐसी हैं जो उन्हें पसंद नहीं आतीं या बेकार लगती हैं। स्कूल में अपनी मनमर्ज़ी की पढ़ाई करना या करवा पाना तो तभी सम्भव होगा, जब हम शिक्षा में बुनियादी परिवर्तन करें।और यह एक दिन का काम नहीं है। शायद तुम्हारी पीढ़ी ही यह काम कर दिखाए। वो दिन कभी तो आएगा.... तो उस दिन के लिए इस अरुचिपूर्ण पास-फेल की व्यवस्था और अपनी सवाल पूछने, उत्तर खोजने की सुरुचि के बीच तालमेल बिठाते हुए, हर साल पास होते, जिज्ञासु बने, डटे रहो, चकमक तुम्हारे साथ है।

जून, 1991



कागज़ के एक हज़ार पक्षी





6 अगस्त, 1945 में जापान के दो शहरों हिरोशिमा और नागासाकी पर पहला एटम बम गिराया गया। पाँच लाख की आबादी वाला हिरोशिमा तहस-नहस हो गया। बम गिराए जाने की घटना के एक सप्ताह बाद ही हिरोशिमा में एक विचित्र बीमारी फैल गई। स्वस्थ दिखाई देते लोग अचानक बीमार होते और कुछ ही समय बाद मर जाते। यह सब इतना अजीब था कि लोगों की समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। आज इस घटना को इतना समय गुज़र गया फिर भी ठीक-ठीक समझ नहीं आया कि एटम बम से उत्पन्न विकिरण का असर मानव शरीर पर कैसे पड़ता है।

इसी हिरोशिमा शहर में एक लड़की रहती थी जिसका नाम सदाको सासाकी था। जब शहर पर एटम बम गिराया गया तब उसकी उम्र लगभग दो साल की रही होगी। सदाको उस स्थान से लगभग ढाई किलोमीटर दूर रहती थी जहाँ बम गिरा था। अन्य लोगों की तरह उसके शरीर पर जलने या चोट लगने के कोई निशान नहीं थे।


चित्र फरहान मुजीब

सदाको बड़ी होती गई। लगभग बारह साल की उम्र में सदाको एक हँसती खेलती लड़की थी। उसे दौड़ने का शौक था। अपने स्कूल की दौड़ की प्रतियोगिता में वह हमेशा प्रथम आती थी। ऐसी ही एक प्रतियोगिता के बाद वह अपने को थका-थका महसूस कर रही थी। उसे चक्कर आया थोड़ी देर बाद ठीक हो गई। उसे लगा दौड़ की थकान की वजह से हुआ होगा। लेकिन उसके बाद उसे हर कभी चक्कर आने लगे। यह बात उसने किसी को नहीं बताई।

एक दिन चक्कर इतनी ज़ोर से आया कि वह गिर पड़ी। तब सबको पता चला। डॉक्टरों ने जाँच की तो पता चला उसे ल्युकीमिया यानी एक प्रकार का खून का कैंसर है। यह बीमारी सिर्फ सदाको को ही नहीं थी बल्कि उसकी उम्र के कई और बच्चों को भी थी। इस बीमारी को 'एटम बम रोग' का नाम दिया गया। इस बीमारी के लगभग सभी रोगी मर रहे थे। सदाको बहुत डर गई। यह मरना नहीं चाहती थी।

सदाको को अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। एक दिन उसकी एक सहेली चिजूको उससे मिलने आई। वह अपने साथ एक खास किस्म का कागज़ लाई थी। उसने इस कागज़ से एक पक्षी बनाया जिसे क्रेन (सारस) कहते है। उसने क्रेन के बारे में कही जाने वाली लोककथा भी सुनाई।

कथा के अनुसार क्रेन जापान का एक प्रमुख पक्षी है। क्रेन की आयु एक हज़ार साल होती है। अगर कोई बीमार व्यक्ति कागज़ के एक हज़ार क्रेन पक्षी बनाए तो वह ठीक हो जाता है।



सदाको ने भी तय कर लिया कि वह भी कागज़ के एक हज़ार क्रेन बनाएगी।

सदाको बीमारी से बहुत कमज़ोर हो गई थी फिर भी वह क्रेन पक्षी बनाती रही। सदाको ने एक हज़ार पक्षी बना लिए फिर भी उसकी तबियत में कोई सुधार नहीं हुआ। आखिरकार 25 अक्टूबर 1955 को उसकी मृत्यु हो गई।

हिरोशिमा में कई बच्चे ऐसे ही एटम बम रोग से मर रहे थे। सदाको की याद में उसके दोस्त मिलकर कुछ करना चाहते थे। उन्होंने एक स्मारक बनाने के लिए चंदा इकट्ठा करना शुरू किया। बच्चों ने इस स्मारक को नाम दिया 'बच्चों का शांति स्मारक'। हिरोशिमा शहर के मध्य बना यह शांति स्मारक उसी जगह पर है जहाँ बम गिरा था। हिरोशिमा और टोकियो के बच्चों ने मिलकर एक 'कागज़ क्रेन क्लब' बनाया।

इस क्लब के सदस्य शांति स्मारक की देखभाल करते हैं और बीमार, ज़रूरतमंद लोगों की मदद करते हैं। इसके अलावा ये सदस्य कागज़ के क्रेन बनाकर दूसरे देश के नेताओं और महत्वपूर्ण व्यक्तियों को भी भेजते हैं। यह याद दिलाते हुए कि दुनिया के बच्चे चाहते हैं कि संसार से एटम बम हटाए जाएँ।

कागज़ के क्रेन बनाने और कागज़ क्रेन क्लब की स्थापना करने का उद्देश्य 'बच्चों के शांति स्मारक' के पत्थरों पर इस तरह लिखा हुआ है।

यह है हमारी पुकार
यह है हमारी प्रार्थना
इस विश्व में शांति स्थापित करना।

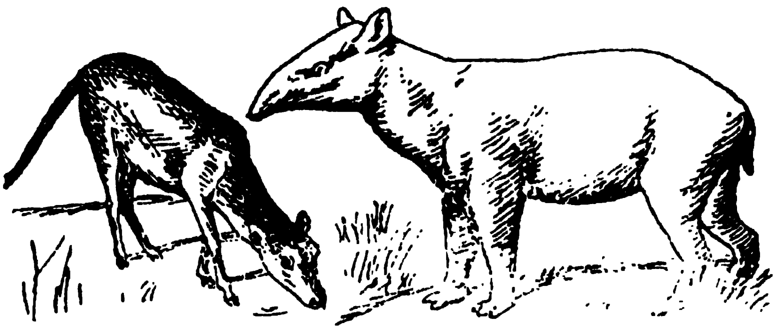
●●●

अगस्त 1987



जूँ और टूँ

एक थी जूँ।
उसको जन्मी टूँ।
वह गई खाने को।
उसे मिला पैसा।
वह बोली, ''माँ, माँ
इसका क्या लाऊँ?''



माँ बोली, ''भाजी।''
''काटूँ कैसे।''
''चर्र चर्र।''
''पकाऊँ कैसे।''
''खदबद खदबद।''
''खाऊँ कैसे।''
''मच मच करके।''
''सोऊँ कैसे।''
''बाएँ करबट।''

मूल लेखक : ताराबाई मोड़क
प्रस्तुत कर्ता : संतराम
अक्टूबर 1987

एक विद्यार्थी के पालक व शिक्षक से कुछ प्रश्न

बताइए मैं नकल क्यों न करूँ?

अब मैं कक्षा 12 में पढ़ता हूँ। परीक्षा का नाम लेते ही मैं घबरा जाता हूँ। जब मैं इसके कारणों को खोजने की कोशिश करता हूँ तो मेरे सामने पहली कक्षा से आज तक का पूरा दृश्य आ जाता है।

मुझे पहली कक्षा से चौथी तक तो कभी महसूस ही नहीं हुआ कि परीक्षा क्या होती है। एक कक्षा से अगली कक्षा में बढ़ता गया। पाँचवीं की परीक्षा में हमारे सर ने प्रश्नों के उत्तर ब्लेकबोर्ड पर लिख दिए। हमें कहा गया कि यह बोर्ड की परीक्षा है। छठी, सातवीं में ट्यूशन करता था। अत: पास होने में कोई दिक्कत नहीं हुई। आठवीं कक्षा की परीक्षा पास करने के लिए ट्यूशन के साथ-साथ मेरे पिताजी ने हमारे सर को कुछ रुपए दिए थे। नौवीं कक्षा में जनरल प्रमोशन की वजह से दसवीं में पहुँच गया। दसवीं कक्षा के लिए बोर्ड ने प्रश्न बैंक छापे थे, उन्हीं में से प्रत्येक विषय के 5–7 प्रश्न रट लिए, पास हो गया। ग्यारहवीं कक्षा में फिर स्थानीय परीक्षा थी अत: पास हो गया। अब 12 वीं की परीक्षा सिर पर है।

मैंने अभी तक मन लगाकर पढ़ाई की ही नहीं। क्योंकि न तो स्कूल में कभी ठीक से पढ़ाया गया। न ही घर में किसी ने ध्यान दिया। अब मुझे बहुत दुख व गुस्सा है अपने स्कूलों के प्रति व माता-पिता के प्रति।

पिताजी कहते हैं ट्यूशन कर लो। कोचिंग क्लासेस में पढ़ लो। किसी को कुछ लेना-देना है तो पैसा ले जा। परन्तु मेरी पढ़ाई की नींव इतनी कमज़ोर है कि पढ़ने पर कुछ समझ नहीं आता। अब मैं नकल न करूँ तो बताइए क्या करूँ?



देवास के एक स्कूल का एक छात्र

जून, 1988

देवास के जन चेतना समूह ने एक पर्चा प्रकाशित किया था, यह उसी का हिस्सा है।

फगुवा का सवाल

गाँव का यह तालाब अच्छा है! बीच में एक स्तम्भ खड़ा है, पक्का सीमेंट का बना। उत्तरी छोर पर पानी पर बिछे हरे चौड़े पत्तों के बीच सुंदर कमल के फूल खिले हैं। बड़का तालाब। इस छोर पर घाट है, पक्की सीढ़ियाँ हैं। पानी एकदम काँच की तरह। किलकारी मारती छोटी-छोटी मछलियाँ भी साफ दिखलाई पड़ती हैं। फगुवा का मन करता है कि इसमें उतरकर खूब पौरे। वह आस लगाकर पक्के घाट से कुछ दूर ऊँचाई पर बैठता है और पंडित सुकुल को अपना जनैऊ चमकाते, पानी में तैरते, डुबकी लगाते और ऊपर आते देखता है। ब्राह्मण-ठाकुरों की औरतें, लड़कियाँ भी इस तालाब में नहाने आतीं, गगरी में पानी भरकर ले जाती हैं।

सुकुलजी तैरते हुए बीच में पहुँच गए हैं और, अब खम्भे को पकड़ लिया है। फगुवा देख रहा है पानी में धुला सुकुलजी का गोल गोरा बदल सोने-सा दमक रहा है। उनकी पीठ और छाती पर बिछलती पानी की बूँदें सूरज की किरणों में मोती के समान चमक रही हैं। सुकुलजी मौज में पानी में चित पड़ते हैं तो उनकी तोंद अपनी पूरी गोलाई में ऊपर आ जाती है – कित्ता बड़ा पका कुम्हड़ा! फगुवा की फिक्से हँसी छूट जाती है। और पंडित जी की निगाह उस पर पड़ जाती है। वे एक हाथ से खम्भे को जकड़े रखकर दूसरे हाथ को हवा में उछालते हुए गालियों की बौछार मारते हैं, भक् बे भंगी का छोरा! हिया ई पवित्तर तालाब को गंदा करने कहाँ से आ टपका बे! भक् जल्दी से, तेरी हवा लगने से भी पानी में गोबर छिंटना पड़े.... भक्, गाँव रे बाहरी तुम्हार तालाब है, जायके हुवाँ खूब निहाव, खूब पौरो। और पानी में संतुलन बनाने के लिए उनकी टाँगें आगे-पीछे चलने लगती हैं।

डर कर फगुवा लंगोटी का पिछला छोर हवा में उठाए तेज़ी से चौकड़ी भरता है – दुम उठाकर भागता हुआ जानवर हो जैसे। पंडित जी यह देखकर खें खें करके हँस पड़ते हैं। थोड़ी दूर तक भागकर फगुवा रुक जाता है फिर पीछे मुड़कर



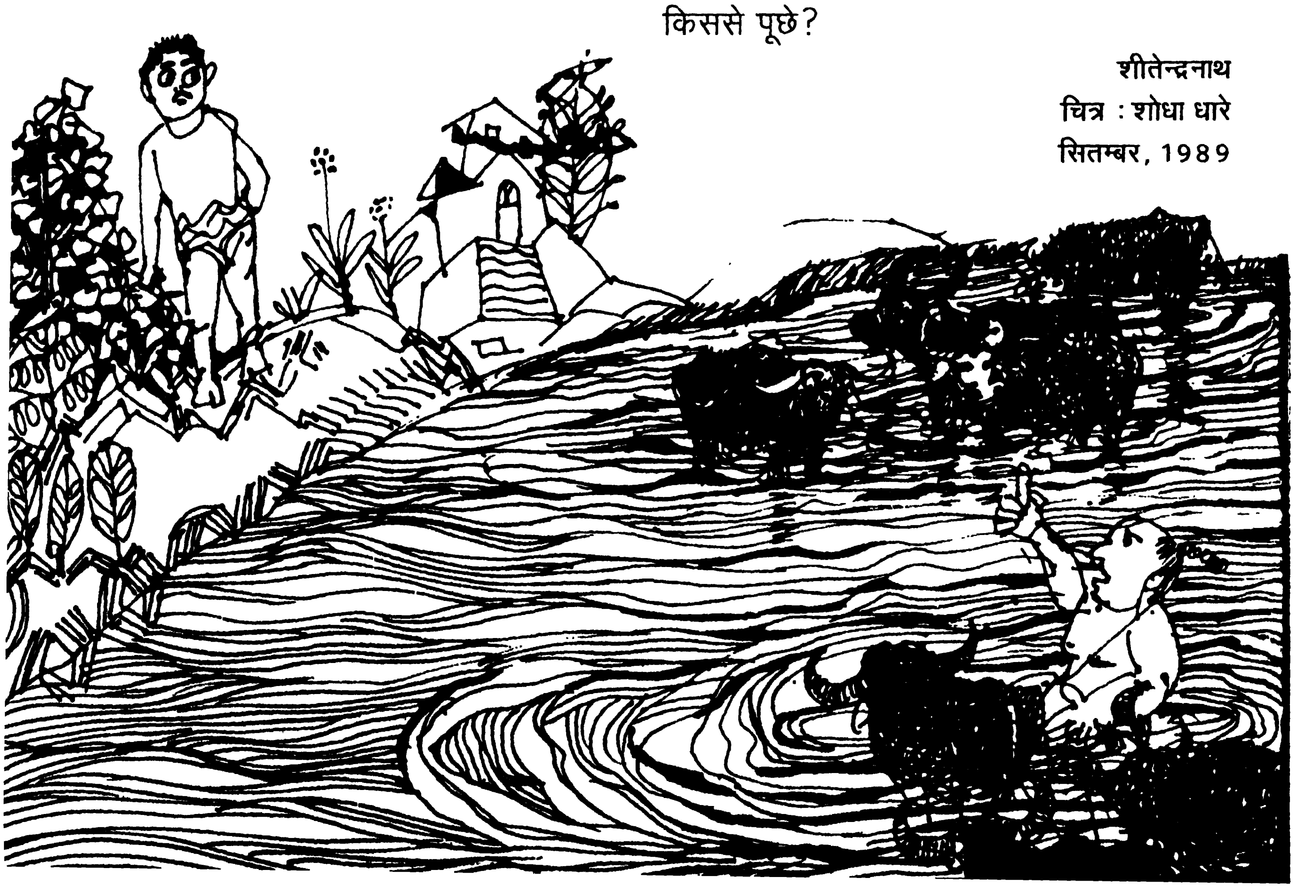
देखता है, पंडित सुकुल की भैंसें पश्चिमी छोर पर एक के बाद एक उतर रही हैं पानी में, और सुकुलजी का हरवाहा डण्डे से उन्हें बटोरकर तालाब में हंकाल रहा है। सुकुलजी बीच तालाब में ही उन्हें चुमकार रहे हैं। 'पुच् पुच् – आ–हे–हे–अ...., और भैंस अधमुंदी आँखों से पानी की ठण्डक का मज़ा लेतीं। कभी पूरा सिर पानी में डुबोतीं, कभी पानी से ऊपर रखती। तैरते हुए पंडित के पास पहुँच जाती हैं– एक की पूँछ से दूसरा मुँह सटाए कतार में। पंडित सुकुल एक भैंस की पूँछ पकड़े उसके पीछे पौरने लगते हैं और तालाब के इस छोर से उस छोर तक अपनी भारी भरकम देह लेकर पहुँच जाते हैं।

फगुवा देखता है, उनमें और भैंस में फर्क केवल रंग का ही है। वह अपने शरीर को देखता है। उसके बदन पर कहीं भी तो कोई मैला नहीं है, फिर उसके बाप-महतारी तो अब खेत-मजूरी का काम करते हैं। आदमी का मल-मूत्र साफ करने पर भी साबुन से हाथ धो डालते हैं। डॉक्टर लोग भी तो कितना गंदा छूते हैं। ई सुकुल पंडित का लड़का ही तो गाँव में डाक्टरी करता है। वो तो बीमार बच्चे की गंदगी भी हाथ में लग जाने से साबुन से हाथ धोकर पवित्र हो जाता है तो फिर उसकी चमड़ी हमेशा अपवित्र क्यों बनी रहती है? उसका गुनाह यही है कि उसने भंगी जात में जनम लिया है। मगर भंगी जात में जनम लेना न लेना उसके वश की बात है क्या? उसकी नसों में कोई अपवित्रता बहती है क्या, या कि उसके खून का रंग ही काला है। वह भैंसों से भी गया-बीता है! तो क्या आदमी की जात जानवर से भी नीची है?

फगुवा चाहता है कि सुकुल पंडित से इन सवालों का जवाब पूछे, पर वो तो पास ही नहीं फटकने देते। उनको तो उसके साये से ही नफरत है। बाबू-माई से पूछने पर टाल देते हैं एक फीकी हँसी हँसकर कहते हैं, तू अभी छोटा है, तू नहीं समझेगा ई सब बात।

पर इससे उसके मन को तसल्ली नहीं होती। किससे पूछे इस सवाल का जवाब? आखिर किससे पूछे?

शीतेन्द्रनाथ
चित्र : शोधा धारे
सितम्बर, 1989





मेरे अब्बू के दो हाथ

मेरे अब्बू के दो हाथ
उन हाथों की और ही बात।

उन हाथों से मेरा अब्बू
चाक पर बर्तज बनाता,
गीली चिकनी मिट्‌टी पर वह
जादू-सा करके दिखलाता,
घोड़े-बंदर, कई खिलौने
मेरे लिए बनाकर लाता!

घर पर आकर उन हाथों से
सेंकता है वह मोटी- रोटी
माँ के हाथों जैसी अच्छी
गर्म- गर्म- सी फूली रोटी
और चिढ़ाता मुझे प्यार- से
खींच के मेरी लम्बी चोटी!



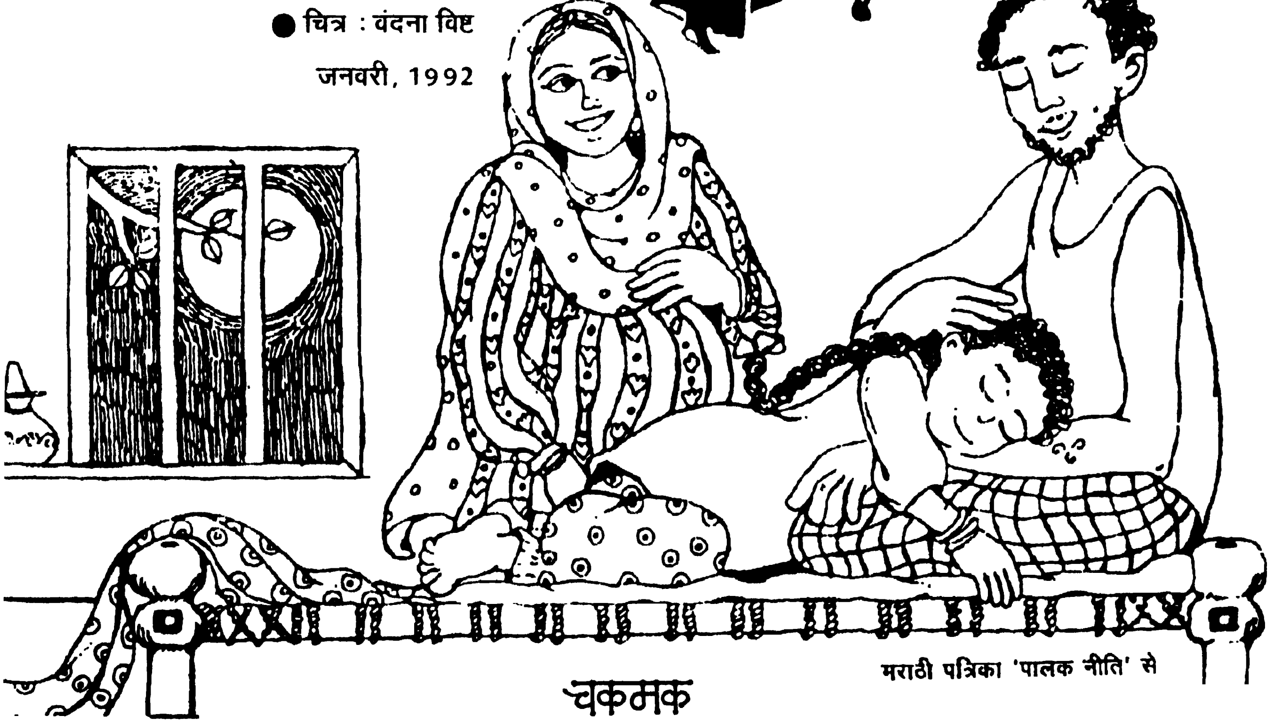


उन हाथों को पकड़-पकड़ के
पाठशाला को मैं जाती हूँ
उन हाथों का ले के सहारा
मैं पेड़ों पर चढ़ जाती हूँ
और रात को उन हाथों की
थपकी से ही सो पाती हूँ!



मेरे अब्बू के दो हाथ
उन हाथों की और ही बात!

● विभा कौल
● चित्र : वंदना विष्ट
जनवरी, 1992



मराठी पत्रिका 'पालक नीति' से

अफवाह कैसे फैलती

आश्चर्य होता है कि शहर या गाँव में अफवाहें कितनी जल्दी फैलती हैं। कभी-कभी किसी घटना को घण्टे दो घण्टे भी नहीं बीतते और उसकी खबर सारे शहर या गाँव में फैल जाती है। जिस घटना के चंद गवाह थे, उसका ज्ञान जल्द ही पूरे शहर या गाँव को हो जाता है। यह बात आश्चर्यजनक और रहस्यमयी लगती है। पर यदि हिसाब लगाना शुरू करें, तो स्पष्ट हो जाएगा कि इसमें कोई जादू की बात नहीं है। ऐसा संख्याओं की विशेषता के कारण होता है। उदाहरण के लिए एक खबर का प्रसारण देखें।

एक छोटे शहर में, जिसकी जनसंख्या पचास हज़ार है, एक व्यक्ति आठ बजे सुबह राजधानी से कोई खबर लाता है। जहाँ वह रुकता है, सिर्फ तीन स्थानीय व्यक्तियों को उस खबर के बारे में बताता है। मान लें कि इसमें पंद्रह मिनट लगे।

इस प्रकार सवा आठ बजे यह खबर सिर्फ चार व्यक्ति जानते थे – खबर लाने वाला और तीन स्थानीय व्यक्ति।

खबर लाने के बाद तीनों में से प्रत्येक तीन-तीन अन्य व्यक्तियों को खबर के बारे में बताते हैं। इसमें भी पंद्रह मिनट लगते हैं। यानी आधे घण्टे में खबर $4+(3\times3)=13$ व्यक्ति जान लेते हैं। अगले पंद्रह मिनट में ये नौ व्यक्ति अपने अन्य तीन-तीन मित्रों तक उक्त खबर पहुँचाने में सफल हो जाते हैं। इस तरह पौने नौ बजे तक खबर का ज्ञान $13+(3\times9)=40$ व्यक्तियों को हो जाता है। यदि खबर का ज्ञान इसी गति से फैलता जाए, यानी हर व्यक्ति उसे सुनने से बाद अगले पंद्रह मिनट में अपने तीन परिचितों को बता दे तो स्थिति इस तरह होगी –

9.00 बजे खबर जानते हैं

$40+(3\times27) = 121$ व्यक्ति

9.15 बजे खबर जानते हैं

$121+(3\times81) = 364$ व्यक्ति

9.30 बजे खबर जानते हैं

$364+(3\times243) = 1093$ व्यक्ति

इस प्रकार, शहर में खबर आने के डेढ़ घण्टे बाद उसे लगभग ग्यारह सौ व्यक्ति जान लेते हैं। पचास हज़ार की जनसंख्या वाले शहर के लिए यह संख्या कुछ अधिक नहीं लगती। तुम सोचते होगे कि जब तक सब लोग इसे जान पाएँगे, काफी समय बीत जाएगा। आओ देखें, आगे खबर कैसे फैलती है –

9:45 बजे खबर जानते हैं

$1093+(3\times729) = 3280$ व्यक्ति

10.00 बजे खबर जानते हैं

$3280+(3\times2187) = 9841$ व्यक्ति

अगले पंद्रह मिनट बीतने पर शहर के आधे व्यक्ति जान जाएँगे।। 10.15 बजे खबर जानते हैं

$9841+(3\times6561)=29524$ व्यक्ति

इसका अर्थ है कि साढ़े दस बजे के कुछ पहले शहर का हर व्यक्ति इस खबर को जान लेगा जो आठ बजे सिर्फ एक व्यक्ति को ज्ञात थी।

अब देखें यह हिसाब कैसे लगाया गया है। इसके लिए हमें निम्न संख्याओं का योग प्राप्त करना होगा।

$1+3+(3\times3)+(3\times3\times3)+(3\times3\times3\times3)$ + आदि

यदि हम जोड़ी गईं संख्याओं की निम्न ाशेषता पर विचार करें तो योगदान जानने की ाधि प्राप्त की जा सकती है –

1 = 1

3 = 1×2+1

9 = (1+3) × 2+1

27 = (1+3+9) ×2+1

81= (1+3+9+27) × 2 + 1 आदि

दूसरे शब्दों में क्रम की हर संख्या पिछले ंख्या से तीन गुनी है। निष्कर्ष यह है कि 1 से केसी संख्या तक इस क्रम में योग ज्ञात करने के ेलए अंतिम संख्या में से 1 कम करके संख्या का ाधा जोड़ना होगा। उदाहरण के लिए –

+3+9+27+81 क्रम का योग इस तरह ोगा –

81+(81−1)/2 = 81+40 = 121

हमने यही देखा था कि नौ बजने पर (यानी ुबह आठ बजे खबर का फैलना शुरू होने के बाद ंद्रह-पंद्रह मिनट के चार अंतराल बीत चुके थे) कुल 121 लोगों तक खबर पहुँच चुकी थी। यदि ह मालूम करना होता कि सुबह दस बजे तक कितने लोगों तक खबर पहुँची तो निम्नलिखित क्रम का योग निकालना पड़ता।

1+3+9+27+81+243+729+2187+6561

अब क्रम की अंतिम संख्या लिखो और उसमें से 1 घटाकर शेष का आधा उसी में जोड़ा, यानी इस तरह

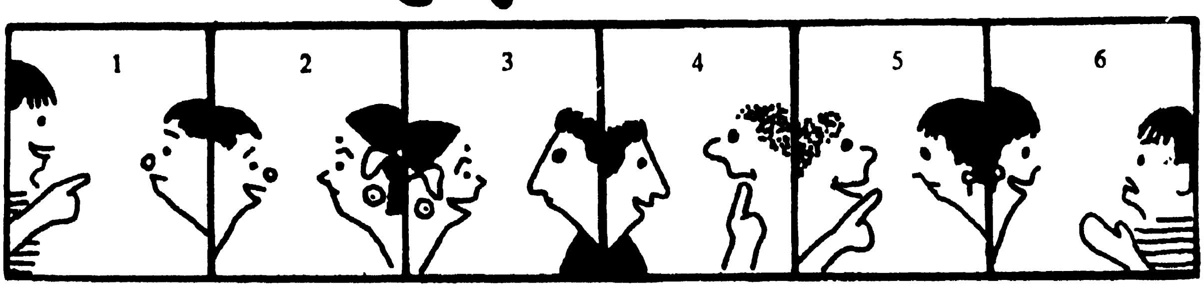
6561 +(6561−1)/2 = 6561+3280 = 9841

मतलब यह कि दस बजे तक 9841 व्यक्तियों तक खबर पहुँच चुकी थी।

हमारे इस उदाहरण में प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ तीन लोगों तक ही खबर पहुँचाता है। यदि वह तीन की बजाय पाँच व्यक्ति को खबर सुनाते तो खबर और भी जल्दी फैल जाती है। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा पाँच लोगों तक खबर पहुँचाने की स्थिति में खबर फैलने का कार्यक्रम किस प्रकार होगा। यह तुम बनाओ।

(याइ. पेरेलमान की किताब
'सरस गणित-कहानियाँ और पहेलियाँ' से साभार)
चित्र : राजेन्द्र धोड़पकर
जुलाई, 1985

सत्य क्या है?



1. जग्गू ने मोहन से कहा, मेरे पास एक अच्छा भूरा कुत्ता है।
2. मोहन ने अनीता से कहा, जग्गू के पास एक भूरा कुत्ता है।
3. अनीता ने रफीक से कहा, जग्गू के पास एक गंदा भूरा कुत्ता है।
4. रफीक ने घनश्याम से कहा, जग्गू के पास एक गंदा कुत्ता है
5. घनश्याम ने नफीसा से कहा, जग्गू का एक सड़ा कुत्ता है।
6. नफीसा ने जग्गू से कहा, लोग कहते हैं कि तुम सड़े कुत्ते हो।

पुराने अंकों से

अफवाह कैसे फैलती

आश्चर्य होता है कि शहर या गाँव में अफवाहें कितनी जल्दी फैलती हैं। कभी-कभी किसी घटना को घण्टे दो घण्टे भी नहीं बीतते और उसकी खबर सारे शहर या गाँव में फैल जाती है। जिस घटना के चंद गवाह थे, उसका ज्ञान जल्द ही पूरे शहर या गाँव को हो जाता है। यह बात आश्चर्यजनक और रहस्यमयी लगती है। पर यदि हिसाब लगाना शुरू करें, तो स्पष्ट हो जाएगा कि इसमें कोई जादू की बात नहीं है। ऐसा संख्याओं की विशेषता के कारण होता है। उदाहरण के लिए एक खबर का प्रसारण देखें।

एक छोटे शहर में, जिसकी जनसंख्या पचास हज़ार है, एक व्यक्ति आठ बजे सुबह राजधानी से कोई खबर लाता है। जहाँ वह रुकता है, सिर्फ तीन स्थानीय व्यक्तियों को उस खबर के बारे में बताता है। मान लें कि इसमें पंद्रह मिनट लगे।

इस प्रकार सवा आठ बजे यह खबर सिर्फ चार व्यक्ति जानते थे – खबर लाने वाला और तीन स्थानीय व्यक्ति।

खबर लाने के बाद तीनों में से प्रत्येक तीन-तीन अन्य व्यक्तियों को खबर के बारे में बताते हैं। इसमें भी पंद्रह मिनट लगते हैं। यानी आधे घण्टे में खबर $4+(3\times3)=13$ व्यक्ति जान लेते हैं। अगले पंद्रह मिनट में ये नौ व्यक्ति अपने अन्य तीन-तीन मित्रों तक उक्त खबर पहुँचाने में सफल हो जाते हैं। इस तरह पौने नौ बजे तक खबर का ज्ञान $13+(3\times9)=40$ व्यक्तियों को हो जाता है। यदि खबर का ज्ञान इसी गति से फैलता जाए, यानी हर व्यक्ति उसे सुनने से बाद अगले पंद्रह मिनट में अपने तीन परिचितों को बता दे तो स्थिति इस तरह होगी –

9.00 बजे खबर जानते हैं

$40+(3\times27) = 121$ व्यक्ति

9.15 बजे खबर जानते हैं

$121+(3\times81) = 364$ व्यक्ति

9.30 बजे खबर जानते हैं

$364+(3\times243) = 1093$ व्यक्ति

इस प्रकार, शहर में खबर आने के डेढ़ घण्टे बाद उसे लगभग ग्यारह सौ व्यक्ति जान लेते हैं। पचास हज़ार की जनसंख्या वाले शहर के लिए यह संख्या कुछ अधिक नहीं लगती। तुम सोचते होगे कि जब तक सब लोग इसे जान पाएँगे, काफी समय बीत जाएगा। आओ देखें, आगे खबर कैसे फैलती है –

9:45 बजे खबर जानते हैं

$1093+(3\times729) = 3280$ व्यक्ति

10.00 बजे खबर जानते हैं

$3280+(3\times2187) = 9841$ व्यक्ति

अगले पंद्रह मिनट बीतने पर शहर के आधे व्यक्ति जान जाएँगे।10.15 बजे खबर जानते हैं

$9841+(3\times6561)=29524$ व्यक्ति

इसका अर्थ है कि साढ़े दस बजे के कुछ पहले शहर का हर व्यक्ति इस खबर को जान लेगा जो आठ बजे सिर्फ एक व्यक्ति को ज्ञात थी।

अब देखें यह हिसाब कैसे लगाया गया है। इसके लिए हमें निम्न संख्याओं का योग प्राप्त करना होगा।

$1+3+(3\times3)+(3\times3\times3)+(3\times3\times3\times3)$ + आदि

यदि हम जोड़ी गईं संख्याओं की निम्न विशेषता पर विचार करें तो योगदान जानने की विधि प्राप्त की जा सकती है –

1 = 1

3 = 1×2+1

9 = (1+3) × 2+1

27 = (1+3+9) ×2+1

81= (1+3+9+27) × 2 + 1 आदि

दूसरे शब्दों में क्रम की हर संख्या पिछले संख्या से तीन गुनी है। निष्कर्ष यह है कि 1 से किसी संख्या तक इस क्रम में योग ज्ञात करने के लिए अंतिम संख्या में से 1 कम करके संख्या का आधा जोड़ना होगा। उदाहरण के लिए – 1+3+9+27+81 क्रम का योग इस तरह होगा –

81+(81−1)/2 = 81+40 = 121

हमने यही देखा था कि नौ बजने पर (यानी सुबह आठ बजे खबर का फैलना शुरू होने के बाद पंद्रह-पंद्रह मिनट के चार अंतराल बीत चुके थे) कुल 121 लोगों तक खबर पहुँच चुकी थी। यदि यह मालूम करना होता कि सुबह दस बजे तक कितने लोगों तक खबर पहुँची तो निम्नलिखित क्रम का योग निकालना पड़ता।

1+3+9+27+81+243+729+2187+6561

अब क्रम की अंतिम संख्या लिखो और उसमें से 1 घटाकर शेष का आधा उसी में जोड़ा, यानी इस तरह

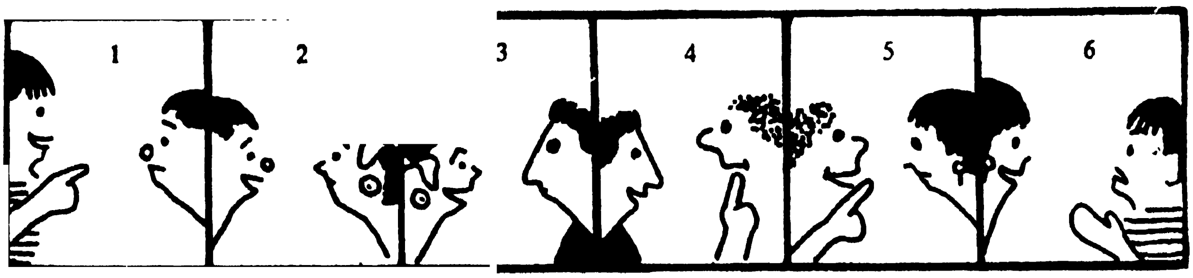
6561 +(6561−1)/2 = 6561+3280 = 9841

मतलब यह कि दस बजे तक 9841 व्यक्तियों तक खबर पहुँच चुकी थी।

हमारे इस उदाहरण में प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ तीन लोगों तक ही खबर पहुँचाता है। यदि वह तीन की बजाय पाँच व्यक्ति को खबर सुनाते तो खबर और भी जल्दी फैल जाती है। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा पाँच लोगों तक खबर पहुँचाने की स्थिति में खबर फैलने का कार्यक्रम किस प्रकार होगा। यह तुम बनाओ।

(याइ. पेरेलमान की किताब
'सरस गणित-कहानियाँ और पहेलियाँ' से साभार)
चित्र : राजेन्द्र धोड़पकर
जुलाई, 1985

सत्य क्या है?



1. जग्गू ने मोहन से कहा, मेरे पास एक अच्छा भूरा कुत्ता है।
2. मोहन ने अनीता से कहा, जग्गू के पास एक भूरा कुत्ता है।
3. अनीता ने रफीक से कहा, जग्गू के पास एक गंदा भूरा कुत्ता है।
4. रफीक ने घनश्याम से कहा, जग्गू के पास एक गंदा कुत्ता है
5. घनश्याम ने नफीसा से कहा, जग्गू का एक सड़ा कुत्ता है।
6. नफीसा ने जग्गू से कहा, लोग कहते हैं कि तुम सड़े कुत्ते हो।

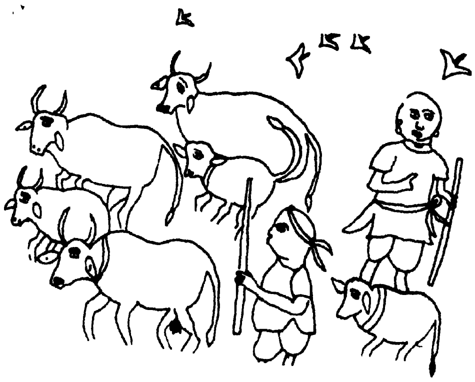
मेरा भारत महान!

पेट में रोटी नहीं
तन पर कपड़ा नहीं
नहीं सिर पर मकान है
फिर भी गर्व से कहते हैं हम
कि भारत हमारा महान है!

जिन हाथों में होने थे खिलौने
जिन हाथों में होनी थी पुस्तकें
उन हाथों में आज होटल की जूठी प्लेटें हैं
उन हाथों में बूट पॉलिश का सामान है
फिर भी गर्व से कहते हैं हम
कि भारत हमारा महान है!

भुखमरी से बिलखता हुआ
कुपोषण से सिसकता हुआ
अपनी गरीबी पर रोता हुआ
वह इंसान अपनी ज़िन्दगी से परेशान है
फिर भी गर्व से कहते हैं हम
कि भारत हमारा महान है!

निलेश कुमार राठौर, दसवीं, खरगौन, म. प्र.
नवम्बर 1989



हेमलता परसाई, आठवीं, सोहागपुर, नवम्बर, 1985

स्वास्थ्य मंत्री का दौरा

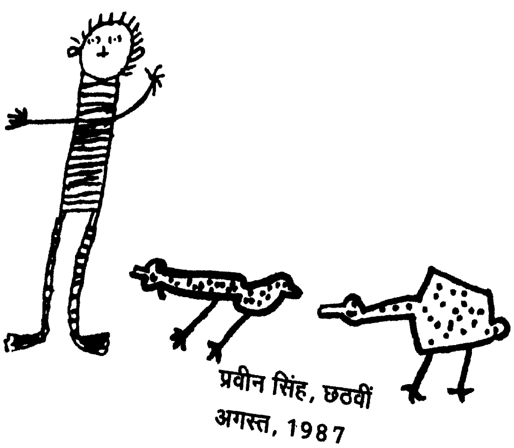
सरकारी अस्पताल
वालों ने सुना
जैसे ही कि स्वास्थ्य मंत्री का
दौरा है
डॉक्टर दौड़े
नर्सें दौड़ीं, कम्पाउंडर दौड़े
वार्ड बॉय दौड़े
दौड़े स्वीपर लेकर झाड़ू
घर की (मरीजों की) सभी चद्दरें उठवाईं
चिकित्सालय की नई
चद्दरें बिछवाईं
गंदगी दूर करवाई
सफाई चारों ओर
पर जब सुना कि मंत्री
नहीं आएँगे
आनन–फानन झटपट
वार्ड बॉय आए
घरों की चद्दरें बिछवाईं
वाह रे वाह!
स्वास्थ्य मंत्री का दौरा!

अभिलाषा सिंगोरिया, नवमीं, कुक्षी, धार, म. प्र
अक्टूबर 1989

? मरना नहीं चाहती

?डीगढ़ में बम नहीं गिरेगा
?ंग तो कारगिल में चल रही है न!
अगर चंडीगढ़ में गिरे भी तो
सैनिक अड्डों पर ही गिरेगा
वो तो चंडी मंदिर और सैक्टर 47 में हैं
मैं ज़िंदा रहूँगी!
वैसे चंडीगढ़ पाकिस्तान में होता
तो क्या हो जाता
लोगों का सुखी रहना ज़रूरी है।
मैं मरना नहीं चाहती।
दुनिया के उन इलाकों में जहाँ जंग नहीं है
बच्चे बड़े होंगे
मेरे यहाँ बम गिरेगा
तो मैं मर जाऊँगी
मैं मरना नहीं चाहती।

शाना, आठ वर्ष, चंडीगढ़
अगस्त,1999



प्रवीन सिंह, छठवीं
अगस्त, 1987

गैल

मेरे घर के पास से होकर
दूर कहीं जाती गैल
लोग इसे सड़क भी कहते
और राह भी कहलाती गैल।

रास्ता या फिर रोड भी कह दें
कभी न बुरा मानती गैल
नदियों और खेतों से होकर
पहाड़ों पर चढ़ जाती गैल।

मैदानों और जंगलों में भी
कभी नहीं घबराती गैल
कोई भी इसके ऊपर चलदे
सदा मुस्काती रहती गैल।

न जाने यह कितनी लम्बी
कभी नहीं बतलाती गैल।
शायद सारी ही दुनिया के
कोने-कोने में घूम आती गैल।

खुद तो एक जगह पर रहती
दूसरों को ही चलाती गैल।
कितनी अच्छी कितनी प्यारी
मुझको है यह भाती गैल।

दिलजीत सिंह सिख, गढ़ी बारोद,
शिवपुरी, म. प्र.
सितम्बर,1999

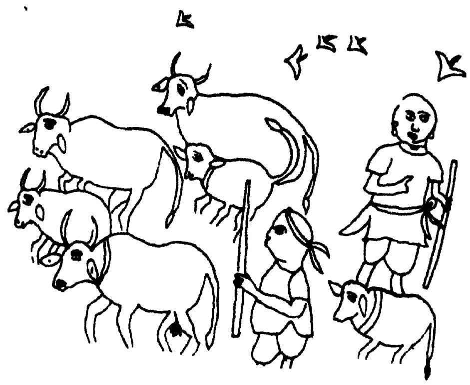
मेरा भारत महान!

पेट में रोटी नहीं
तन पर कपड़ा नहीं
नहीं सिर पर मकान है
फिर भी गर्व से कहते हैं हम
कि भारत हमारा महान है!

जिन हाथों में होने थे खिलौने
जिन हाथों में होनी थी पुस्तकें
उन हाथों में आज होटल की जूठी प्लेटें हैं
उन हाथों में बूट पॉलिश का सामान है
फिर भी गर्व से कहते हैं हम
कि भारत हमारा महान है!

भुखमरी से बिलखता हुआ
कुपोषण से सिसकता हुआ
अपनी गरीबी पर रोता हुआ
वह इंसान अपनी ज़िन्दगी से परेशान है
फिर भी गर्व से कहते हैं हम
कि भारत हमारा महान है!

निलेश कुमार राठौर, दसवीं, खरगौन, म. प्र.
नवम्बर 1989



हेमलता परसाई, आठवीं, सोहागपुर, नवम्बर, 1985

स्वास्थ्य मंत्री का दौरा

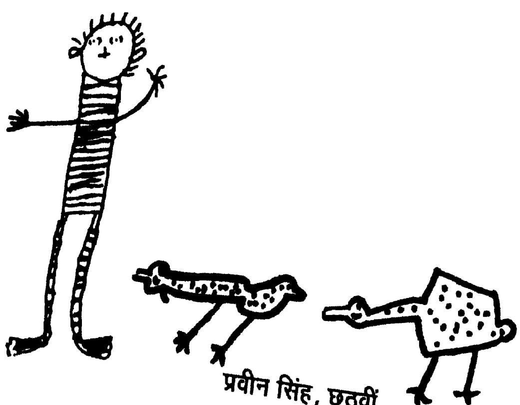
सरकारी अस्पताल
वालों ने सुना
जैसे ही कि स्वास्थ्य मंत्री का
दौरा है
डॉक्टर दौड़े
नर्सें दौड़ीं, कम्पाउंडर दौड़े
वार्ड बॉय दौड़े
दौड़े स्वीपर लेकर झाडू
घर की (मरीजों की) सभी चद्दरें उठवाईं
चिकित्सालय की नई
चद्दरें बिछवाईं
गंदगी दूर करवाई
सफाई चारों ओर
पर जब सुना कि मंत्री
नहीं आएँगे
आनन–फानन झटपट
वार्ड बॉय आए
घरों की चद्दरें बिछवाईं
वाह रे वाह!
स्वास्थ्य मंत्री का दौरा!

अभिलाषा सिंगोरिया, नवमीं, कुक्षी, धार, म. प्र.
अक्टूबर 1989

मरना नहीं चाहती

ंडीगढ़ में बम नहीं गिरेगा
जंग तो कारगिल में चल रही है न!
अगर चंडीगढ़ में गिरे भी तो
सैनिक अड्डों पर ही गिरेगा
वो तो चंडी मंदिर और सैक्टर 47 में हैं
मैं ज़िंदा रहूँगी!
वैसे चंडीगढ़ पाकिस्तान में होता
तो क्या हो जाता
लोगों का सुखी रहना ज़रूरी है।
मैं मरना नहीं चाहती।
दुनिया के उन इलाकों में जहाँ जंग नहीं है
बच्चे बड़े होंगे
मेरे यहाँ बम गिरेगा
तो मैं मर जाऊँगी
मैं मरना नहीं चाहती।

शाना, आठ वर्ष, चंडीगढ़
अगस्त,1999



प्रवीन सिंह, छठवीं
अगस्त, 1987

गैल

मेरे घर के पास से होकर
दूर कहीं जाती गैल
लोग इसे सड़क भी कहते
और राह भी कहलाती गैल।

रास्ता या फिर रोड भी कह दें
कभी न बुरा मानती गैल
नदियों और खेतों से होकर
पहाड़ों पर चढ़ जाती गैल।

मैदानों और जंगलों में भी
कभी नहीं घबराती गैल
कोई भी इसके ऊपर चलदे
सदा मुस्काती रहती गैल।

न जाने यह कितनी लम्बी
कभी नहीं बतलाती गैल।
शायद सारी ही दुनिया के
कोने-कोने में घूम आती गैल।

खुद तो एक जगह पर रहती
दूसरों को ही चलाती गैल।
कितनी अच्छी कितनी प्यारी
मुझको है यह भाती गैल।

दिलजीत सिंह सिख, गढ़ी बारोद,
शिवपुरी, म. प्र.
सितम्बर,1999

सपने सच नहीं होते

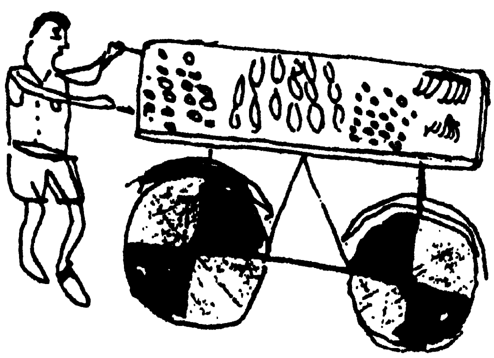
बच्चे सो रहे हैं
सोते-सोते देखा सपना
खेल-खिलौने, पढ़ना-लिखना
हँसना-गाना मौज मनाना।
बच्चे उठ गए हैं
हुए हताश, इन्हें काम की तलाश
जिनका काम पोलीथिन बीनना,
बेचना, रोजी कमाना, काम
मज़दूरी, मेहनत करना।
टूटा सपना - खोया बचपन।
'सपने सच नहीं होते।'

सुनील कुमार बागवान, इन्दौर, म. प्र.



सुनील ने जो देखा वह लिखा। तुम्हारे आसपास भी ऐसे बच्चे होंगे। उनके सपने सच हों इसके लिए क्या करना होगा? कौन करेगा?? जवाब आसान नहीं है फिर भी तुम क्या सोचते हो, हम जानना चाहेंगे।

अप्रैल, 2000



सपने सच नहीं होते

सपने सच नहीं होते – यह शीर्षक देखकर और यह कविता पढ़कर सचमुच मुझे इस सच्चाई को मानने के लिए विवश होना पड़ा कि सपने सच नहीं होते। . . . . .
. . . . इनके सपने सच करने के लिए एक मात्र साधन शिक्षा है परन्तु शिक्षा ग्रहण करने के लिए भी पैसे चाहिए। . . . .
. . . . . अन्त में मुझे भी स्वयं यह प्रश्न पूछना पड़ रहा है कि इनके सपने सच कैसे होंगे? हो सकता है कि किसी और पाठक के विचार मुझे संतुष्ट कर सकें व मुझे और आप दोनों को समस्या का समाधान मिल जाए।

मनु पाण्डे, जाखन देवी, अल्मोड़ा, उ.प्र.
जून, 2000

काम करें या पढ़ाई

जब हम पढ़ने जाते हैं तो गाँव का एक चरवाहा हमें पढ़ने जाने के लिए मना करता है। वह कहता है कि आजकल बीस साल पढ़ने पर भी नौकरी नहीं मिलती। इसलिए तुम बेकार मत पढ़ो। गाय, बकरी चराओ और किसानी का काम करो। हम लोग ऐसी बातें रोज़ सुनते रहते हैं। पहले क्या नौकरी के लिए ही पढ़ते थे? पढ़ने के बाद क्या खेती का काम नहीं किया जा सकता?

हम लोग ज्ञान पाने के लिए पढ़ रहे हैं। वह चरवाहा जो कहता है, क्या वह ठीक है? हम लोग माता–पिता के साथ काम करें या पढ़ाई करें?

राजेश पटेल, तीसरी, रानी सागर, रायगढ़
जुलाई, 1990

बाँध से उजड़कर ...

यदि हमारा गाँव बाँध बनाने के कारण डूब रहा है तो हमें ऐसा लगता है कि अब हमारा यहाँ रहना सम्भव नहीं है। हमारे घर डूब जाएँगे। हमारे खेत डूब जाएँगे। सभी चीजें खत्म हो जाएँगी। हमें किसी और जगह रहना पड़ेगा। वहाँ हमें सब तरह से सुविधा नहीं मिल पाती है। जो हमें भागने के लिए कहता है तो हम डर के मारे वहाँ से किसी दूसरी जगह जाते हैं। और वह हमें यह कहता है कि हम तुम्हारे खेत व ज़मीन वापस कर देंगे। फिर बाद में हमें वह कोई चीज भी नहीं देता। जहाँ हम खेलते थे, वहाँ आज नदी बह रही है यह सब देखकर हमें बहुत दुख होता है।

राजेन्द्र खेड़ा, छटवीं, चंद्रकेशर, देवास, म. प्र.
जुलाई, 1990



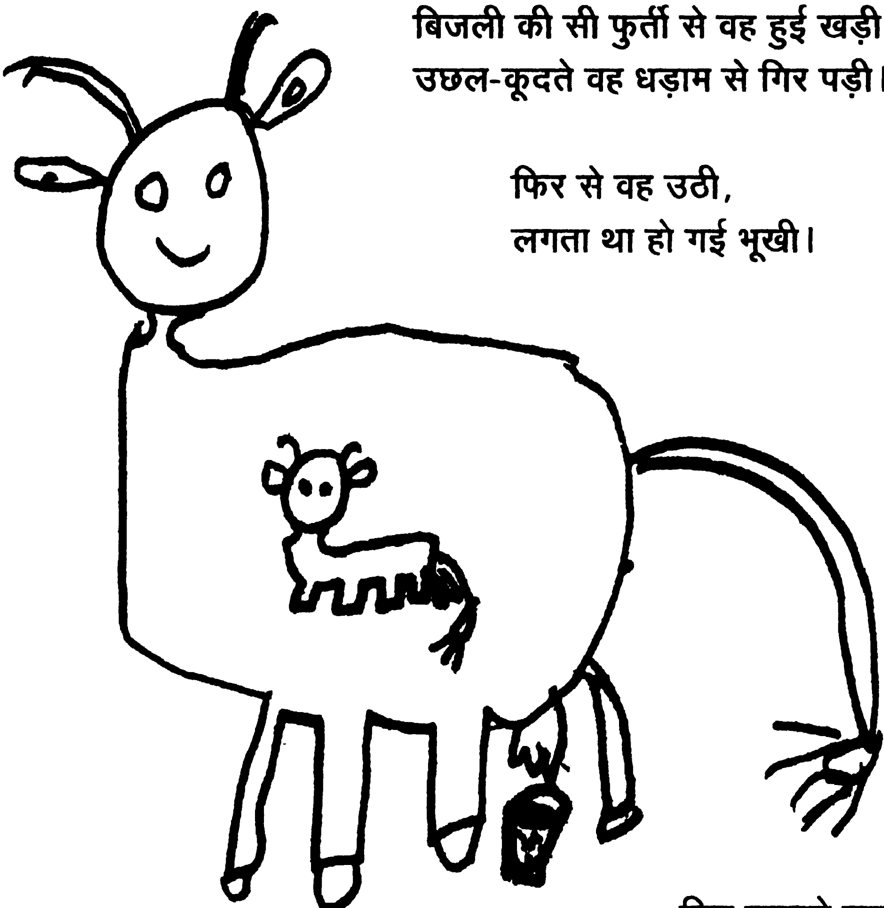
सोमनाथ सिंह ठाकुर, आठवीं, छोटे डोंगर
दिसम्बर, 1988

कटिया

हमारी भैंस ने पैदा की एक कटिया,
छोटी-सी सुंदर थी वह कटिया।

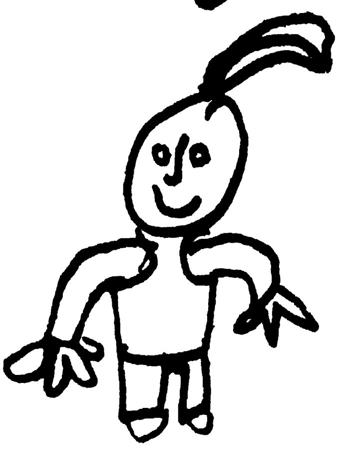
वह सुस्त-सी पड़ी थी,
भैंस उसे चाट रही थी।

बिजली की सी फुर्ती से वह हुई खड़ी,
उछल-कूदते वह धड़ाम से गिर पड़ी।



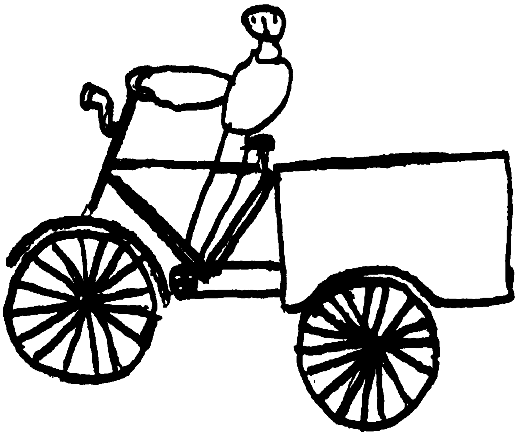
फिर से वह उठी,
लगता था हो गई भूखी।

फिर उसको हमने दूध पिलाया,
कई दिन बाद हमने उसको नहलाया।



हम बच्चों को लगती है वह प्यारी,
माँ ने नाम रखा उसका दुलारी।

कविता : चंद्रपाल दूहण, करेला, हरियाणा
चित्र : प्राणहिता सेन, पाँच वर्ष, रायपुर, म. प्र.
अप्रैल, 1991



विक्रम कुमार दहिया, पाँचवीं, भठगाँव, सोनीपत, हरियाणा
मई, 1998

हमारा स्कूल

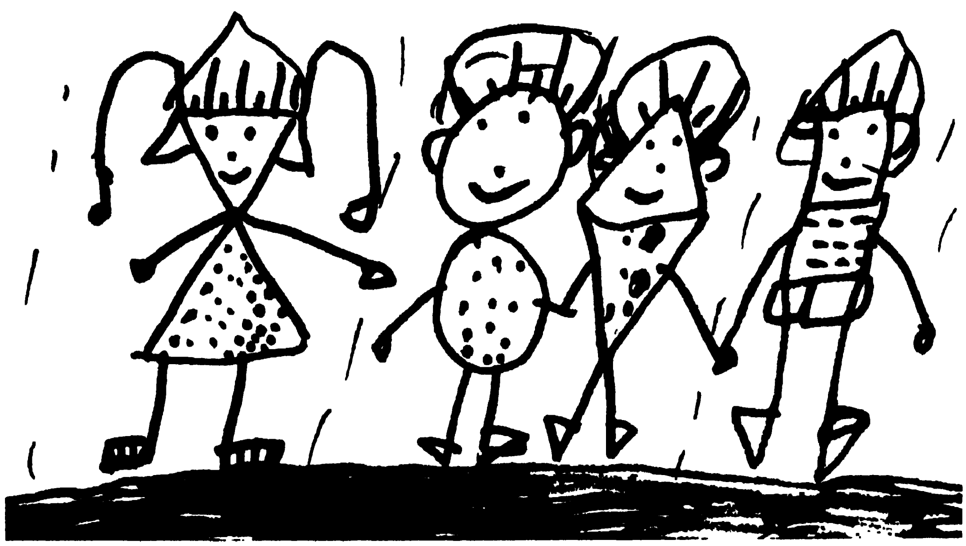
हमारा स्कूल बरसात के दिनों में जहाज़महल बन जाता है। जहाज़ महल का नाम तो ज़रूर सुना होगा। जब हमारी पढ़ाई चलती है तब एकाएक वर्षा होने लगती है। तब पढ़ाई की बात तो दूर रही, हमारी किताब तक गीली हो जाती है। जब हम घर पहुँचते हैं तो घर वालों की डाँट, 'कहाँ गड्ढे में लोटके आया है गधा कहीं का। रूखी-सूखी खा के तो तुम्हारी किताबें जुटा पाते हैं।' और दूसरे दिन स्कूल का पानी निकाला जाता है। जो पैसे वाले बच्चे हैं वे तो एक की जगह दस किताबें खरीद सकते हैं। गरीबों को उनकी फटी पुरानी किताबों से पढ़ना होता है। गाँव वाले टीचर लोगों को दोष देते हैं।

बद्रीलाल मुकाती, मानकुण्ड, देवास, म. प्र.
नवम्बर, 1987

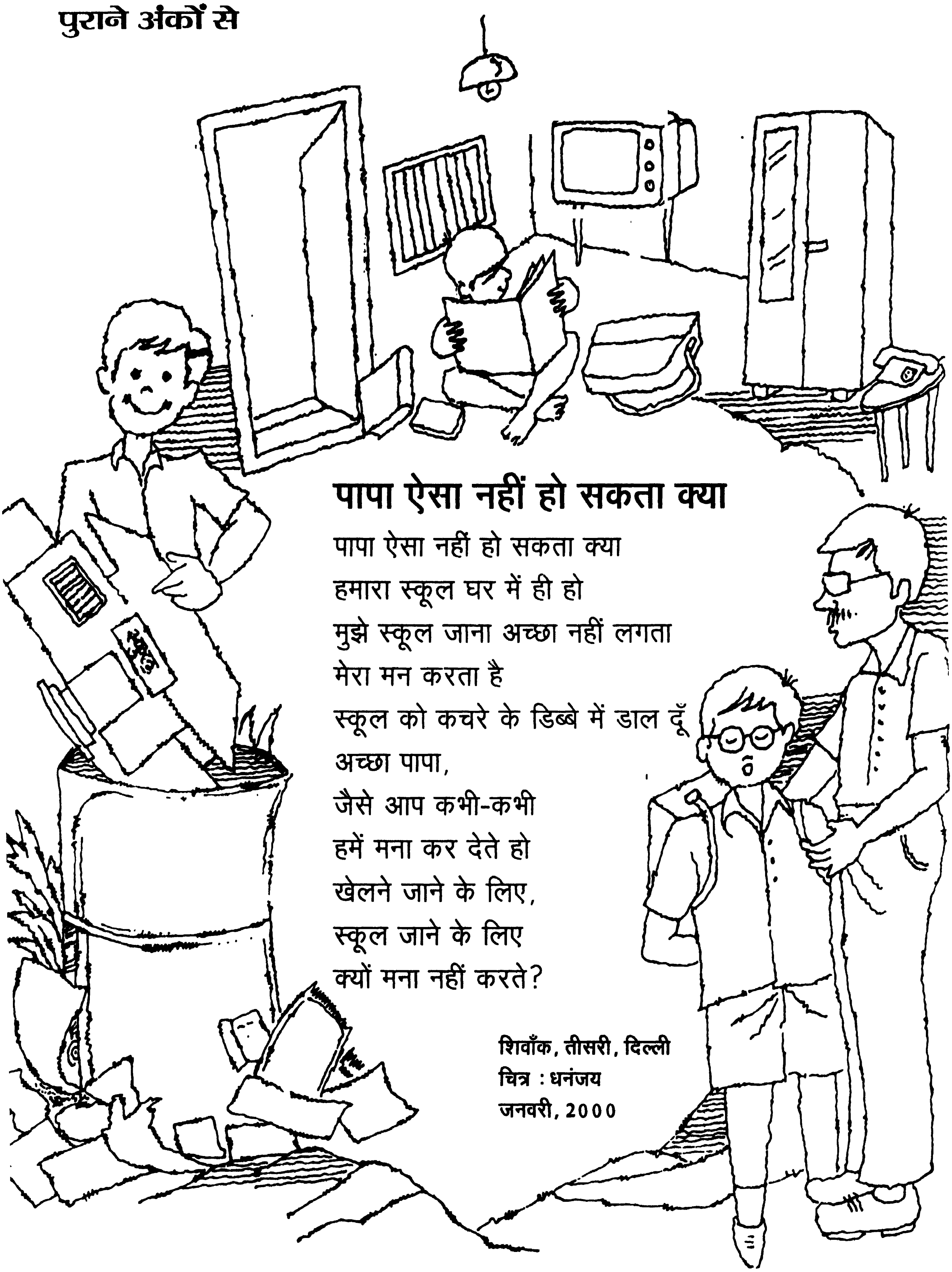
चकमक

चकमक ... चकमक का
शोर सुनकर
गुरूजी चिल्लाए –
सुनो रे, स्कूल में
चकमक नहीं लाना है!
किसके पास है, इधर लाओ
बीड़ी जलाना है।

बाबूलाल कदम, होशंगाबाद, म. प्र.



स्वाति स्याग, छह वर्ष, देवास, म. प्र.
मई, 1989



पापा ऐसा नहीं हो सकता क्या

पापा ऐसा नहीं हो सकता क्या
हमारा स्कूल घर में ही हो
मुझे स्कूल जाना अच्छा नहीं लगता
मेरा मन करता है
स्कूल को कचरे के डिब्बे में डाल दूँ
अच्छा पापा,
जैसे आप कभी-कभी
हमें मना कर देते हो
खेलने जाने के लिए,
स्कूल जाने के लिए
क्यों मना नहीं करते?

शिवाँक, तीसरी, दिल्ली
चित्र : धनंजय
जनवरी, 2000

बंदी बाप के चित्र, बेटे के लिए

यहाँ दिए गए रंगीन चित्र युवां कारलोस रोड्रिगस ने अपने बेटे के लिए जेल में बनाए हैं। युवां कारलोस को आर्जेंटीना सरकार ने उनके विचारों के कारण 1976 में बंदी बनाकर जेल भेज दिया था। युवां करलोस के साथ उनकी गर्भवती पत्नि मरीसा भी थी। पहले नौ महीनों तक उनके बारे में किसी को कुछ मालूम नहीं था। उन दिनों युवां कारलोस की तरह अन्य कई हज़ार लोगों को अर्जेंटीना सरकार ने जेल में बंद कर रखा था। लोग एकाएक लापता हो जाते, यानी जेल भेज दिए जाते।

जेल में मरीसा ने पेट्रोशियों को जन्म दिया। जब पेट्रोशियों तीन माह का था तो जेल के अधिकारियों ने उसे अपनी माँ से अलग कर दिया। एक साल तक उन्हें पेट्रोशियों के बारे में कोई खबर नहीं मिली। एक साल बाद उन्हें पता चला कि उनका बेटा उनके परिवार में सकुशल है। इस मामले में कारलोस दम्पत्ति खुशनसीब थे। कई अन्य बंदी माता-पिता तो अपने बच्चों की शक्ल देख ही नहीं सके। दो वर्ष और बीतने पर मरीसा को रिहा कर दिया गया। रिहा होते ही मरीसा अपने बेटे को लेकर अमेरिका चली गई और वहाँ से अपने पति की रिहाई के लिए कोशिश करने लगी। पेट्रोशियों ने भी अर्जेंटीना के राष्ट्रपति के नाम एक पत्र लिखा।

मरीसा को सहायता मिली एक संस्था से जो पूरे विश्व में ऐसे बंदियों को छुड़ाने और मानव अधिकार के लिए संघर्ष करती है। इस संस्था का नाम है 'एमनेस्टी इंटरनेशनल'।

इस दौरान युवां कारलोस पर अन्य बंदियों की तरह बेतहाशा अत्याचार किए गए। इन बंदियों को न तो अखबार पढ़ने को दिया जाता न ही अन्य कोई किताब। उन्हें पत्र व्यवहार करने की भी छूट नहीं थी। लेकिन एमनेस्टी इंटरनेशनल और ऐसी ही कुछ और संस्थाओं के दवाब और संघर्ष के कारण इन बंदियों को लिखने-पढ़ने की सुविधा दी जाने लगी। परिवार को पत्र लिखने की इजाज़त भी मिल गई।

युवां कारलोस ने अपने बेटे का चेहरा भी नहीं देखा था। उसके मन में अपने बेटे के लिए कुछ चित्र बनाने की इच्छा हुई, पर चित्रों के लिए रंग कहाँ से आए? जेल में तो पेन और कागज़ के सिवाय और कुछ मिलता नहीं था। कारलोस ने खाने-पीने की चीज़ों से रंग बनाए। चुकन्दर से लाल और गुलाबी रंग, कॉफी से गहरा लाल, चाय से हरा और पेन की स्याही और पानी की मदद से नीला रंग बनाया।

युवां कारलोस के ढेर सारे चित्र तो जेल के दरबानों ने नष्ट कर दिए। पर अपना भोजन बेचकर कारलोस ने कुछ चित्र बचा लिए। आखिर एक बाप अपने ऐसे बेटे को जिसकी उसने शक्ल भी नहीं देखी हो और क्या दे सकता था?

इसीलिए एक बंदी बाप के ये चित्र अनमोल हो गए। इन चित्रों से ही उसकी आशा बनी रही कि सरकार कितना भी जुल्म करे, उसके दिल में प्यार को कम नहीं कर सकती।

दिसम्बर, 1987

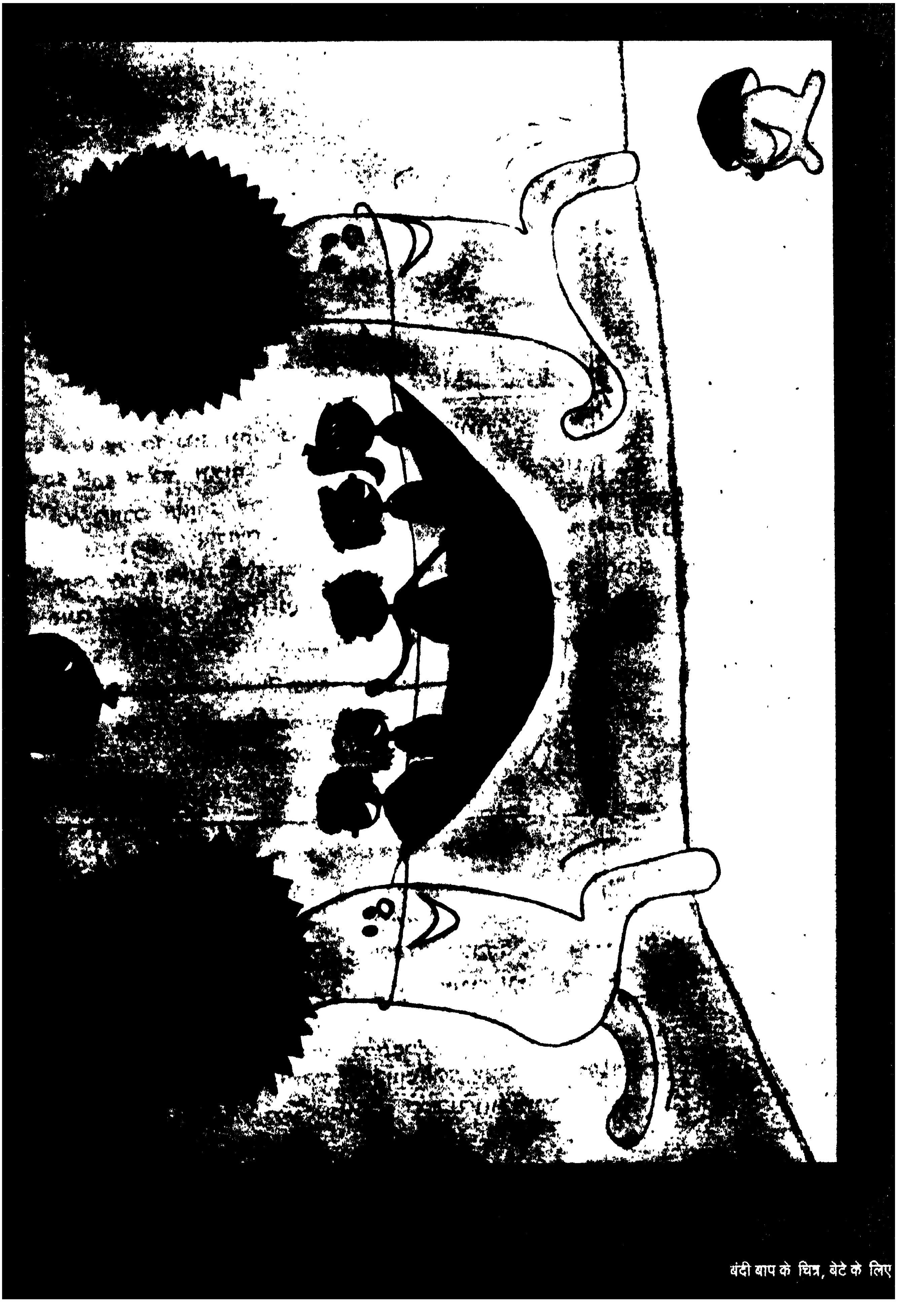
पेट्रोशियों का अर्जेंटीना के राष्ट्रपति के नाम पत्र

मिस्टर प्रेज़िडेंट

मेरे पापा अच्छे हैं, उन्हें छोड़ दीजिये। मैंने उनको बहुत दिनों से नहीं देखा है। वो मुझे छोटी छोटी तस्वीरें और कहानियां भेजते रहते हैं। अपनी दादी के साथ पहले मैं ला प्लाता जाता था......... अब मैं नहीं जा सकता। वो बहुत दूर है और वहां तक जाने के लिये जहाज में जाना होगा। मेरी माँ भी कहती है कि आप उनको छोड़ दो तो हम तीनों साथ रहेंगे फिर पापा मुझे मिठाई और खिलौने ले देंगे।

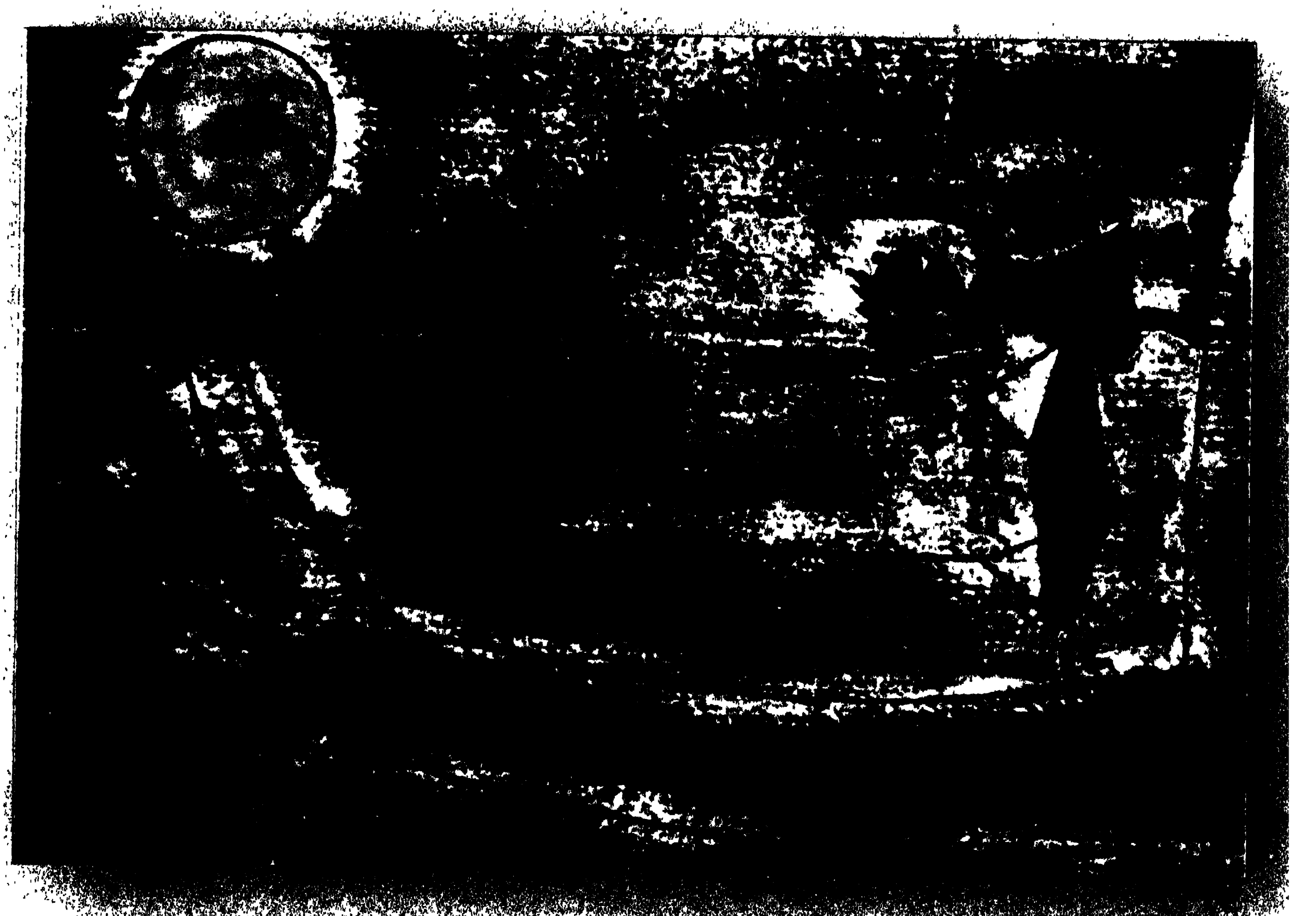
मेरे दोस्त मुझे कहते हैं तेरा पापा कहां है। मैं उनको कहता हूँ कि जब आप मिस्टर प्रेज़िडेंट मेरे पापा को छोड़ देंगे तो हम सब के साथ फुटबाल खेलेंगे।

पेट्रीशियो



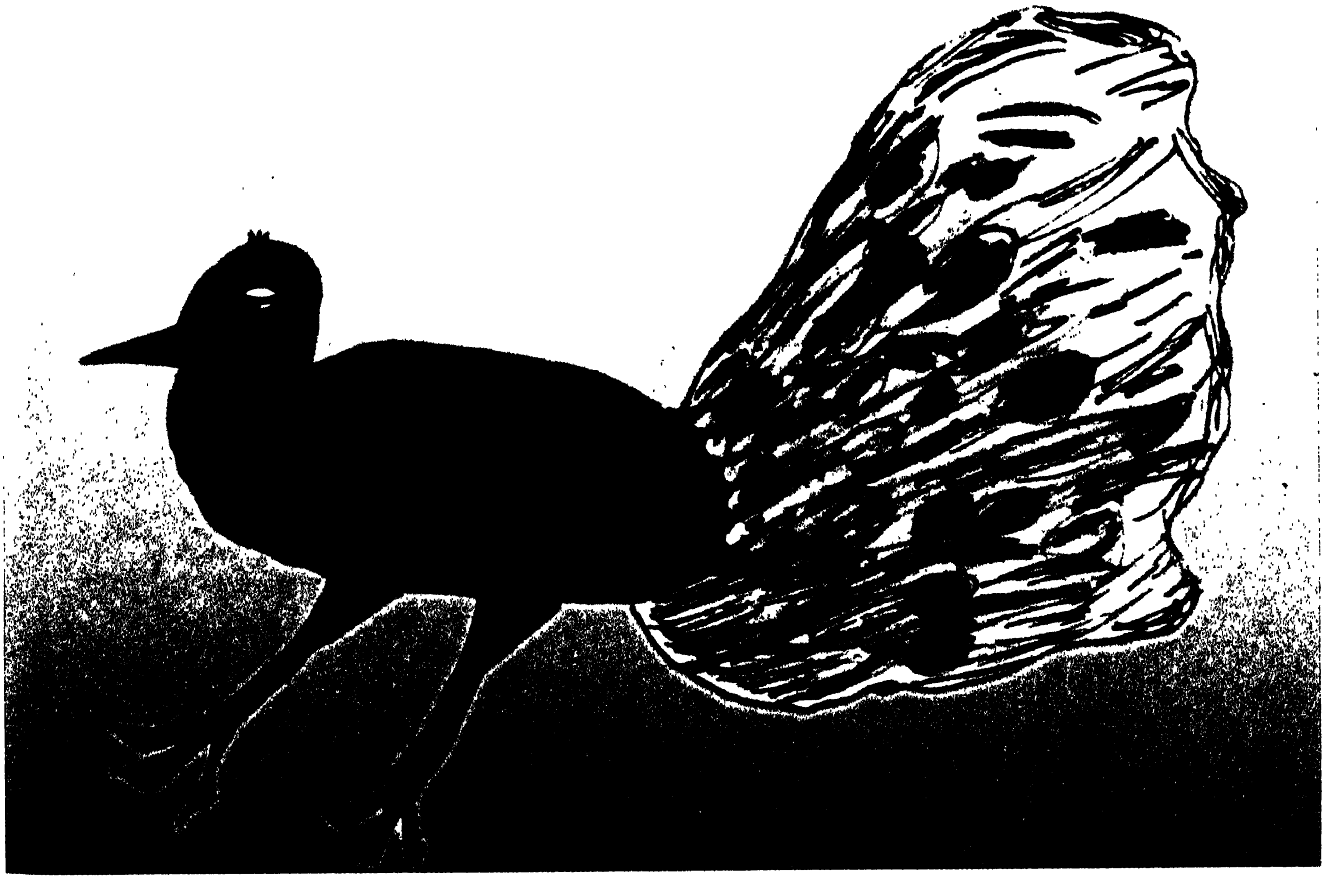
बंदी बाप के चित्र, बेटे के लिए







प्रेम मनमौजी



प्रातिभ कात्यायन, आठवीं



शुभा आचार्य, तीसरी



धुमान एम. ओरोप्रेमी, दूसरी, भावनगर, गुजरात



हम कितनी गरमी सहन कर सकते हैं?

अक्सर आपस में बात करते हुए हम कहते-सुनते हैं कि '' इस साल बहुत गरमी है और सहन नहीं हो सकती।'' अब यह बहुत गरमी कितनी होती है? हमारा शरीर कितनी गरमी सहन कर सकता है? तुम जानते हो, पृथ्वी पर 57 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक तापमान कहीं रेखांकित नहीं हुआ है। यह तापक्रम अमेरिका की 'मृत्यु घाटी' में नापा गया है।

हमारे देश भारत में गरमी के मौसम में तापमान 45 डिग्री सेंटीग्रेड या उससे कुछ कम -अधिक होता है। हम इसी गरमी से बहुत बेचैनी महसूस करने लगते हैं।पर तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि मनुष्य इससे अधिक तापमान सहन कर सकता है।

दो अंग्रेज़ वैज्ञानिकों ने इस पर कई प्रयोग किए थे। जिससे निर्धारित हो सके कि मानव शरीर अधिक से अधिक कितनी गरमी सहन कर सकता है। पता चला कि शुष्क (सूखी) हवा में यदि शरीर धीरे-धीरे गरम किया जाए तो वह 100 डिग्री सेंटीग्रेड ही नहीं (जिस पर पानी उबलता है) लेकिन 160 डिग्री सेंटीग्रेड तक का तापमान भी सहन कर सकता है।

ये वैज्ञानिक प्रयोग के लिए रोटी बनाने वाली बेकरी के अंदर भट्ठी जलाकर घण्टों व्यतीत किया करते थे। लोगों का कहना है कि कमरे की हवा अण्डा उबालने या गोश्त भुनने लायक थी। लेकिन उन वैज्ञानिकों का वहाँ बाल भी बाँका नहीं हुआ था।

उन्हें इतनी गरमी परेशान क्यों नहीं करती थी? वास्तव में उनका शरीर यह तापक्रम बिल्कुल नहीं ग्रहण करता था। हमारा शरीर अपना साधारण तापक्रम हमेशा सुरक्षित रखता है। गरमी के विरुद्ध शरीर की लड़ाई लड़ता है पसीना। पसीना बहाकर मनुष्य का शरीर अतिरिक्त गरमी निकालता है। पसीने का वाष्पीकरण हवा की उस परत का अधिकाँश ताप ग्रहण कर लेता है जो त्वचा के सम्पर्क में आती है। यही वजह है कि त्वचा का तापमान पर्याप्त रूप से कम हो जाता है।

हाँ, पर दो शर्तें हैं।एक शरीर गरमी के स्रोत के साथ सीधे सम्पर्क में न आए और दूसरी हवा शुष्क हो।

• • •

हमारे शिक्षकगण स्टाफ रूम में चर्चा कर रहे थे कि मोर नाचता है, उसके बाद आँसू गिरते हैं, इन आँसुओं को मोरनी पीती है, जिससे वह गर्भवती हो जाती है। क्या यह सच है? मुझे तो सच नहीं लगता।

विवेक जैन, सातवीं, खिड़किया, होशंगाबाद, म. प्र.

यह सच नहीं है। तुम्हारा शक ठीक है। अधिक विकसित प्राणियों में प्रजनन लैंगिक होता है। समाज में लैंगिक प्रजनन को लेकर सामान्यतौर पर एक झिझक है। इस मूल जैविक प्रक्रिया को

गंदा या अशलील माना जाता है और इसके बारे में बात करने पर भी बंधन है। इसी कारण मादा के गर्भवती होने के कई अलैंगिक कारण बताए जाते हैं। मोरनी के बारे में भी यह इसी तरह की एक गलत धारणा है।

लैंगिक प्रजनन में मादा के शरीर में अंडाणुओं का निषेचन नर के शरीर में बने शुक्राणुओं द्वारा होना आवश्यक है। निषेचन के बाद ही सम्पूर्ण अण्डा बनता है। जिससे धीरे-धीरे नए प्राणी का विकास होता है। ये अण्डाणु और शुक्राणु प्राणियों के शरीर में उपस्थित विशेष अंगों में बनते हैं। ये दोनों सामान्य कोशिकाओं से भिन्न होते हैं। इनका निकास प्राणियों के प्रजनन तंत्र से जुड़े अंगों से ही हो सकता है, हर अंग से नहीं।

बारिश का मौसम मोर-मोरनी के लिए प्रजनन का समय है। वे एक दूसरे को आकर्षित करने के लिए अपने आप को विशेष रूप से प्रदर्शित करते हैं। मोर पंख फैलाकर नाचता है। इसके बाद मोर मोरनी के प्रजनन तंत्र में अपने शुक्राणु डालता है जिससे मोरनी के शरीर में अण्डाणु से मिलने पर निषेचित अण्डा बन जाता है। यह निषेचित अण्डा मोरनी के शरीर से बाहर आकर विकसित होता है। कई प्राणियों में मादा के शरीर में ही इन अण्डों का विकास होता है। उदाहरण के लिए मानव, कुत्ता और बंदर आदि। ये प्राणी बच्चे उत्पन्न करते हैं।

•••

बादल बिन बरसे कहाँ गायब हो जाते हैं?

बादलों का बरसना कई बातों पर निर्भर है। जल वाष्प, हवा में रहने वाले धूल कणों के चारों ओर इकट्ठे होकर बादल बनते हैं। बादलों के बरसने के लिए सबसे ज़रूरी बात यह है कि बादलों में उपस्थित पानी की बूँदें इकट्ठी होकर इतनी बड़ी हो जाएँ कि वे ऊपर रुक न पाएँ। बड़ी होने पर ही वे टपकने लगेंगी। यानी बारिश होने लगेगी

इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि जैसे-जैसे बूँद नीचे आए वह छोटी न होती जाए। यदि नीचे का ताप अधिक होगा तो बूँद गिरते-गिरते ही वाष्प में बदलकर उड़ जाएगी।

बूँद बड़ी होनी तब शुरू होती है जब बादल किसी कम ताप वाले स्थान पर पहुँचते हैं। यहाँ ठण्ड के कारण बादलों में उपस्थित वाष्प पानी बन जाता है। यह पानी धीरे-धीरे बूँदें बनाने लगता है। यह बूँदें और पानी के जुड़ने से बड़ी होती जाती हैं। यदि बादलों के नीचे की हवा भी नम है तो बरसात शुरू हो जाती है। पर जब बादल ऐसी जगह पहुँचते हैं जहाँ ताप अधिक है तो गरमी के कारण बादलों में उपस्थित पानी की छोटी-बड़ी बूँदें फिर से वाष्प बन जाती हैं। इस कारण धीरे-धीरे बादल छिटक जाते हैं।

इसके अलावा तेज़ हवा भी बादलों को उड़ाकर ले जाती है। तेज़ हवा के कारण वाष्प (पानी की बूँदों) के बादल एक जगह इकट्ठे नहीं हो पाते और हवा के साथ उड़ जाते हैं। ऐसा विशेष रूप से तब होता है जब हवा में नमी की मात्रा कम हो। ऐसी परिस्थिति में बादल में उपस्थित पानी की बूँदें भी धीरे-धीरे वाष्प में बदलकर उड़ जाती हैं। यानी बादल नदारद।



प्लास्टिक

किसका फायदा, किसका नुकसान

अरे यह क्या! रस्सी, जूते-चप्पल, खिलौने, बाल्टी, कुर्सी, प्लेट, चम्मच, निवाड़ सब प्लास्टिक के। तभी दूसरी ओर से आवाज़ आई रेडियो, टी. वी. , बोतल, बिजली के उपकरणों में भी प्लास्टिक। तभी तीसरी आवाज़ आई फिल्में (सभी प्रकार की) भी प्लास्टिक की। यदि इन आवाज़ों को सुनें तो लगेगा शायद ही कोई उद्योग-व्यवसाय, घर बचा होगा जिसमें प्लास्टिक महोदय किसी न किसी रूप में उपस्थित न हों। हाँ आश्चर्य ही तो है कि थोड़े से समय में प्लास्टिक जी हवा की तरह हमारे जीवन में चारों ओर शामिल हो गए। सम्भव है आने वाले समय में प्लास्टिक कोई और करिश्मा कर दिखाए।

प्लास्टिक की वजह से हमारे कई बहुमूल्य प्राकृतिक साधनों की बचत हुई है जो सीमित मात्रा में थे। इसके साथ-साथ ही बढ़ती हुई आबादी की ज़रूरतों को पूरा करने का प्रयास हो रहा है। पर यह क्या! इसके फायदे किसको मिल रहे हैं।

हमारे गाँव, कस्बों में कल तक जो परिवार निवाड़ बुन रहा था वह आज दूसरे कामों में रोजी-रोटी तलाश रहा है। मोची, लुहार, कसेरा, बढ़ई, बुनकर जैसे घरेलू कामगार धीरे-धीरे बेरोज़गार हो रहे हैं। जूट व नारियल की रस्सी का उद्योग भी प्लास्टिक से बचा नहीं। किसी भी कारण से जब हमारे घरेलू उद्योग-धंधे, कृषि आधारित उद्योग-धंधे खत्म होते हैं तो उसका असर मज़दूर, किसान, बुनकर, बढ़ई जैसे लाखों करोड़ों लोगों के रोज़गार को प्रभावित करता है।

हमें इस सवाल पर भी विचार करना चाहिए कि प्लास्टिक आधारित उद्योगों में क्या उन लोगों को रोज़गार मिला जिनके रोज़गार सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं? एक तरफ तो बड़े-बड़े कारखानों के मालिक अमीर होते जाएँ तो दूसरी ओर गाँव कस्बे के घरेलू उद्योग ठप्प पड़ते जाएँ, यह कैसा विज्ञान है?

जनवरी, 1988

प्लास्टिक के इतने उपयोग होने के बावजूद उसके नुकसान भी कम नहीं हैं। प्रकृति में एक से दूसरा पदार्थ बनता है लेकिन प्लास्टिक के साथ ऐसा नहीं है। यह खत्म नहीं होता। यानी प्रकृति इससे नया कुछ नहीं बना सकती। कल्पना करो कि अगले 100 वर्षों तक, प्लास्टिक और ऐसे ही न खत्म होने वाले पदार्थ पृथ्वी पर इकट्ठे होते रहें तो क्या होगा? इसके अलावा भी कुछ फायदे-नुकसान हैं तुम उनके बारे में सोचना ज़रूर। •••

गंदा या अशलील माना जाता है और इसके बारे में बात करने पर भी बंधन है। इसी कारण मादा के गर्भवती होने के कई अलैंगिक कारण बताए जाते हैं। मोरनी के बारे में भी यह इसी तरह की एक गलत धारणा है।

लैंगिक प्रजनन में मादा के शरीर में अंडाणुओं का निषेचन नर के शरीर में बने शुक्राणुओं द्वारा होना आवश्यक है। निषेचन के बाद ही सम्पूर्ण अण्डा बनता है। जिससे धीरे-धीरे नए प्राणी का विकास होता है। ये अण्डाणु और शुक्राणु प्राणियों के शरीर में उपस्थित विशेष अंगों में बनते हैं। ये दोनों सामान्य कोशिकाओं से भिन्न होते हैं। इनका निकास प्राणियों के प्रजनन तंत्र से जुड़े अंगों से ही हो सकता है, हर अंग से नहीं।

बारिश का मौसम मोर-मोरनी के लिए प्रजनन का समय है। वे एक दूसरे को आकर्षित करने के लिए अपने आप को विशेष रूप से प्रदर्शित करते हैं। मोर पंख फैलाकर नाचता है। इसके बाद मोर मोरनी के प्रजनन तंत्र में अपने शुक्राणु डालता है जिससे मोरनी के शरीर में अण्डाणु से मिलने पर निषेचित अण्डा बन जाता है। यह निषेचित अण्डा मोरनी के शरीर से बाहर आकर विकसित होता है। कई प्राणियों में मादा के शरीर में ही इन अण्डों का विकास होता है। उदाहरण के लिए मानव, कुत्ता और बंदर आदि। ये प्राणी बच्चे उत्पन्न करते हैं।

•••

बादल बिन बरसे कहाँ गायब हो जाते हैं?

बादलों का बरसना कई बातों पर निर्भर है। जल वाष्प, हवा में रहने वाले धूल कणों के चारों ओर इकट्ठे होकर बादल बनते हैं। बादलों के बरसने के लिए सबसे ज़रूरी बात यह है कि बादलों में उपस्थित पानी की बूँदें इकट्ठी होकर इतनी बड़ी हो जाएँ कि वे ऊपर रुक न पाएँ। बड़ी होने पर ही वे टपकने लगेंगी। यानी बारिश होने लगेगी।

इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि जैसे-जैसे बूँद नीचे आए वह छोटी न होती जाए। यदि नीचे का ताप अधिक होगा तो बूँद गिरते-गिरते ही वाष्प में बदलकर उड़ जाएगी।

बूँद बड़ी होनी तब शुरू होती है जब बादल किसी कम ताप वाले स्थान पर पहुँचते हैं। यहाँ ठण्ड के कारण बादलों में उपस्थित वाष्प पानी बन जाता है। यह पानी धीरे-धीरे बूँदें बनाने लगता है। यह बूँदें और पानी के जुड़ने से बड़ी होती जाती हैं। यदि बादलों के नीचे की हवा भी नम है तो बरसात शुरू हो जाती है। पर जब बादल ऐसी जगह पहुँचते हैं जहाँ ताप अधिक है तो गरमी के कारण बादलों में उपस्थित पानी की छोटी-बड़ी बूँदें फिर से वाष्प बन जाती हैं। इस कारण धीरे-धीरे बादल छिटक जाते हैं।

इसके अलावा तेज़ हवा भी बादलों को उड़ाकर ले जाती है। तेज़ हवा के कारण वाष्प (पानी की बूँदों) के बादल एक जगह इकट्ठे नहीं हो पाते और हवा के साथ उड़ जाते हैं। ऐसा विशेष रूप से तब होता है जब हवा में नमी की मात्रा कम हो। ऐसी परिस्थिति में बादल में उपस्थित पानी की बूँदें भी धीरे-धीरे वाष्प में बदलकर उड़ जाती हैं। यानी बादल नदारद।



प्लास्टिक

किसका फायदा, किसका नुकसान

अरे यह क्या! रस्सी, जूते-चप्पल, खिलौने, बाल्टी, कुर्सी, प्लेट, चम्मच, निवाड़ सब प्लास्टिक के। तभी दूसरी ओर से आवाज़ आई रेडियो, टी. वी. , बोतल, बिजली के उपकरणों में भी प्लास्टिक। तभी तीसरी आवाज़ आई फिल्में (सभी प्रकार की) भी प्लास्टिक की। यदि इन आवाज़ों को सुनें तो लगेगा शायद ही कोई उद्योग-व्यवसाय, घर बचा होगा जिसमें प्लास्टिक महोदय किसी न किसी रूप में उपस्थित न हों। हाँ आश्चर्य ही तो है कि थोड़े से समय में प्लास्टिक जी हवा की तरह हमारे जीवन में चारों ओर शामिल हो गए। सम्भव है आने वाले समय में प्लास्टिक कोई और करिश्मा कर दिखाए।

प्लास्टिक की वजह से हमारे कई बहुमूल्य प्राकृतिक साधनों की बचत हुई है जो सीमित मात्रा में थे। इसके साथ-साथ ही बढ़ती हुई आबादी की ज़रूरतों को पूरा करने का प्रयास हो रहा है। पर यह क्या! इसके फायदे किसको मिल रहे हैं।

हमारे गाँव, कस्बों में कल तक जो परिवार निवाड़ बुन रहा था वह आज दूसरे कामों में रोजी-रोटी तलाश रहा है। मोची, लुहार, कसेरा, बढ़ई, बुनकर जैसे घरेलू कामगार धीरे-धीरे बेरोज़गार हो रहे हैं। जूट व नारियल की रस्सी का उद्योग भी प्लास्टिक से बचा नहीं। किसी भी कारण से जब हमारे घरेलू उद्योग-धंधे, कृषि आधारित उद्योग-धंधे खत्म होते हैं तो उसका असर मज़दूर, किसान, बुनकर, बढ़ई जैसे लाखों करोड़ों लोगों के रोज़गार को प्रभावित करता है।

हमें इस सवाल पर भी विचार करना चाहिए कि प्लास्टिक आधारित उद्योगों में क्या उन लोगों को रोज़गार मिला जिनके रोज़गार सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं? एक तरफ तो बड़े-बड़े कारखानों के मालिक अमीर होते जाएँ तो दूसरी ओर गाँव कस्बे के घरेलू उद्योग ठप्प पड़ते जाएँ, यह कैसा विज्ञान है?

जनवरी, 1988

प्लास्टिक के इतने उपयोग होने के बावजूद उसके नुकसान भी कम नहीं हैं। प्रकृति में एक से दूसरा पदार्थ बनता है लेकिन प्लास्टिक के साथ ऐसा नहीं है। यह खत्म नहीं होता। यानी प्रकृति इससे नया कुछ नहीं बना सकती। कल्पना करो कि अगले 100 वर्षों तक, प्लास्टिक और ऐसे ही न खत्म होने वाले पदार्थ पृथ्वी पर इकट्ठे होते रहें तो क्या होगा? इसके अलावा भी कुछ फायदे-नुकसान हैं तुम उनके बारे में सोचना ज़रूर। ●●●

पुराने अंकों से



शिक्षा व्यवस्था का आधार है – स्कूल। आमतौर पर सोचा जाता है कि अच्छे स्कूल जैसे कॉन्वेंट, अंग्रेज़ी माध्यम स्कूल, नवोदय स्कूल इत्यादि जब फैलेंगे तो शिक्षा का स्तर सुधर जाएगा। और खुशहाली ही खुशहाली फैल जाएगी। यह सोच कितनी सही या गलत है? क्या स्कूल को समाज की अन्य व्यवस्थाओं से हट के या काट के देखा जा सकता है? ऐसा क्यों है कि सम्पन्न परिवारों के बच्चे ही अच्छी शिक्षा पाकर अच्छी नौकरियाँ हासिल करते हैं। दूसरी तरफ कामगार व किसानों के बच्चे या तो शिक्षा से दूर हो जाते हैं। या फिर उन्हें घटिया किस्म की शिक्षा मिलती है, जिससे उनका भविष्य भी एक तरह से तय ही हो जाता है। ये सब गम्भीर विचारणीय मुद्दे हैं।

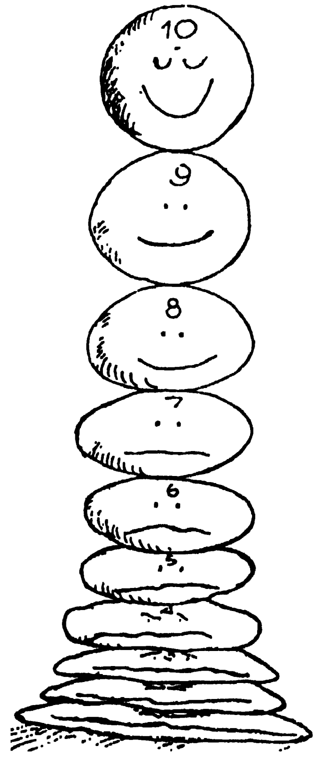
जिनेवा (स्विटज़रलैंड) स्थित 'इंस्टीट्यूट फॉर कल्चरल एक्शन' ने कई वर्ष पहले एक रोचक पुस्तक 'खतरा : स्कूल' प्रकाशित की थी। इस पुस्तक में स्कूली व्यवस्था का विश्लेषण चित्रों और सामान्य भाषा के माध्यम से किया गया है।

जहाँ नियम पहले से तय हैं . . . .



छात्र चुप बैठते हैं, सुनते हैं और आदेशों का पालन करते हैं।





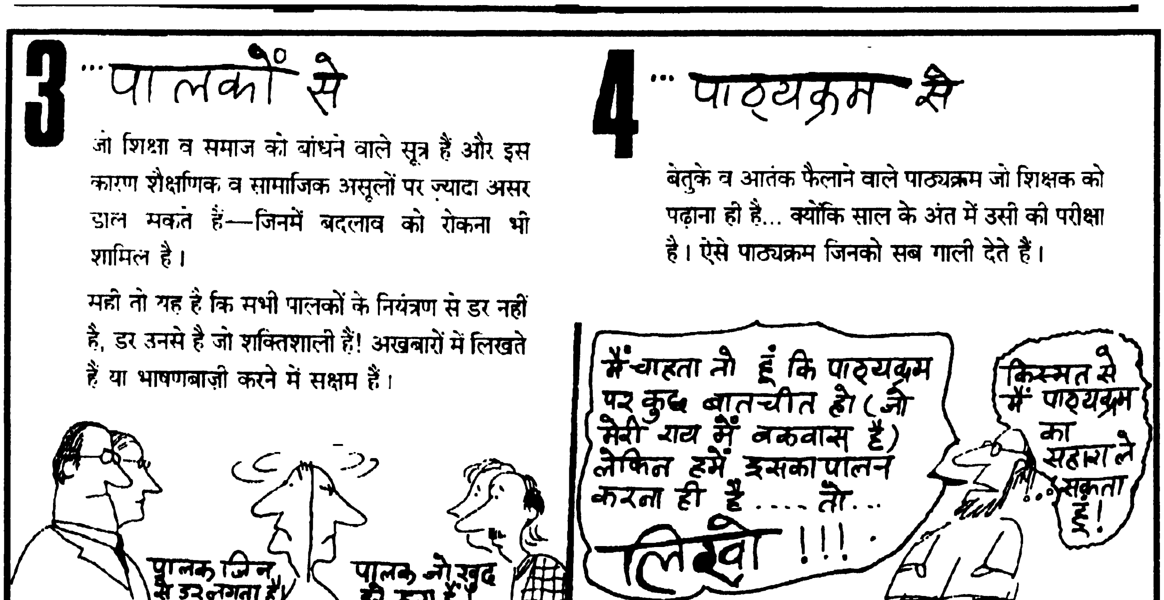
शिक्षक ही बोलता है,
जानता है, आदेश देता है,
तय करता है, फैसला करता है
और सज़ा देता है।

आखिर यह शिक्षक है क्या?

जैसा कि कुछ पालक समझते हैं, क्या यह बच्चों का भविष्य उज्जवल करने वाले शक्तिशाली प्रेरक हैं? या ये मात्र ऐसे पुर्जे हैं जो एक संस्था को ज़िंदा रखने का काम अदा करते हैं? सच्चाई यह है कि वे खुद उसी तरह की जंजीरों और तनावों से जकड़े हुए हैं जिनमें वे बच्चों को जकड़कर रखते हैं। इनमें से कई इस स्कूली व्यवस्था के समर्थक हैं और कभी-कभी उस दर्जे का काम भी करते हैं जिसकी स्कूल को उनसे अपेक्षा भी नहीं होती। बाकी नई दिशाओं व बदलाव के रास्ते खोज रहे हैं।

इन शिक्षकों को कितनी आज़ादी दी जाती है?



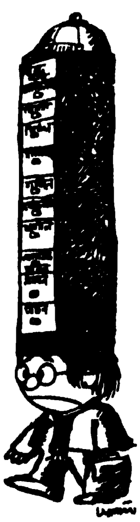


.... जहाँ स्वाभाविक इच्छाओं को कुचलना ही शिक्षा है।

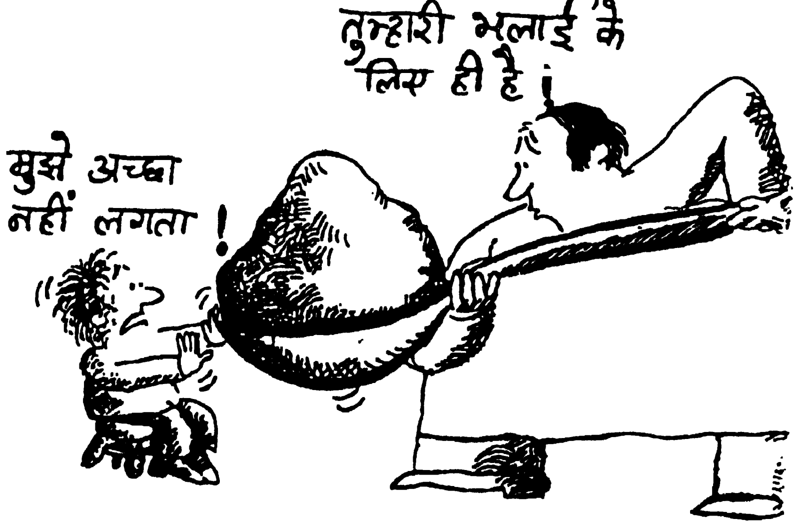


विषयों का बँटवारा और अहमियत पहले से ही तय है

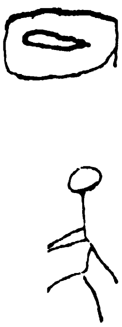








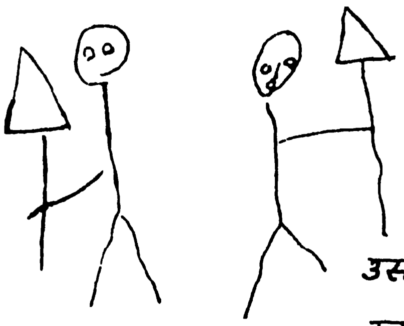
..... जो बच्चों की समझ से बाहर भी है और तुरंत उसका कोई फायदा भी नहीं दिखता।

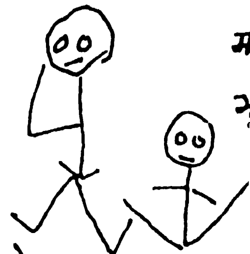


ईंट बनी है माटी से
जिस माटी के हैं हम



इशान के चित्र, दुनू की कविता

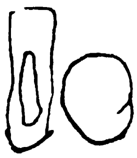




मालिक खा गये माटी को
भूख उसे हर दम

उसकी भूख मिटाने को
बन जाते हम गुलाम

दौड़े दौड़े भागे आये
किया शहर को सलाम



ऊँच नीच की टक्कर में
पिट गये हम पत्थर से ।

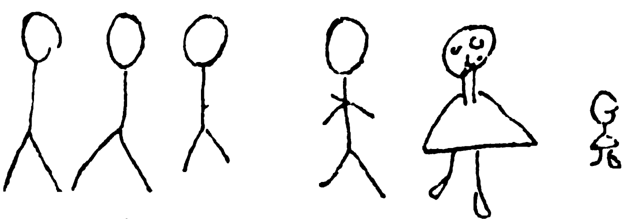


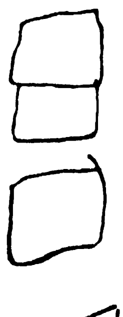


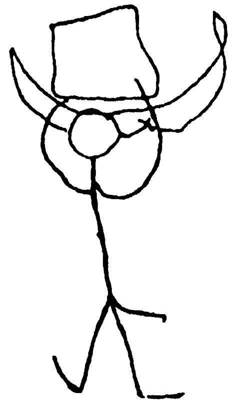
खेत गाँव छोड़ा हमने
नगर में काम है पाया



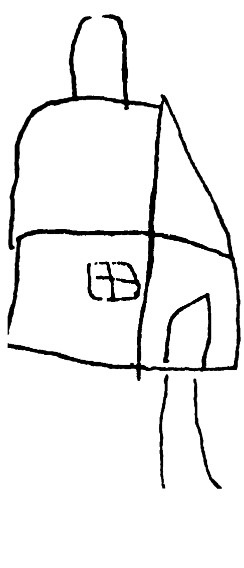
हम माटी के इंसानों ने
ईंट पर ईंट है बैठाया

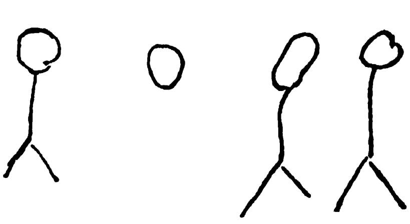




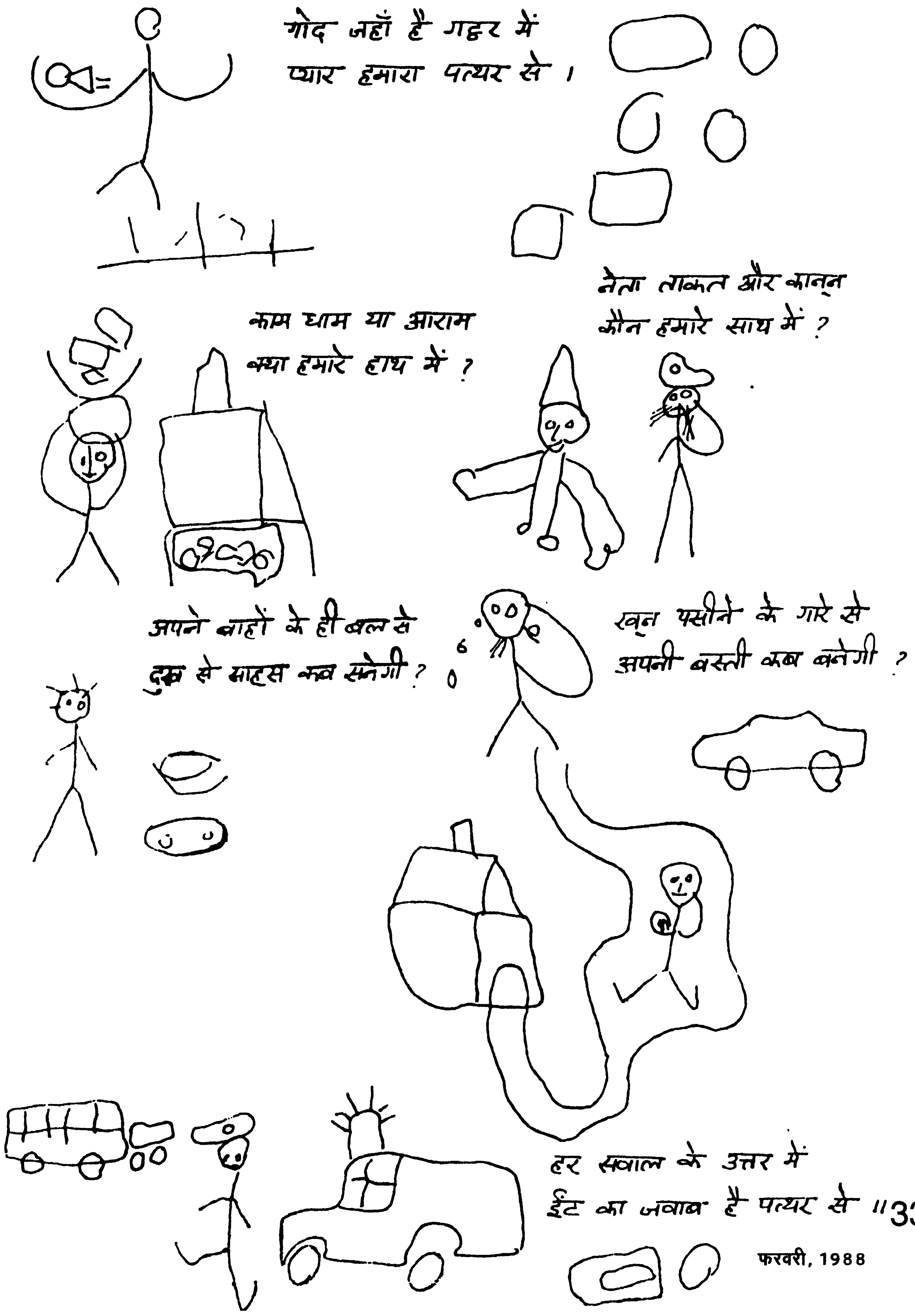


ये मेरे मज़दूर भाई
बहने और नन्हीं जानें





उजड़े घरों से आये हैं
मीनार महल बनाने


गोद जहाँ है गट्टर में
प्यार हमारा पत्थर से ।
काम धाम या आराम
क्या हमारे हाथ में ?
नेता ताकत और कानून
कौन हमारे साथ में ?
अपने बाहों के ही बल से
दुख से साहस कब सनेगी ?
खून पसीने के गारे से
अपनी बस्ती कब बनेगी ?
हर सवाल के उत्तर में
ईंट का जवाब है पत्थर से ॥

आलू मिर्ची चाय जी





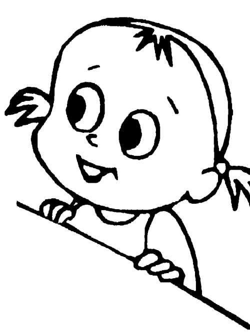
आलू , मिर्ची, चाय जी
कौन कहाँ से आए जी
सात समुंदर पार से
दुनिया के बाज़ार से
व्यापार से उपहार से
जंग-लड़ाई मार से
हर रस्ते से आए जी
आलू, मिर्ची, चाय जी
दक्षिण अमरीकी मिर्ची रानी
मसालों की हैं पटरानी
मूँगफली, आलू, अमरूद
धूम मचाते करते उछलकूद
साथ टमाटर आए जी
आलू, मिर्ची, चाय जी
भिंडी है अफ्रीका की
भूरी-भूरी कॉफी भी
नक्शे में यूरोप किधर
वहीं से आए गोभी-मटर
चाय असम की बाई जी
आलू, मिर्ची, चाय जी
चली चीन से सोयाबीन
पहुँची अमरीका बजाती बीन
धूम-धाम लौटी अपने देश
उसमें हैं गुण कई विशेष
रोब जमा कर आई जी
आलू, मिर्ची, चाय जी
बैंगन, मूली, सेम, करेला
आम, संतरा, बेर और केला
पालक, परवल, टिंडा, मैथी
हैं भाई बहन ये सब देशी
भारत की पैदाइश जी
कौन कहाँ से आए जी
आलू, मिर्ची, चाय जी

● राजेश उत्साही





क्यों-क्यों



सुबह मुनिया के हाथ पर छिपकली गिर पड़ी। वह अलगनी पर अपना बिस्तर टाँग रही थी। छिपकली वहीं कहीं चिपकी थी। जैसे ही छिपकली गिरी, मुनिया चीख पड़ी। माँ दौड़ी आई, "क्या हुआ?"

मुनिया बोली कुछ नहीं, दूर जाती छिपकली की ओर इशारा किया। माँ ने देखा, "अरे तेरे ऊपर गिरी क्या, कहाँ गिरी बता?"

मुनिया ने झट से मुंडी हिलाई 'ना' में और पीछा छुड़ाया। अगर माँ को पता चल जाता तो ऐसी कड़कती ठण्ड में बर्फ जैसे पानी से नहाना पड़ता। उसे पिछली बार की बात याद आ गई। तब छिपकली उसकी पीठ पर गिरी थी। माँ ने कहा था, "चल नहा ले, कोई बात नहीं। पीठ पर गिरना तो अच्छा होता है।"

पर क्या अच्छा हुआ था, उल्टे उस दिन उसकी पिटाई और हो गई थी।

तुम्हारे साथ ऐसा हुआ है कभी?

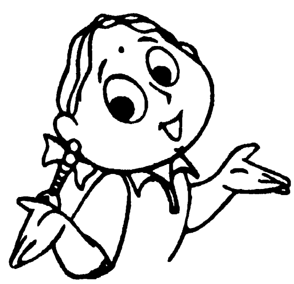
क्या होता है छिपकली गिरने से, और फिर नहाना क्यों ज़रूरी होता है?

अपने दोस्तों, गुरूजी, बुजुर्गों से पूछो। तुम्हारे जवाब हमें लिखना। और हाँ यह भी लिखना मत भूलना कि तुमने कैसे, किससे पता किया।

जनवरी 1991

जनवरी 1991 के अंक में प्रकाशित क्यों-क्यों के सवाल के जवाब में 40 पत्र आए हैं। अधिकाँश पत्रों में लिखा है कि छिपकली एक अछूत जीव है, इसलिए उसे छू लेने पर या उससे छू जाने पर शरीर अपवित्र हो जाता है। शरीर को शुद्ध करने के लिए ही नहाना ज़रूरी है साथ ही उसके शुभ-अशुभ प्रभाव की भी बात की गई है।

छूत-अछूत की बात या धारणा को विज्ञान नहीं मानता है, रही उसके शुभ-अशुभ के प्रभाव की बात तो वह एक संयोग मात्र होता है। छिपकली शरीर पर गिरे और उसी दिन कोई ऐसी घटना घट जाए जिससे लाभ या हानि हो। वास्तव में उसका छिपकली के गिरने से कोई सम्बंध नहीं है।



कुछ पत्रों में छिपकली के बारे में अन्य बातें कही गई हैं। जैसे छिपकली ज़हरीली होती है। उसकी बाह्य त्वचा पर हानिकारक कीटाणु पाए जाते हैं। छिपकली की लार में ज़हरीला पदार्थ होता है, जो किसी अन्य के सम्पर्क में आते ही बाहर निकलने लगता है, जिससे खुजली होने लगती है।

पुराने अंकों से

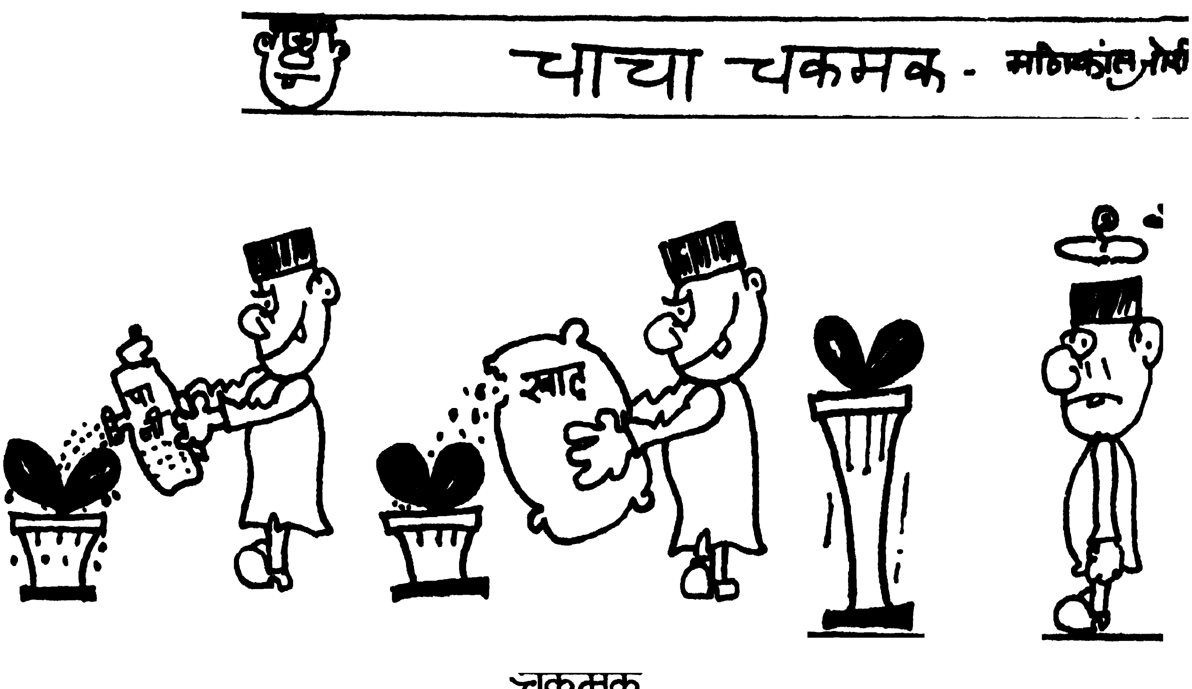
वास्तव में ये सब कपोल कल्पनाएँ हैं। छिपकली की 1900 ज्ञात जातियों में से केवल दो जातियाँ ही ऐसा पाई गई हैं जो ज़हरीली होती हैं। इनके मुँह के अन्दर विष ग्रंथि होती है और विष को शत्रु के शरीर में प्रवेश कराने के लिए दाँत भी। ये दोनों जातियाँ भारत में नहीं पाई जातीं। इनमें से एक उत्तरी अमेरिका के मध्य मेक्सिको से लेकर, मध्य अमेरिका तक मिलती है और दूसरी न्यू मेक्सिको और ऐरीजोना में।

घरों में पाई जाने वाली छिपकली की तीन सौ से अधिक प्रजातियाँ अभी तक देखने में आई हैं। ये मुख्यतः गर्म प्रदेशों में पाई जाती हैं। घर में पाई जाने वाली छिपकली ज़हरीली नहीं होती और न ही अन्य किसी रूप में इसके अन्य किसी अंग में ज़हर होता है। इसके काटने से भी नुकसान नहीं होता। इसके शरीर पर कोई रोगाणु नहीं पाए जाते। इनके पंजों की बनावट ऐसी होती है जिससे ये दीवार पर तथा छत पर चिपकी रहती हैं।

तुमने सुना होगा कि पकते हुए खाने में छिपकली गिर जाने से खाना ज़हरीला हो गया। और उसे खाने से कई लोग बीमार हो गए। ऐसा सिर्फ छिपकली ही नहीं अन्य किसी भी जीव जैसे चूहा, छछूंदर आदि के गिर जाने पर भी हो सकता है।

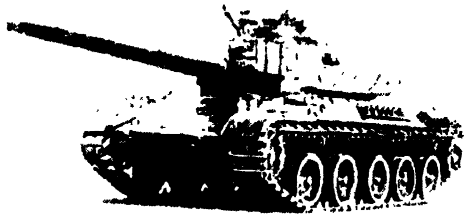
पूँछ छोड़कर भागना घर में पाई जाने वाली छिपकली का एक खास गुण है। ऐसा वह अपने शत्रु को चकमा देने के लिए करती है। उसकी पूँछ में हड्डी नहीं होती है। पर पूँछ भी वह अत्यंत संकट की घड़ी में ही छोड़ती है, जब बचने का कोई रास्ता न हो।

जुलाई, 1991



वह सोचता भी है

कप्तान
माना कि तुम्हारा टैंक
बहुत ताकतवर है
वह आदमियों को रौंद सकता है
हरे-भरे जंगल जला सकता है
पर उसमें एक ही कमी है
उसे एक ड्रायवर चाहिए।



कप्तान
माना कि तुम्हारा बांबर जहाज़
बहुत बलशाली है
उसकी चाल तूफान को भी
मात करती है
और वह हाथी बराबर का
वज़न उठा सकता है
पर उसमें भी एक कमज़ोरी है
उसे एक मिस्त्री की ज़रूरत है।



कप्तान
आदमी बहुत काम की चीज़ है
वह उड़ सकता है
और बंदूक से
गोली भी चला सकता है
पर उसमें एक ही गड़बड़ है
वह सोचता भी है।



बर्टोल्ड ब्रेख्त
(अंग्रेज़ी से अनूदित)
अक्टूबर 1985

पुराने अंकों से

आँखन देखी : ज़लाता की डायरी

यूरोप महाद्वीप का एक देश है - यूगोस्लाविया। किसी समय सर्बिया, क्रोएशिया, मोंटेनीग्रो, मेसेडोनिया और बोस्निया हर्जेगोविना इसके प्रान्त थे। लेकिन धीरे-धीरे इनमें से अधिकाँश प्रान्त अलग होकर स्वतंत्र राष्ट्र बनते गए। बोस्निया हर्जेगोविना भी इस समय एक स्वतंत्र राष्ट्र है।

बोस्निया में मुख्य रूप से सर्ब, क्रोएट और मुसलमान रहते हैं। यूगोस्लाविया से अलग होने के कुछ समय बाद से ही बोस्निया में गृहयुद्ध छिड़ गया। यह अभी भी जारी है। इस गृहयुद्ध में लाखों लोग या तो मारे गए हैं या फिर घायल हुए हैं और लाखों बेघर-बार हैं।

इसी बोस्निया का एक शहर है - सराइवो। यह शहर कभी बहुत सुन्दर रहा होगा, अब तो खण्डहर जैसा है। इसी सराइवो में एक लड़की रहती थी - ज़लाता फिल्पोविच। ज़लाता ने वहाँ हुई तबाही अपनी आँखों से देखी है। उसने जो कुछ देखा और महसूस किया, वह अपनी डायरी में लिखा है। ज़लाता ने अपनी ग्यारहवीं सालगिरह से कुछ पहले यह डायरी लिखनी शुरू की थी। डायरी लिखने की प्रेरणा उसे सम्भवतः ऐन फ्रैंक से मिली।

ऐन एक यहूदी लड़की थी। उसने द्वितीय विश्व युद्ध की विभिषिका को न केवल अपनी आँखों से देखा था, बल्कि जुल्मों को सहा भी था। और अन्ततः इसमें उसकी जान चली गई थी। ऐन ने अपने अनुभवों की ज़िक्र अपनी डायरी में किया था। जिसे उसकी मौत के बाद उसके पिता ने प्रकाशित करवाया था।

ज़लाता की डायरी सबसे पहले 1993 में फ्रांस में छपी थी। ज़लाता और उसके माता-पिता अब फ्रांस में रहते हैं। ज़लाता की डायरी कई अन्य भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी है।

इस अंक में ज़लाता की डायरी के कुछ पन्ने छाप रहे हैं। ये हमने एक लघु पत्रिका 'शेष' (सम्पादक - हसन जमाल) के आठवें अंक से साभार लिए हैं। शेष जोधपुर, राजस्थान से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका की लिपी देवनागरी है लेकिन भाषा उर्दू है।

1945 में जापान के हिरोशिमा शहर पर पहला बम गिराया गया था। उससे जो विनाश हुआ उसके दुष्परिणाम मानव जाति आज तक भुगत रही है। बोस्निया और दुनिया के तमाम हिस्सों में आज जो कुछ हो रहा है उसे आने वाली न जाने कितनी पीढ़ियों को भुगतना होगा।

आखिर क्यों। आखिर कब तक चलता रहेगा यह? क्यों मानव ही मानव का दुश्मन बना हुआ है? ज़लाता की डायरी ऐसे कई सवाल हमारे सामने उठाती है।

अगस्त 1995

इतिहास के पन्नों को पलटते हुए ऐसी कितनी ही घटनाएँ सामने आती हैं जिनमें विनाश की कहानियाँ हैं। और आज की स्थिति पर नज़र डालें तो ऐसी घटनाएँ बढ़ती हुई नज़र आती हैं। क्यों हो रहा है यह सब? इस पर ज़रूर सोचना।

5 गुरुवार
मार्च 1992

ओह मेरे खुदा! सराइवो में जंग के शोले भड़कने लगे हैं। इतवार एक मार्च को हथियारों से लैस शहरियों के एक टोले ने (टी.वी. पर यही बताया गया है) एक सर्ब बराती को मार डाला और शादी कराने वाले पादरी को ज़ख्मी कर दिया। सोमवार दो मार्च को सारे शहर में जगह-जगह मोर्चे और नाके बन गए। कोई एक हज़ार के लगभग। हमारे घर में रोटी तक न थी। आख़िर शाम छह बजे लोग तंग आकर घरों से निकल आए। जुलूस बड़े गिरजा से शुरू हुआ। संसद की इमारत के सामने से गुज़रा और सारे शहर में घूमा-फिरा। मार्शल टीटो बेरक्स के क़रीब बहुत से लोग गोलियों से घायल हुए। लोग तराने गाते और 'बोस्निया, बोस्निया! सराइवो, सराइवो!' के नारे लगाते थे। वे यह भी बुलंद आवाज़ में कहते थे - 'हम एक साथ रहेंगे! आओ हमारे साथ मिल जाओ। सराइवो रेडियो के डायरेक्टर ने रेडियो पर कहा कि इतिहास का नया अध्याय शुरू होने को है।

तक़रीबन आठ बजे रात हमने एक ट्राम की घण्टी की आवाज़ सुनी। उस दिन की पहली ट्राम शहर से गुज़रकर आई थी और ज़िन्दगी मामूल पर आ गई। लोग गलियों-बाज़ारों में निकल आए, इस उम्मीद के साथ कि ऐसा ख़ूनख़राबा फिर कभी सराइवो में नहीं होगा। हम भी अम्न के जुलूस में शामिल हुए। घर आकर हम चैन-सुकून की नींद सोए। दूसरे रोज़ सब कुछ पहले की तरह था। वही क्लास रूम, संगीत की क्लास। मगर शाम को यह ख़बर आई कि तीन हज़ार चेतनिक (सर्ब क़ौमपरस्त) पाले की तरफ से सराइवो पर धावा बोलने बढ़े आ रहे हैं और पहले बाशचार्शिया पर हमला करेंगे। मौसी मलीचा ने बताया कि उनके घर के आगे नए मोर्चे बना दिए गए हैं और वे लोग रात को अपने घर नहीं सोएँगे क्योंकि सख़्त ख़तरा है। मौसी मलीचा और उनके घरवाले चचा नज़ाद के घर सोए। बाद में टी.वी. पर बाक़ायदा चख-चख सुनी गई। रादोवान (सर्बों का नेता) और इलिया इज़्ज़त बेगोविच (बोस्निया का राष्ट्रपति) ने ख़बरनामे में फ़ोन किया और आपस में बहस में उलझ पड़े। फिर गोरान मेलिच (समाचार पढ़ने वाला) को गुस्सा आ गया और उसके समझाने-बुझाने पर वे दोनों किसी जनरल कोकामियाच से मिलने पर राज़ी हो गए। मेलिच ज़बरदस्त है। वाक़ई ग्रेट! शाबाश!

चार मार्च बुध के रोज़ मोर्चे और नाके हटा लिए गए। लड़के (राजनीति करने वालों का सम्बोधन) किसी आपसी समझौते पर रज़ामंद हो गए हैं। अच्छी बात!

उस दिन हमारी आर्ट की टीचर हमारी क्लास टीचर के लिए एक तस्वीर लेकर आई। जो

आठ मार्च वाले "महिला दिवस" पर क्लास रूम में टाँगी जाएगी। हमने यह तोहफ़ा अपनी क्लास टीचर को दिया तो उन्होंने हमें घर जाने को कहा। इसका मतलब यह हुआ कि अभी गड़बड़ है और ख़तरा नहीं टला। हम सब पर दहशत छा गई। लड़कियाँ रोने-चीख़ने लगीं और लड़के चुपचाप अपनी आँखें झपकने लगे। अब्बा भी उस दिन जल्द ही काम से लौट आए। लेकिन सब कुछ ठीकठाक रहा। ख़्वाहमख़्वाह का शोरशराबा!

24 मंगलवार
मार्च 1992

सराइवो में अब कोई अशान्ति नहीं। मगर दूसरे शहरों में काफ़ी ख़ून-ख़राबा हो रहा है। बोसानिस्की, ब्रोद, मोदरिचा, हर तरफ़ से हौलनाक ख़बरें और तस्वीरें आ रही हैं। अब्बा-अम्मी ख़बरों के वक़्त मुझे टी.वी. देखने से मना करते हैं। मगर बच्चों से इन सब भयानक चीज़ों को कैसे छिपाया जा सकता है जो चारों तरफ़ हो रही हैं। लोग फिर सहमे-सहमे और उदास हैं। नीले हेलमेटों, बल्कि नीली बेरट टोपियों वाले सराइवो में आ गए हैं। हम अब खुद को ज़्यादा सुरक्षित महसूस करने लगे हैं। "लड़के" मंज़र से पीछे हट गए हैं।

अब्बा मुझे संयुक्त राष्ट्र संघ अम्न फ़ौज कमाण्ड की इमारत में ले गए। उन्होंने कहा कि अब जब कि सराइवो में नीला झंडा लहरा रहा है, हम बेहतर हालात की उम्मीद कर सकते हैं।

30 सोमवार
मार्च 1992

अरी मेरी डायरी, जानती भी हो, मैं क्या सोच रही हूँ? ऐन फ्रैंक अपनी डायरी को "किटी" कहा करती थी मैं भी शायद तुम्हारा कोई अच्छा-सा नाम रख सकूँ, कोई भला-सा नाम.... क्या रखूँगी तुम्हारा नाम? स्फोलेतिना पिद्ज़ामिता, शफ़ीका, हिकमता, शिवाला, मेमी या कोई और?

मैं सोच रही हूँ, सोच रही हूँ।

ठीक है, मैंने फ़ैसला कर लिया है। मैं तुम्हें अब से बुलाया करूँगी- मेमी। हाँ तो प्यारी मेमी। अब तक़रीबन आधा साल हो चुका है। हम सब अपनी परीक्षा की तैयारी में मसरूफ़ हैं और दिन-रात पढ़ रहे हैं। कल शायद हमें स्कंदरिया हॉल में एक संगीत सभा में जाना है। मगर

हमारी टीचर कहती हैं कि हम वहाँ न जाएँ। क्योंकि वहाँ दस हज़ार लोग यानी दस हज़ार बच्चे होंगे और हो सकता है कि कोई हमको फिरौती के लिए उड़ा ले जाए। या हॉल में बम रख दे। अम्मी भी कहती हैं कि मैं हरगिज़-हरगिज़ न जाऊँ। इसलिए मैं नहीं जाऊँगी।

अरे मेमी, तुम जानती हो, भला यूगोस्लाविया के गीतों की प्रतियोगिता में कौन जीता - एक्सतरानीला। अगली बात तुम्हें बताने से डरती हूँ। ख़ाला मलीचा कहती हैं कि उन्होंने इतवार दो दिसम्बर को नाई की दुकान पर यह बात सुनी थी 'बोम, बोम, धूँ धूँ सराइवो' यानी वे लोग सराइवो पर गोलीबारी करने वाले हैं। बहुत-बहुत प्यार, मेरी मेमी!

6 **सोमवार**
अप्रैल *1992*

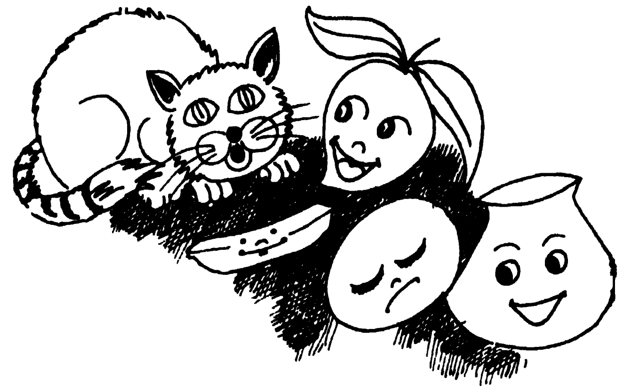
कल संसद भवन के सामने खड़े लोगों ने वरबानिया के पुल से गुज़रने की कोशिश की तो उन पर किसी ने गोलियाँ चलाईं। किसने? क्यों कर? क्यों? डुब्रोविंक के मेडिकल कॉलेज की एक छात्रा मारी गई। उसका ख़ून पुल पर छलक आया। अपने आख़िरी वक़्त में उसने सिर्फ़ ये शब्द कहे 'क्या यह सराइवो है? हौलनाक-हौलनाक-हौलनाक।'

यहाँ कोई शख़्स, कोई चीज़ अब सामान्य नहीं है। बाशचार्शिया को तबाह कर दिया गया है। पाले से आने वाले शरीफ़ज़ादों ने हमारे बाशचार्शिया पर गोले फेंके। कल से लोग बोस्निया के संसद भवन के अन्दर बैठे हैं। कुछ लोग इमारत के सामने खड़े हैं। हम अपने टी.वी. सेट को सोने के कमरे में ले आए हैं। यह टी.वी. मेरा है। मैं इस पर चैनल नम्बर एक के प्रोग्राम देखती हूँ और एम टी.वी. के गाने अब्बा-अम्मी के टी.वी. पर। अब वे हॉलीडे-इन की तरफ से गोलियाँ चला रहे हैं। संसद के सामने खड़े लोग हलाक और ज़ख्मी हो रहे हैं।

शायद हम तहख़ाने में चले जाएँ। हाँ मेमी, तुम मेरे साथ जाओगी। मैं बेआस, डरी हुई हूँ। संसद के सामने खड़े लोग भी बेआस, डरे हुए हैं। प्यारी मेमी, जंग आख़िर हम तक आ पहुँची। अम्न। अब अम्न आ जाना चाहिए।

सुना है, वे अब सराइवो के रेडियो और टी.वी. पर हमला करने वाले हैं। मगर अब तक उन्होंने किया नहीं। हमारे पड़ौस में गोलियाँ चलनी बन्द हो गई हैं। थपको ज़लाता थपको ज़लाता (मैं अच्छे नसीब के लिए लकड़ी को थपक रही हूँ।) ओह! मेरे ख़ुदा! गोली तो कहीं आसपास से गुज़री है। वे फिर गोलियाँ चला रहे हैं। ज़लाता।

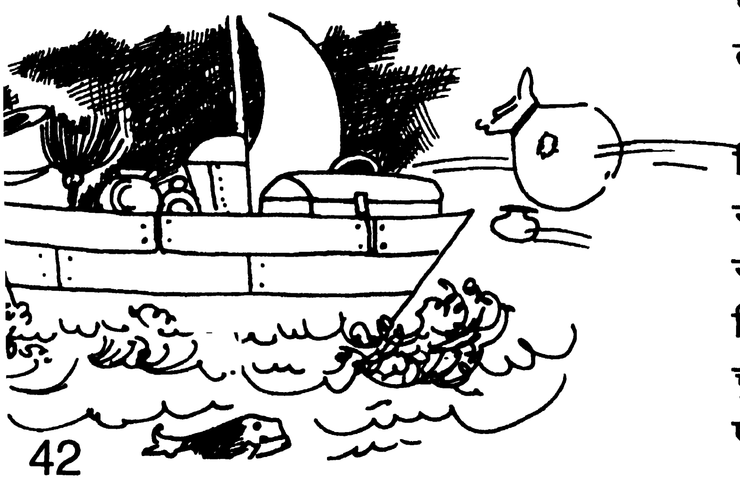
नानी की नाव



नाव चली
नानी की नाव चली
नीना की नानी की नाव चली
लम्बे सफर पे
आओ चलो
भागो चलो
जागो चलो
आओ आओ

ये कैसे चले
लाओ पैसे चले
खड़े हो जाओ
तीन तीन की लाइन में
खड़े हो जाओ
पहले वो तीन
फिर दूसरे तीन
फिर वो तीन

अब शुरू करें
एक दो तीन नाव चली
नानी की नाव चली
नीना की नानी की नाव चली
लम्बे सफर पे



सामान घर से निकाले गए
नानी के घर से निकाले गए
इधर से उधर से निकाले गए
और नानी की नाव में डाले गए

एक छड़ी – एक घड़ी
एक झाड़ू– एक लाडू
एक संदूक – एक बंदूक
एक सलवार – एक तलवार
एक घोड़े की जीन – एक ढोलक एक बीन
एक घोड़े की नाल – एक ढीमर का जाल
एक लहसुन एक आलू – एक तोता एक भालू
एक डोरा एक डोरी – एक बोरा एक बोरी
एक डण्डा एक झण्डा – एक हण्डा एक अण्डा
एक केला एक आम – एक पक्का एक कच्चा
टोकरी में एक बिल्ली का बच्चा

फिर एक मगर ने पीछा किया
नानी की नाव का पीछा किया
नीना की नानी की नाव का पीछा किया
फिर क्या हुआ?
चुपके से पीछे से – ऊपर से नीचे से
एक-एक सामान खेंच लिया

एक बिल्ली का बच्चा
एक केला एक आम – एक कच्चा एक पक्का
एक हण्डा एक अण्डा – एक झण्डा एक डण्डा
एक बोरा एक बोरी – एक डोरा एक डोरी
एक तोता एक भालू – एक लहसुन एक आलू
एक ढीमर का जाल – एक घोड़े की नाल
एक ढोलक एक बीन – एक घोड़े की जीन
एक तलवार – एक सलवार
एक बंदूक – एक संदूक
एक लाडू – एक झाडू
एक घड़ी – एक छ . . . .ड़ी



मगर नानी क्या कर रही थी?
नानी थी बेचारी बुड्ढी बहरी
नीना की नानी थी बुड्ढी बहरी
नानी की नींद थी इ . .त . नी गहरी
इ . . . . त . . . नी गहरी
कि . . . . त्ती गहरी?



नदिया से गहरी दिन दोपहरी
रात की रानी ठण्डा पानी
गरम मसाला पेट में डाला
साढ़े सोला पंद्रह एका पंद्रह
दूना तीस तिया पचहत्तर
छक्के नब्बे साती पचलन
आठी बीसन नवम पैंतीस
गले में र . . . . रस्सा।

हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय
चित्र: धनंजय
अप्रैल, 1991

अख्तर के अब्बा कौन?

अख्तर गणित में तेज है और रेडियो भी ठीक कर लेता है। उसके दोस्त उस पर नाज़ करते हैं और कई चीज़ें देखने या सीखने के लिए उसके पीछे पड़े रहते हैं। उन्होंने नई टीचर को बताया है कि अख्तर यह सब करतब घर पर ही सीख लेता है, क्योंकि वह एक इंजीनियर का बेटा है। एक दिन अचानक नई टीचर की मुलाकात अख्तर के अब्बा से कचहरी में हो गई और उन्हें पता चला कि वे एक बड़े वकील हैं। टीचर कुछ चक्कर में पड़ गई, अख्तर के दोस्त उसे इंजीनियर का बेटा कह रहे थे, पर उसके पिता तो वकील हैं। यह कैसे?

क्यों तुम भी चक्कर में पड़ गए? भई बात ही कुछ ऐसी है। इंजीनियर अख्तर के पिता नहीं, माँ हैं। अब यह सोचने की बात है। कि अख्तर के अब्बा से मिलकर टीचर चक्कर में क्यों पड़ गई? सच्चाई यह है कि केवल टीचर ही नहीं, और भी कई लोग क्षण भर के लिए चक्कर में पड़ जाएँगे। तुम चाहो तो आज़मा कर देख लो। पर ऐसा क्यों होता है? यह क्यों नहीं होता कि लोगों के ध्यान में झट से यह आए कि अख्तर की माँ इंजीनियर हैं।

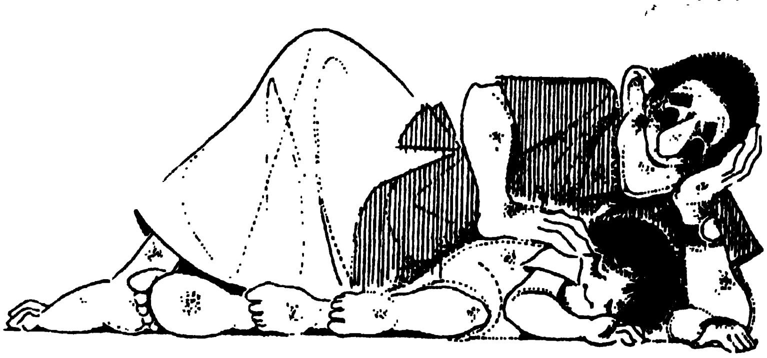
शुरू में जब अख्तर का परिचय मिलता है तो हम सभी क्यों अपने-अपने दिमाग में यह छवि बना लेते हैं कि इंजीनियर तो उसके पिता ही होंगे। ऐसा क्यों?

यह हो सकता है कि इंजीनियर ज़्यादातर पुरुष ही होते हैं, इसलिए हमारे दिमाग में इंजीनियर की छवि पुरुष के रूप में ही बनती है। जैसे जब कोई नर्स कहता है तो हमेशा महिला की छवि सामने आती है। वैसे अन्य देशों में पुरुष भी नर्स होते हैं, पर हमारे यहाँ आमतौर पर महिलाएँ ही नर्स होती हैं।

खैर यह तो हम जानते हैं कि इंजीनियरों में महिलाओं की तादाद कम है। पर ऐसा क्यों है? क्या महिलाओं में इंजीनियर बनने की क्षमता नहीं है? अवसर और अनुकूल माहौल मिलने पर महिलाएँ इंजीनियर भी बनती हैं, वैज्ञानिक, वकील या डॉक्टर भी। कई ऐसे काम कर रही हैं जो सदियों से पुरुषों तक ही सीमित थे। तुम बता सकते हो कि कुछ कामों के उदाहरण? हाँ, यह ज़रूर है कि ऐसे कामों में महिलाओं की संख्या अभी कम है। पर क्यों?

सही अवसर दरअसल लड़की को शुरू से ही नहीं मिलते। उसकी तो पैदाइश पर ही लोग अफसोस मनाते हैं। जबकि लड़का जन्मे तो दूर-दूर तक बधाईयाँ गूँजती हैं। जन्म से जो भेदभाव शुरू होता है, जीवन भर लड़की का पीछा नहीं छोड़ता।

अनेक घरों में खाने की पौष्टिक और बढ़िया चीज़ों, जैसे दूध या फल पर लड़कों का अधिकार पहले होता है। लड़की और उसकी माँ के लिए तो बचाखुचा खाना ही होता है। लड़की को स्कूल भेजना भी उतना ज़रूरी नहीं समझा जाता, जितना लड़के को।



हाँजी हाँजी नाजी ना

कमला भसीन



तुम कपड़े पहनते हो?
हाँजी हाँजी हाँजी हाँ।
तुम कपड़े धोते भी होगे?
नाजी नाजी नाजी ना
कपड़ों की हाँ, धोने की ना
ऐसे कैसे चले जहाँ?



तुम खाना खाते हो?
हाँजी हाँजी हाँजी हाँ
तुम खाना पकाते भी हो?
नाजी नाजी नाजी ना
खाने की हाँ पकाने की ना
ऐसे कैसे चले जहाँ?



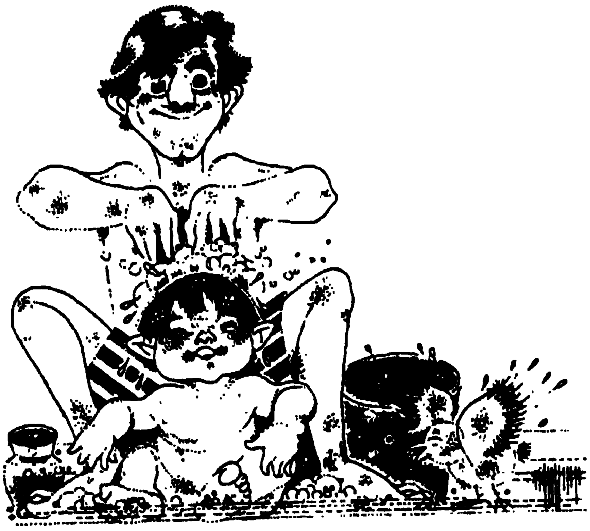
तुम गंदा करते हो?
हाँजी हाँजी हाँजी हाँ
तुम सफाई भी करते हो?
नाजी नाजी नाजी ना
गंदे की हाँ, सफाई की ना
ऐसे कैसे चले जहाँ?

चित्र : मिकी पटेल

और यदि लड़की स्कूल गई भी तो कुछ कक्षाओं के बाद उसकी पढ़ाई समाप्त कर दी जाती है। फिर या तो वह ब्याह दी जाती है या फिर घर के काम में इतनी फँसा दी जाती है कि पढ़ाई उसे निरर्थक लगने लगती है। उसे लगने लगता है उसका पहला काम तो घर सम्भालना है।

घर के काम में बेशक कोई बुराई नहीं, वह तो करना ही है। पर यदि घर के ये काम लड़के और लड़की दोनों मिलकर करें, तो फिर लड़की को वह मौके भी मिल सकें जो केवल लड़कों को मिल पाते हैं, जैसे घर के बाहर खेलकूद करना, स्कूल जाना, अन्य लोगों से मिलना, अपनी हिम्मत बढ़ाना आदि।

तुममें से भी कितनी लड़कियाँ ऐसी होंगी जिन्हें छुटपन से ही घर के कामों में माँ का हाथ बँटाना पड़ा है, घर के और कामों की ज़िम्मेदारी उठानी



पड़ी है। जबकि तुम्हारे भाईयों को अधिक आज़ादी मिली है। खेलकूद और मस्ती करने के लिए अधिक समय और पढ़ाई के लिए अधिक व अनुकूल अवसर भी मिले हैं।

यदि बचपन से ही लड़की और लड़कों को एक-सा पालें, एक-से अवसर दें, दोनों को सभी कामों से, समस्याओं से जूझना सिखाएँ तो लड़कियाँ भी सभी तरह की भूमिका निभाने में सक्षम होंगी। पर आज अधिकतर घरों में स्थिति ऐसी नहीं है। लड़के से कहा जाता है, ''लड़कियों की तरह मत रो, तू तो बड़ा बहादुर है।'' लड़कियों को जोखिम वाले कामों से, बिजली से, कीड़ों से, अंधेरे से, और तमाम ऐसी चीज़ों से जिनमें एक डर होता है दूर ही रखा जाता है। यदि शुरू से ही उसको भी इन चीज़ों से लड़कों की ही तरह जूझने, उलझने दिया जाए तो पिछड़ने का कोई कारण नहीं।

खैर इन सभी विज्ञान और इंजीनियरिंग पढ़ने वाली महिलाओं में से अख्तर की माँ भी एक है। पर उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखने का न केवल अवसर मिला, बल्कि माहौल भी, तभी वे अपनी ट्रेनिंग पूरी करके नौकरी कर सकीं। ब्याह भी हुआ, अख्तर और उसकी नन्हीं बहन सबीहा भी पैदा हुई, पर उन्होंने अपनी नौकरी नहीं छोड़ी। अख्तर के अब्बा वकील है। बहुत व्यस्त रहते हैं। पर घर का काम भी करते हैं। खाना पकाना, कपड़े या बर्तन धोना, बच्चों को तैयार करना, जैसे हर काम में उनकी भागीदारी रहती है। अख्तर भी घर के सभी काम सीख रहा है ताकि आगे चलकर वह भी अब्बा जैसी भूमिका निभा सके।

● अनीता रामपाल
दिसम्बर 1990





मुर्गा और सियार



एक था मुर्गा और एक था सियार। एक बार दोनों में दोस्ती हो गई। दोनों ने बेर का एक-एक पेड़ सम्भाला। मुर्गा अपने पेड़ को रोज़ पानी देता, लेकिन सियार बेर के पेड़ को पानी तो देता नहीं था, उल्टे हमेशा उस पर पेशाब करता रहता था। सियार का पेड़ बिल्कुल सूख गया और मुर्गे के पेड़ में बढ़िया मीठे बेर लगे।

सियार ने कहा, 'मुर्गे भैया, मुर्गे भैया! मुझे भी दो न!'

मुर्गे ने जवाब दिया, 'मैं तुमको बेर नहीं दूँगा।'

यह कहकर मुर्गे ने सियार पर बेर की गुठलियाँ मारीं। उस समय तो गुस्सा पीकर सियार वहाँ से चला गया। बाद में एक दिन, जब मुर्गा बेर के पेड़ के पास नहीं था, सियार वहाँ पहुँचा, और उसके पेड़ के बेर खा गया।

मुर्गे ने आकर सियार से पूछा, 'मेरे पेड़ के बेर तुमने क्यों खाए?'

सियार बोला, 'हाँ खाए, खाए खाए! और अगर तुम ज़्यादा बोलोगे, तो मैं तुमको भी खा जाऊँगा।' यह कहकर सियार ने मुर्गे को दबोच लिया और वह उसे फौरन चट कर गया।

इसके बाद सियार रौब दिखाता हुए आगे बढ़ा। रास्ते में उसको एक बुढ़िया मिली। सियार ने बुढ़िया से कहा, 'माँ जी, माँ जी! मुझे थोड़ा गोबर दो।'

बुढ़िया बोली, 'चल, चल, चल अपना रास्ता पकड़। ज़्यादा बोलेगा, तो अपनी इस गेंडरी से ऐसा मारूँगी कि तेरा सिर फट जाएगा।'

सियार ने कहा, 'माँ जी!
सेरों खाए कच्चे बेर।
सेरों खाए पक्के बेर।
खाया है एक मुर्गा।
और अब तुमको भी खाऊँगा।'

यह कहकर सियार तो बुढ़िया को खा गया। फिर तो सियार मोटा-ताज़ा होकर रौब के साथ आगे बढ़ा। रास्ते में सियार को एक किसान मिला। सियार ने किसान से कहा, 'किसान, किसान! मुझे पानी पिला।'

किसान बोला, 'मुझे फुरसत नहीं है। तुम अपने रास्ते चले जाओ, नहीं तो अपने पैने से मैं ऐसा मारूँगा कि तुम यहीं ढेर हो जाओगे।'

सियार ने कहा,
'सेरों खाए कच्चे बेर।
सेरों खाए पक्के बेर।
खाया है एक मुर्गा।
खाई है एक बुढ़िया।
और अब तुमको भी खाऊँगा।'

ऐसा कहकर सियार ने अपना मुँह खोला और वह उस किसान को भी खा गया। वहाँ से सियार चमारों की बस्ती में पहुँचा। उसने एक चमार से कहा, 'चमार, चमार! मुझे एक हड्डी दो।

चमार बोला, ' यह हड्डी लो और अपने रास्ते जाओ।

कुछ दूर जाने के बाद सियार हड्डी खाने बैठा। हड्डी उसके गले में अटक गई। और वह मर गया। जब चमार को सियार के मरने की खबर मिली, तो उसने सियार का पेटा चीरा। चीरते ही पेट में से ढेरों बेर, कुकुडुक्कूं करता हुआ मुर्गा, एक बुढ़िया और किसान निकल आए।

फिर तो सब अपने-अपने घर चले गए और सबने खा-पीकर मौज की।

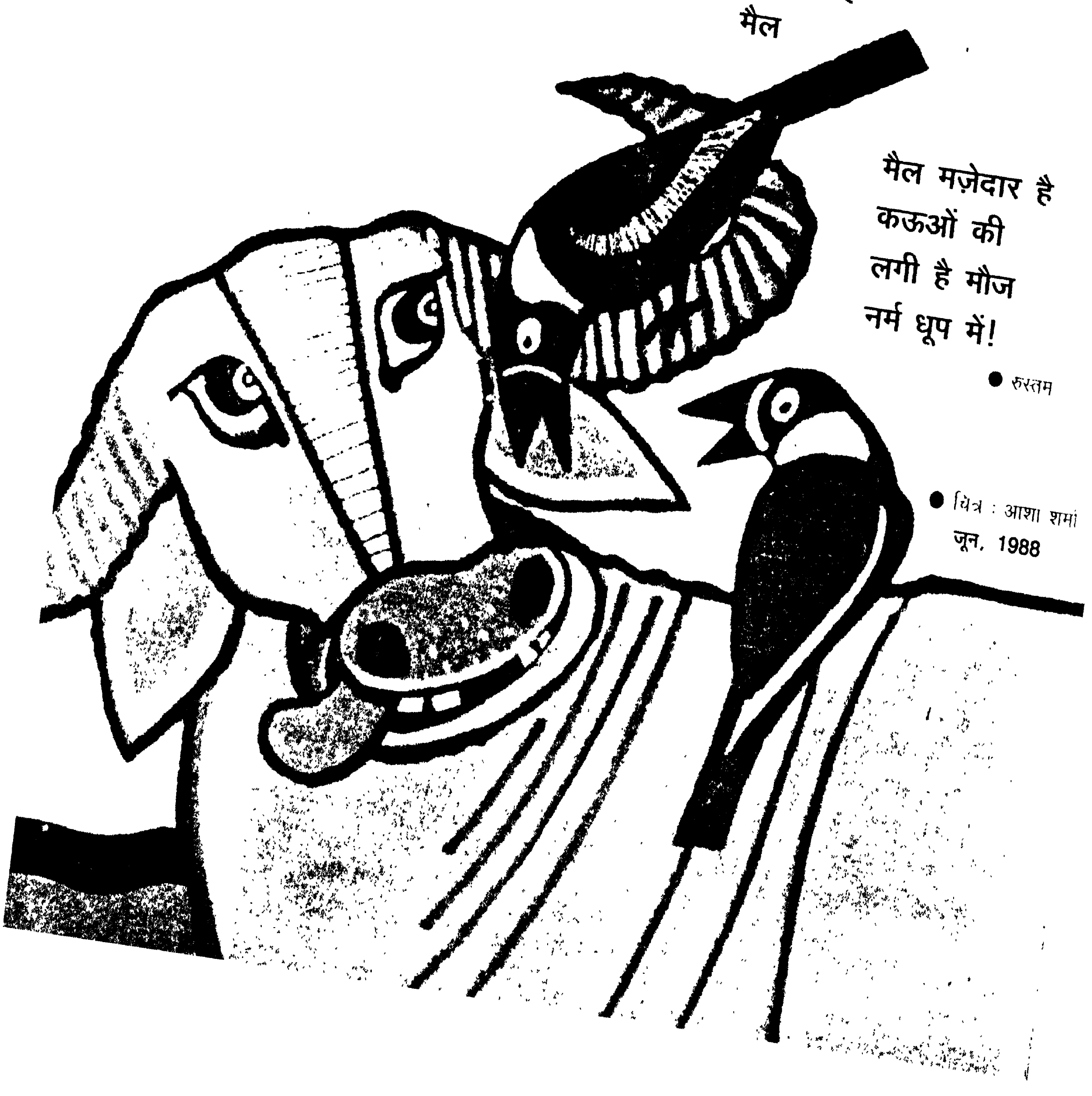
सस्ता साहित्य द्वारा प्रकाशित गिजुभाई की
बालकथाएँ से साभार।
मूल गुजराती से अनुवाद काशिनाथ त्रिवेदी।
मार्च, 1988



नर्म धूप में

आँख मींचे
धूप में
जुगाली कर रही है
भैंस

दो कऊए
उसके कानों से
चुन रहे हैं
मैल



मैल मज़ेदार है
कऊओं की
लगी है मौज
नर्म धूप में!

● रुस्तम

● चित्र : आशा शर्मा

जून, 1988

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

200 वें अंक में

बड़े होने पर बच्चों को एक दिन घोंसला छोड़ आज़ादी से उड़ना है, पर अभी तो उनके पंख छोटे और कमज़ोर थे। स्वतंत्र रूप से अकेले ही उड़ जाने की बात सोचना उनके लिए कुछ मुश्किल था। इसलिए कुट्टू का गायब हो जाना उनके लिए अफसोस के साथ हैरानी की बात भी थी।
कहानी ''कुट्टू कहाँ गया?'' – पेज 14 से



प्राकृतिक रूप से लड़के-लड़कियाँ बराबर-बराबर पैदा होते हैं। मगर आजकल देखने में आ रहा है कि लड़के ज़्यादा पैदा हो रहे हैं और लड़कियाँ कम। तो क्या प्रकृति में कुछ बदलाव आ गया है?
पढ़ो लेख – क्या दुनिया में बच्चे बहुत ज़्यादा है? – पेज 9 से



काली कोयल

कोयल काली होती है,
मीठा गीत सुनाती है।
पर दिखाई नहीं देती है,
शायद किसी से डरती है।
अपने मीठे स्वर के मोह में
हमको मोह लेती है।
छोटे-छोटे पैरों वाली
छोटे-छोटे पंखों वाली
नाच-नाचकर खुशी मनाती
अपने स्वर में है मतवाली।

हाथ न किसी के आने वाली,
ऊँचे गगन में उड़ने वाली।
प्यारी-प्यारी काली-काली,
हमको नाच नचाने वाली।
जब मिल जाए काले कौआ,
कोयल कर ले उनसे तौबा।
चुप होकर वह चल देती है,
आगे बढ़कर हँस लेती है।
कोयल प्यारी कोयल
कोयल प्यारी कोयल।

दिनेश मांडवी, आमूपुरा, होशंगाबाद, म. प्र.

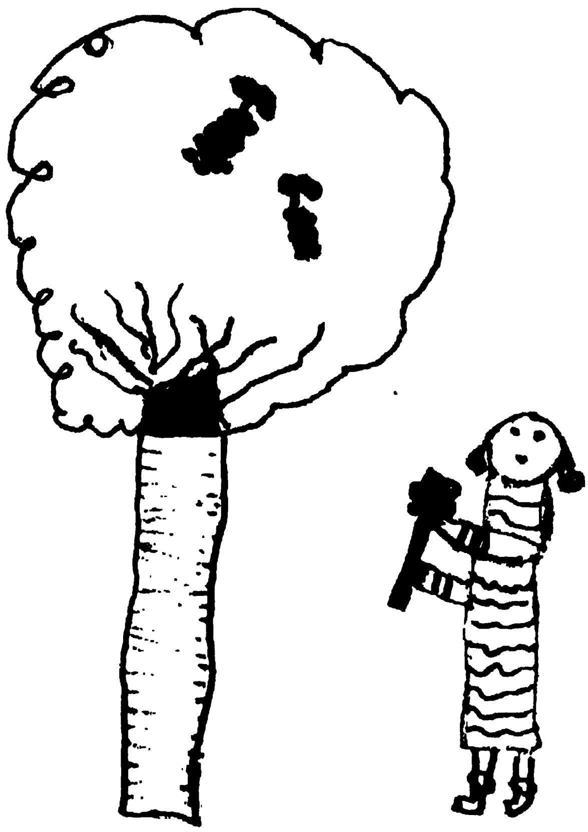


रुकमणी यादव, चौथी, मड़देवरा, छतरपुर, म. प्र.

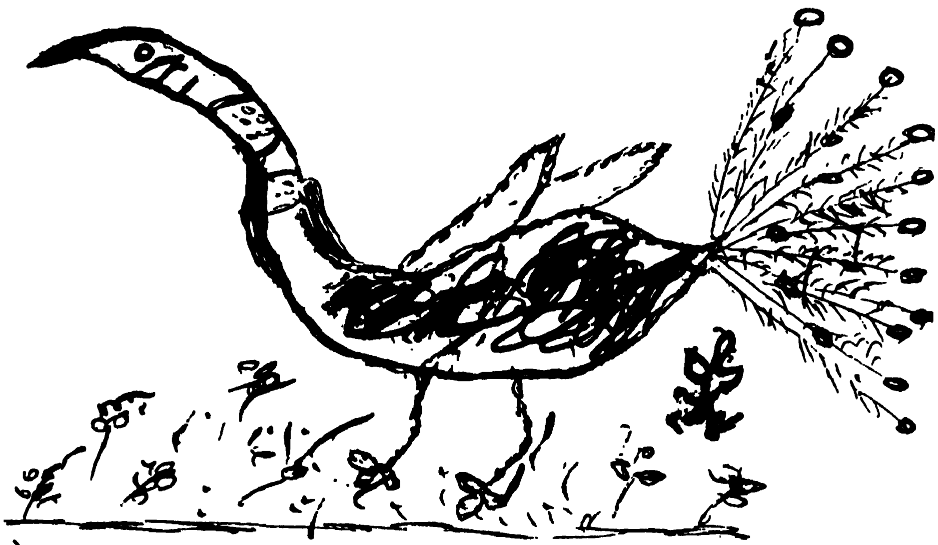
बादल जी अब घर को जाते

बरसात का जब मौसम आता
बादल अकड़कर बाहर आता
फिर बरसाता वर्षा भारी
नाच नाचकर मोरनी हारी
बादल जब आता है भाई
समुन्दर में फिर लहर उठाई
बादल में छिप गया सूरज
कहने लगा न अब आऊँगा सचमुच
आ गया ठण्डी का मौसम
फिर निकलकर आया सूरज
कभी दिखता कभी न दिखता
हमसे छुप्पा-छुप्पी खेलता
आ गया गर्मी का मौसम
अब पूरा दिखता है सूरज
गर्मी में हम मर-मर जाते
बादल जी अब घर को जाते।

● अंजली चौधरी, पिपरिया, होशंगाबाद, म. प्र



। रजनी, तीसरी, भोपाल, म. प्र.



। रमेश आठिया, चौथी, मड़देवरा, छतरपुर, म. प्र.



मेरे दादा जी प्यारे

मेरे दादा जी इतने प्यारे हैं
सारे जगत में मुझे न्यारे हैं

मेरे दादा जी प्यारे हैं।
मेरे दादा जी हैं तो बड़े

लेकिन मुझे लगते हैं छोटे
मेरे दादा जी प्यारे हैं।

वह मुझे निराश नहीं करते हैं
बस मेरे साथ ही खेलते रहते हैं।

मेरे दादा जी प्यारे हैं।
उनके सिर पर बाल नहीं

लेकिन है उनकी चाल सही।
मेरे दादा जी प्यारे हैं।

● पलाश शर्मा, पाँचवीं, नोएडा, उ. प्र.

मेरी अच्छी टीचर

मेरी टीचर बहुत अच्छी हैं। वह हम सबको बहुत प्यार करती हैं। और सबसे ज्यादा मुझे। मेरी टीचर कभी कुछ गलती करते हैं तो हमको डाँटती हैं और हम इसमें बुरा नहीं मानते। क्योंकि हमको लगता है कि हमारी गलती है। मेरी टीचर हम सबको पिकनिक पर ले जाती हैं। और हम सब वहाँ पर खेलते हैं। बहुत मस्ती करते हैं। हम सबको वहाँ पर टीचर भी बहुत खिलाती है। मेरी टीचर हमको शनिवार के दिन खेल खिलाती हैं। मेरी टीचर बहुत अच्छी है। मुझे अपनी टीचर पर बहुत गर्व है।

● मोनिका, देवास, म. प्र.

फूल

देखो देखो फूल लगा,
कितना सुन्दर फूल लगा
फूल की डाली कत्थई है,
फूल की पत्ती हरी है।
फूल का गमला लाल है,
गमले की मिट्टी काली है।
जब-जब हवा चलती है,
फूल की डाली हिलती है।

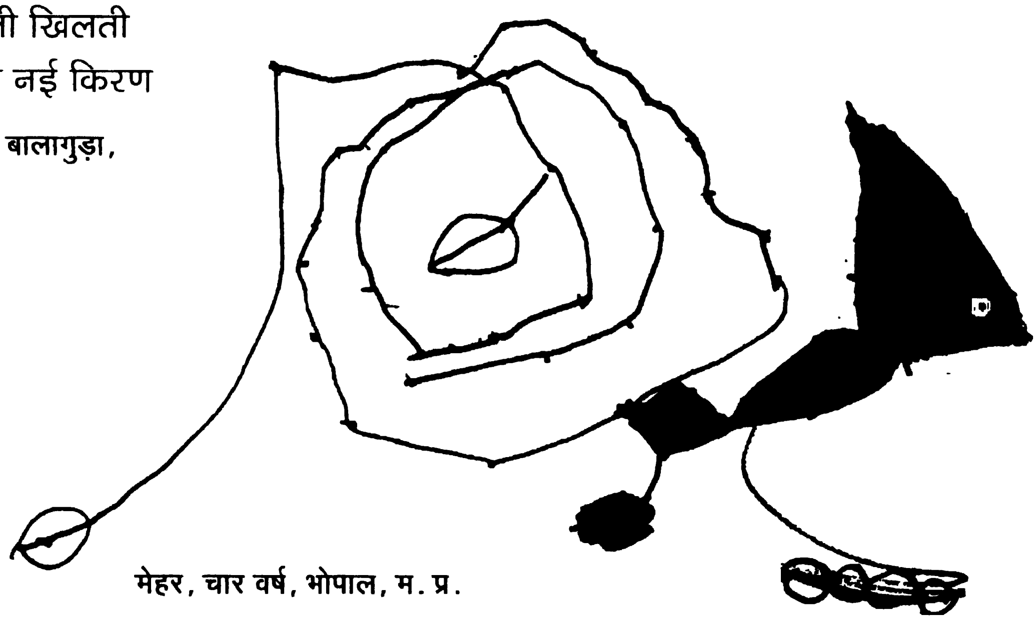
● सिद्धिबाला दुबे, दूसरी, शा. पूर्व प्रा. प्रशिक्षण संस्था जबलपुर, म. प्र.



एक नई किरण

रेशम जैसी हँसती खिलती
नभ से आई एक नई किरण
फल फूल के साथ लाई
मीठी खुशियाँ
एक नई किरण
पड़ी ओस की कुछ बूँदें
झिलमिल झिलमिल पत्तों पर
उनमें आकर, दिया जलाकर
ज्यों मुस्काई एक नई किरण
रेशम जैसी हँसती खिलती
नभ से आई एक नई किरण

● मधु शर्मा, छठवीं, बालागुड़ा, मंदसौर, म. प्र.



मेहर, चार वर्ष, भोपाल, म. प्र.

मेरा तोता

एक बार की बात है मैं खेल रहा था। तभी वहाँ पर एक तोता आ गिरा। मैंने उसे उठा लिया। वह बहुत घायल था। मैंने उसे दवा लगाई वह पालतू बन गया। फिर कुछ दिनों बाद वह मर गया। मैं बहुत रोया मैंने उसका फोटो खींच लिया था। अब वह फोटो भी मेरे पास नहीं है। मैं जब भी उसका फोटो देखता तो बहुत रोता था। तभी मेरे पापा ने उस फोटो को किसी को दे दिया। अब मैं किसी जानवर को नहीं पालता। अगर उसे भी कुछ हो जाए तो मैं सहन नहीं कर पाऊँगा।

● इमरोज मुस्तफा शेख, देवास, म. प्र.



गुजरात के बड़ौदा शहर के निज़ामपुरा के न्यू एरा सीनियर सेकेण्डरी स्कूल से बच्चों की रचनाएँ हमें मिलीं। ये सभी तीसरी कक्षा में पढ़ते हैं। सभी ने अच्छा प्रयास किया है। उनमें से कुछ रचनाएँ हम यहाँ दे रहे हैं।

पहली दोस्ती

मेरा पहला दोस्त था विक्रम। वह मेरा बेस्ट फ्रेंड है। वह मुझे बहुत मदद करता था। मैं भी उसकी मदद करता था। एक दिन हम बिछड़ गए पर यह दोस्ती हम अभी भी नहीं भूले।

● कुणाल

बगीचा और तितली

मैं बगीचे में जाती हूँ
खेल कूदकर आती हूँ
बगीचे में तितली आती है
खेल-कूदकर जाती है।
मैं जब घर जाती हूँ तब
मेरे पीछे वह आ जाती है
मैं जब पूछूँ क्यों आई तुम
डरकर वह भाग जाती है।

● अदिति जैन

जब पापा ने मुझे मारा

एक दिन मैं अपने कमरे में खेल रहा था। अचानक मेरी नज़र कैंची पर पड़ी। मैं झट से कैंची लेकर खेलने लगा। फिर अचानक मैंने अपने बाल काट लिए। तभी मेरे पापा आ गए। उनको पता चल गया कि मैंने अपने बाल काटे। उन्होंने एक हेंगर से जोर से मुझे मारा। अगले दिन मेरे दोस्त मुझसे पूछ रहे थे कि तुम्हारे पैर में लाल-लाल क्या है? मैंने उन्हें पूरी कहानी सुना दी। वे हँसने लगे।

निखिल नायर

झूठा भूत

एक बार मैं खेलने गई तो मेरी नई दोस्त बनी। दो चार दिन हो गए खेलते-खेलते। उसके बाद वाले दिन खेलकर मैं घर लौट रही थी। तो अंधेरा छाने लगा। तब कुछ आवाज़ें आने लगीं। डर के मारे मैं भाग निकली। तब मैंने पीछे मुड़कर देखा तो मेरे पीछे भूत था। फिर मैंने एक डंडा उठा लिया और करने लगी उसकी धुलाई उस भूत ने मुझसे कहा कि मैं तुम्हारी नई दोस्त संध्या हूँ। मैंने तुम्हें इसलिए डराया क्योंकि आज अप्रैल फूल है। मैं और संध्या जोर-जोर से हँसने लगे।

● जूही मल्लीक

पहला दिन स्कूल में

जब मैं पहली बार स्कूल गई तब मैं थोड़ी डर गई। मेरे शिक्षक ने मुझे सबसे मिलाया।

शिक्षक ने कहा, ''यह धारा है।''

जब रीसेस हुई तब मुझे एक लड़की मिली। उसका नाम था श्रेया। वह बहुत अच्छी और सयानी लड़की थी। मैं बोली, ''मेरा नाम धारा है।''

वह बोली, ''मेरा नाम श्रेया है।''

हम दोनों अच्छे दोस्त बन गए। जब छुट्टी हुई तो मुझे श्रेया ने अपने दोस्तों से मिलवाया। उसने कहा, ''यह जूही है, यह डिम्पी है और यह दिव्या है।''

उसके बाद श्रेया ने मुझसे पूछा, ''तुम्हें कौन लेने आने वाला है?''

मैंने कहा, ''मेरे पापा लेने आने वाले हैं।''

मेरे पापा आए और मैं चली आई। सचमुच वह मेरा सबसे अच्छा दिन था।

● **धारा शाह**



मेरी मम्मी

मेरी मम्मी सबसे प्यारी
मेरी मम्मी लगती न्यारी
गुस्से में आकर मुझे डाँटती
कभी-कभी वह प्यार भी करती
भूख लगे तो खाना देती
प्यास लगे तो पानी देती
जब मैं सो जाता थककर
रजाई उढ़ाती मुझको आकर
मेरी शरारत सहन वह करती
छोटी चोट लगे तो वह डरती
दिनभर उसे परेशान मैं करता
मम्मी से प्यार बहुत करता हूँ।

● **नमन महाजन**

भरतनाट्यम

मैं भरतनाट्यम सीखती हूँ। मुझे भरतनाट्यम करना अच्छा लगता है। हमें कुरता और पाजामा पहनना होता है। हमें लाल कलर की ओढ़नी बाँधनी होती है। भरतनाट्यम सीखने में सात वर्ष लगते हैं। भरतनाट्यम करके मैं बहुत थक जाती हूँ पर मैं भरतनाट्यम छोड़ूँगी नहीं।

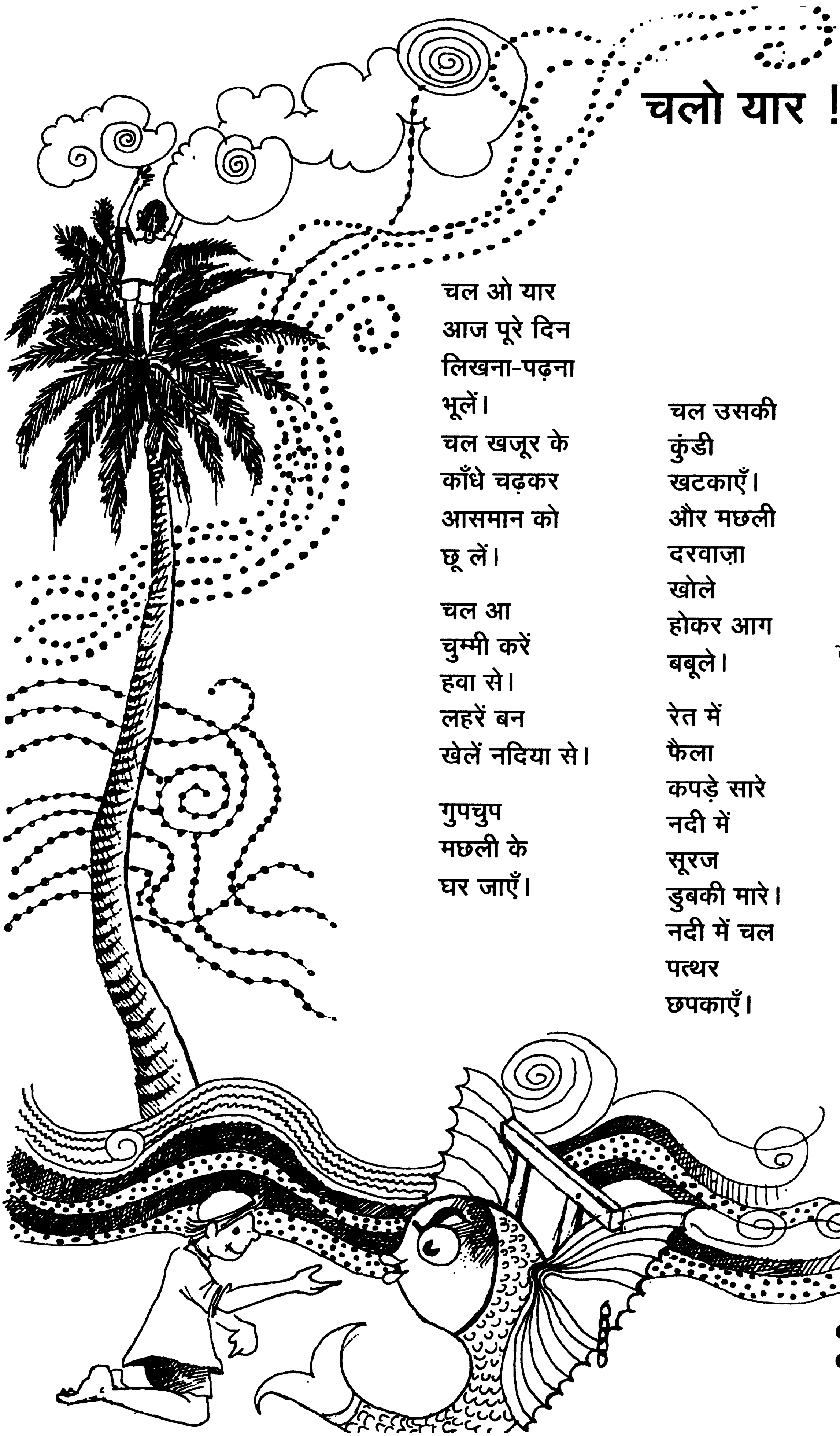
खजन देसाई

पेड़

पेड़ हमारा दोस्त है
वह हमें छाया देता है
शुद्ध हवा भी हमें देता है
पेड़ रबर और पेपर देता है।
पेड़ हमें फल भी देता है
उसको कभी न काटना
हर रोज़ तुम एक
नया पौधा लगाना।

● **कृति माहेश्वरी**

चलो यार !



चल ओ यार
आज पूरे दिन
लिखना-पढ़ना
भूलें।
चल खजूर के
काँधे चढ़कर
आसमान को
छू लें।

चल आ
चुम्मी करें
हवा से।
लहरें बन
खेलें नदिया से।

गुपचुप
मछली के
घर जाएँ।
चल उसकी
कुंडी
खटकाएँ।
और मछली
दरवाज़ा
खोले
होकर आग
बबूले।

रेत में
फैला
कपड़े सारे
नदी में
सूरज
डुबकी मारे।
नदी में चल
पत्थर
छपकाएँ।
सूरज को
जी भर
घबराएँ।
रोज़ शाम
बरगद के नीचे
दादा
नदी नहाना
भूलें।

चल चंदा से
करें
ठिठोली
बनकर
तारों के
हमजोली।
पकड़के फिर
उँगली
तारों की
आसमान में
झूलें।

● सुशील शुक्ल
● चित्र : धनंजय

क्या दुनिया में बच्चे बहुत ज़्यादा हैं?

सुशील जोशी



कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि दुनिया में बहुत ज़्यादा बच्चे पैदा होते हैं, इतने नहीं होने चाहिए। मुझे पता नहीं तुम्हारा क्या विचार है इस बारे में पर मुझे तो बात कुछ ठीक-ठाक नहीं लगती। मगर पहले यह तो देखें कि ये कुछ लोग ऐसी ऊटपटाँग बात मानते क्यों हैं।

इन लोगों को लगता है कि पृथ्वी पर ज़मीन तो सीमित है और उस पर जितना अनाज उगाया जाता है उसकी मात्रा भी सीमित है। यदि ज़्यादा बच्चे होंगे तो फिर अनाज कम पड़ जाएगा। उनके हिसाब से तो यह गणित का सरल सा सवाल है। यही बात वे हर चीज़ के बारे में कहते हैं। जैसे वे यह भी कहते हैं कि यदि बच्चे बहुत ज़्यादा होंगे तो स्कूल कम पड़ जाएँगे, अस्पताल कम पड़ जाएँगे, मकान कम पड़ जाएँगे। उनका तो यह भी कहना है कि आज कई लोगों को भरपेट दोनों टाइम खाना नहीं मिलता तो इसका कारण यही है कि लोग ज़्यादा हैं और खाना कम।

मगर मुझे यह बात पचती नहीं। मैंने अखबारों में पढ़ा था (शायद तुमने भी पढ़ा होगा) कि भारत में आजकल इतना अनाज पैदा होता है कि हम दूसरे देशों को अनाज बेचते हैं। हमारे यहाँ अनाज के बड़े-बड़े गोदाम हैं। मगर जितना अनाज पैदा होता है, उसे रखने के लिए जगह नहीं है। जब इतना अनाज है तो लोग फिर भी क्यों भूखे सो जाते हैं? तुम्हारा क्या विचार है?

परन्तु समस्या तो यह है कि इन लोगों के विचार आजकल बहुत माने जाते हैं। तो सवाल यह है कि ये लोग हमें क्या सलाह देते हैं। इनकी सलाह है कि बच्चे कम होना चाहिए। यानी ये कहते हैं कि प्रत्येक परिवार में कम बच्चे पैदा हों। कितने कम? ये लोग कहते हैं कि प्रत्येक परिवार में दो ही बच्चे हों। कैसे? इसके लिए इन्होंने कई तरीके खोज निकाले हैं ताकि लोग अपने बच्चों की पैदावार को जब चाहे रोक सकें।

यहाँ तक तो ठीक ही मानना पड़ेगा। मैं भी तुम्हें सलाह दे सकता हूँ कि रोज एक आम

खाया करो। इसमें तो कुछ गलत नहीं है। मगर यदि मैं ज़बर्दस्ती करने लगूँ तो? बच्चों की पैदाइश रोकने के समर्थक लोग सिर्फ सलाह देकर रुकते नहीं। वे तो नाना प्रकार की ज़बर्दस्ती करने लगते हैं। जैसे वे कहेंगे कि जिस परिवार में दो से ज़्यादा बच्चे हुए, उन्हें राशन की दुकान से अनाज नहीं मिलेगा। अब भला सोचो, वह परिवार पहले गरीब है। ऊपर से उसे राशन की दुकान से अनाज भी न दिया जाए तो उसकी क्या हालत होगी? इस तरह के कई कानून बनते जा रहे हैं और गोदामों में अनाज पड़ा सड़ रहा है।

यह देखने में आता है कि भारत में जितने बच्चे पैदा होते हैं वे सारे जीवित नहीं रह पाते। कितने दुख की बात है ना कि साधारण दस्त, टायफाइड, खसरा जैसी बीमारियों से हमारे देश में हर साल लाखों बच्चे मर जाते हैं जबकि इन सब बीमारियों का इलाज हमारे पास है। यह भी देखने में आया है कि देश के आधे बच्चे कुपोषित हैं – यानी उन्हें जितना खाना मिलना चाहिए उतना नहीं मिलता। अब यदि किसी परिवार की इच्छा हो कि उसके दो बच्चे जवान हो पाएँ, तो क्या सिर्फ दो बच्चे पैदा होने से काम चल जाएगा?



जब ये लोग ज़्यादा बच्चों के बारे में बात करते हैं तो एक बात भूल जाते हैं। कई देश ऐसे हैं जहाँ के लोग बहुत ज़्यादा खाते हैं। वे ज़्यादा खाते भी हैं और हर चीज़ उन्हें ज़्यादा चाहिए। हमारे यहाँ के 10 लोग मिलकर जितना खाएँगे, उतना खाना तो कई देशों में एक आदमी खा जाएगा। अब हमारे लोग ज़्यादा हुए, या वहाँ?

बच्चों के बारे में एक बात और है। सामान्य रूप से देखें तो लड़के-लड़कियाँ बराबर पैदा होते हैं। मगर हमारे देश में जब गिनती की गई तो पता चला कि पुरुष तो ज़्यादा हैं और स्त्रियाँ कम। पूरे भारत में पुरुष और स्त्रियों की संख्या देखें तो लगभग 100 पुरुषों और 93 स्त्रियों का अनुपात बैठता है। सवाल यह है कि जब दोनों बराबर-बराबर पैदा होते हैं तो स्त्रियाँ कम कैसे हो गईं? पता चलता है कि बचपन में लड़कों की तुलना में लड़कियाँ ज़्यादा मरती हैं। क्यों भला? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम उन्हें बचाने की पूरी कोशिश नहीं करते? या कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्हें खाना-वाना ठीक से नहीं मिलता और वे ज़्यादा कमज़ोर हो जाती हैं? और क्या कारण हो सकते हैं?



मगर पिछले दसेक साल से एक और बात सामने आ रही है। मैंने ऊपर कहा था कि प्राकृतिक रूप से लड़के-लड़कियाँ बराबर-बराबर पैदा होते हैं। मगर आजकल देखने में आ रहा है कि लड़के ज़्यादा पैदा हो रहे हैं और लड़कियाँ कम। तो क्या प्रकृति में कुछ बदलाव आ गया है?

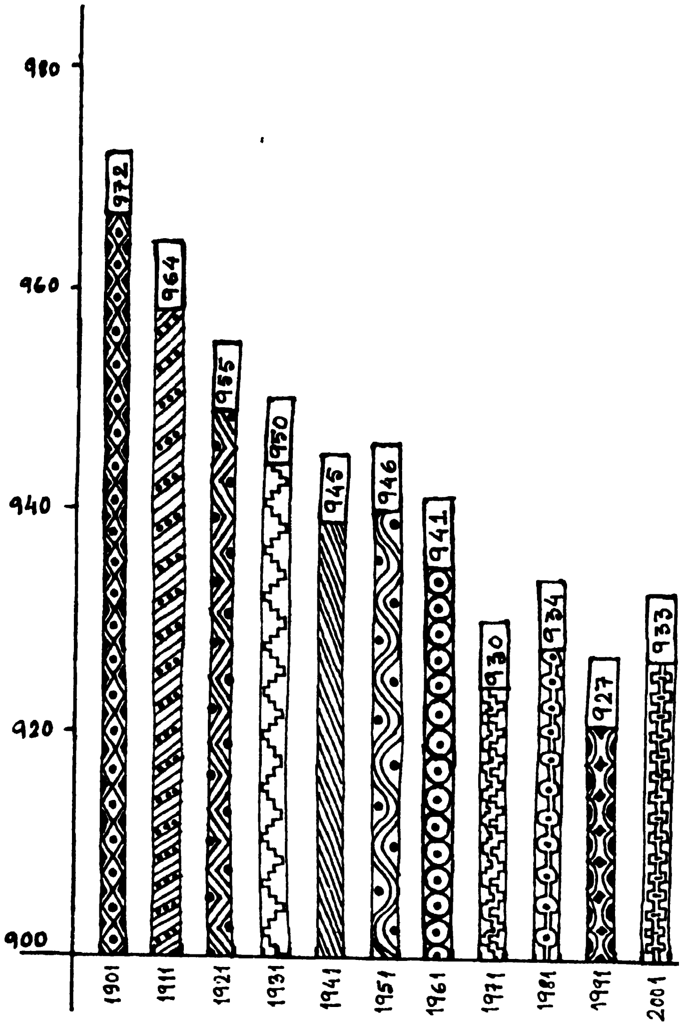
नहीं, ऐसा कोई बदलाव तो नहीं आया है मगर हमारे पास ऐसी नई-नई तकनीकें आ गई हैं जिनसे हम प्रकृति को पछाड़ने में समर्थ हो गए हैं। इन तकनीकों के नाम शायद तुमने भी सुने होंगे। इनकी मदद से माँ के पेट में ही यह पता लगा लिया जाता है कि होने वाला बच्चा लड़का होगा कि लड़की। इसके बाद क्या करते होंगे यह तुम सोच ही सकते हो। यदि उन्हें पता चलता है कि लड़की होने वाली है तो वे उसे पैदा ही नहीं होने देते।

ज़रा सोचो, यदि मुझे पता चले कि मेरे पैदा होने से पहले एक या दो लड़कियों को पैदा ही नहीं होने दिया गया, तो मुझ पर क्या गुज़रेगी? और यदि तुम लड़के हो और तुम्हें यही बात पता चले तो तुम पर क्या गुज़रेगी? क्यों लोगों को इतनी चाह है लड़के ही?

जब यह तकनीक नहीं थी तो कई घरों में तब तक बच्चे होते रहते थे जब तक कि लड़का पैदा न हो जाए। सोचो उन लड़कियों के दिल पर क्या बीतती होगी जिन्हें यह पता है कि वे सिर्फ इसलिए पैदा हुई हैं कि उनके माता-पिता एक लड़का चाहते थे। वास्तव में मैंने तो सुना है कि जब यह तकनीक नहीं थी तब कुछ लोग लड़कियों को जन्म लेते ही मार डालते थे। कैसे करते होंगे ऐसा?

आज हालत यह हो गई है कि जन्म से पहले ही लड़के-लड़की का पता लगाकर लड़कियों को जन्म से पहले ही मारकर देश में लड़कियों की संख्या कम हो रही है। कई प्रान्तों में तो हालत यह हो गई है कि 6 साल से क़म उम्र के बच्चों की गिनती करो तो प्रत्येक 10 लड़कों पर 6–7 लड़कियाँ होती हैं। आगे चलकर क्या होगा?

और अब एक मुश्किल सवाल। यह तो



प्रति हज़ार लड़कों पर लड़कियों की संख्या वर्ष के हिसाब से



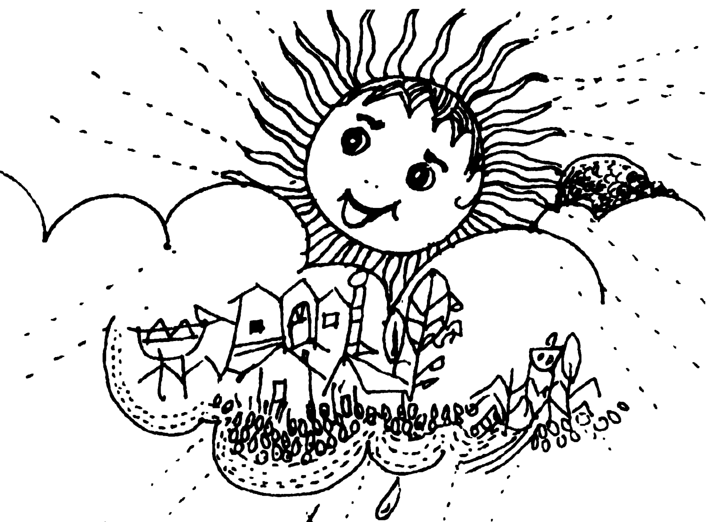
पक्की बात है कि हमारे यहाँ लोग लड़के को बहुत महत्व देते हैं। अब यदि परिवार से यह कहा जाए कि उसे एक या दो बच्चे ही पैदा करना है तो क्या परिणाम होगा? तब क्या उन खतरनाक तकनीकों का उपयोग और नहीं बढ़ेगा?

लेकिन जिन लोगों को सिर्फ यही चिन्ता खाए जा रही है कि बच्चे बहुत ज़्यादा हैं उन्हें इसकी परवाह नहीं है। उन्हें तो यह भी परवाह नहीं है कि जो बच्चे आज हैं उन्हें खाने को मिल रहा है कि नहीं। उन्हें तो यह भी चिन्ता नहीं है कि कम बच्चे पैदा करने के लिए स्त्रियों पर कई बार ज़्यादती भी होती है। जैसे बच्चे का जन्म रोकने के कुछ तरीके ऐसे भी हैं जिनके खराब प्रभाव शरीर पर होते हैं। पर उन्हें क्या? ●

सभी चित्र : कैरन हेडॉक







सूरज और ओस



बिछी दूब के पत्तों पर
चमक रही थी ओस,
तभी महोदय सूरज आकर
लगे जमाने धौंस।

अच्छा जी! अपनी मर्ज़ी से
बादल से तू अलग हुई,
अपने घर को त्याग भागती
धरती क्यों भाती है, मुई!

चमक-चमककर किसे दिखाती,
कौन यहाँ तेरा है खास?
दूर गगन में फिर भेजेगा
देखो कैसे, मेरा प्रकाश।



खुश हो बोली ओस की बूँद
गुस्सा मत कर तात,
यहाँ देखने मैं हरियाली
आऊँगी हर रात।

● अभिषेक राय मिथिलेश
● चित्र : शोभा घारे



कुट्टू कहाँ गया?

● गिरिजा कुलश्रेष्ठ



''कुट्टू आखिर कहाँ चला गया?'' कालू और साँवरी हैरान भी थे और परेशान भी।

सुबह जब दोनों दाना-दुनका और कीड़े मकोड़े लेने गए थे तब घोंसले में चारों बच्चे मौजूद थे। लौटने पर उन्हें केवल तीन बच्चे मिले। काफी उदास और सहमे हुए। उन्हें देखते ही तीनों चिल्ला उठे – ''माँ...माँ.. कुट्टू पता नहीं कहाँ गया है?''

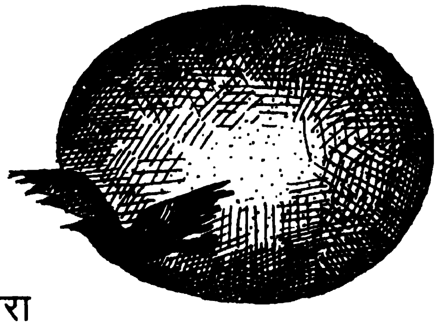
''हम तो सोने की कोशिश कर रहे थे चुपचाप.....।''

''और हमें छोड़कर जाने कहाँ चला गया....।''

तीनों बच्चों की बातें सुनते हुए वे दोनों कितनी ही बातें सोच रहे थे।

कालू कौवे का घोंसला नीम की सबसे ऊँची टहनियों के झुरमुट में बना था जो आसानी से दिखाई तक नहीं देता था। बिल्ले और दूसरे दुश्मनों की तो सोचना बेकार ही है। वहाँ तो बाज जैसे चुस्त और चालाक शिकारी के लिए भी पहुँचना उतना आसान नहीं है। इसलिए घोंसले में से कोई कुट्टू को ले गया होगा, सोचना तो बेवकूफी होगी। और, कोई ले भी जाता तो बाकी तीन को क्यों छोड़ता? तो फिर कुट्टू कहाँ और कैसे चला गया?

हालाँकि कालू और साँवरी जानते थे कि बड़े होने पर बच्चों को एक दिन घोंसला छोड़ आज़ादी से उड़ना है, पर अभी इसके लिए कुछ और समय की ज़रूरत थी। अभी तो उनके पंख छोटे और कमज़ोर थे। इनसे घोंसले में ही फड़फड़ाने का शौक तो पूरा किया जा सकता था, पर अभी यों स्वतंत्र रूप से अकेले ही उड़ जाने की बात सोचना उनके लिए कुछ कल था। इसलिए कुट्टू का यों गायब हो जाना उनके



लिए अफसोस के साथ हैरानी की बात भी थी।

कालू इन्हीं विचारों में डूबा था कि बिल्लू बिल्ला वहाँ से गुज़रा बिल्लू खासा मोटा-ताज़ा और बड़ा घाघ बिल्ला था। अण्डों और नन्हें बच्चों पर उसकी नीयत हमेशा बुरी रहती थी। कुट्टू के बारे में वह कई चिड़ियों से बातें करते देखा गया था।

''अगर कुट्टू उड़ने की कोशिश में नीचे गिर पड़ा होगा तो ज़रूर बिल्लू ....'' आगे की दुखद कल्पना से बचने के लिए उसने बिल्लू से ही कुछ इस तरह पूछा ताकि उसे कोई शक न हो – ''बिल्लू! कुट्टू आज तुम्हारे साथ था न?''

''कुट्टू'' बिल्लू आँखें चमकाकर बोला, ''सुबह से मैं उसी को तो तलाश रहा हूँ! कहाँ है वह?''

''चलो! कुट्टू बिल्लू के हाथ तो नहीं आया।'' कालू ने सोचा और पूछताछ के लिए नीम के तने के पास गया।

''नीम भाई! तुमने कुट्टू को कहीं देखा है?''

''मैं तो सुबह से ही हवा के सुहाने झोंकों में झूम रहा हूँ कालू भैया।''

''नन्हीं से पूछकर देखो ना?''



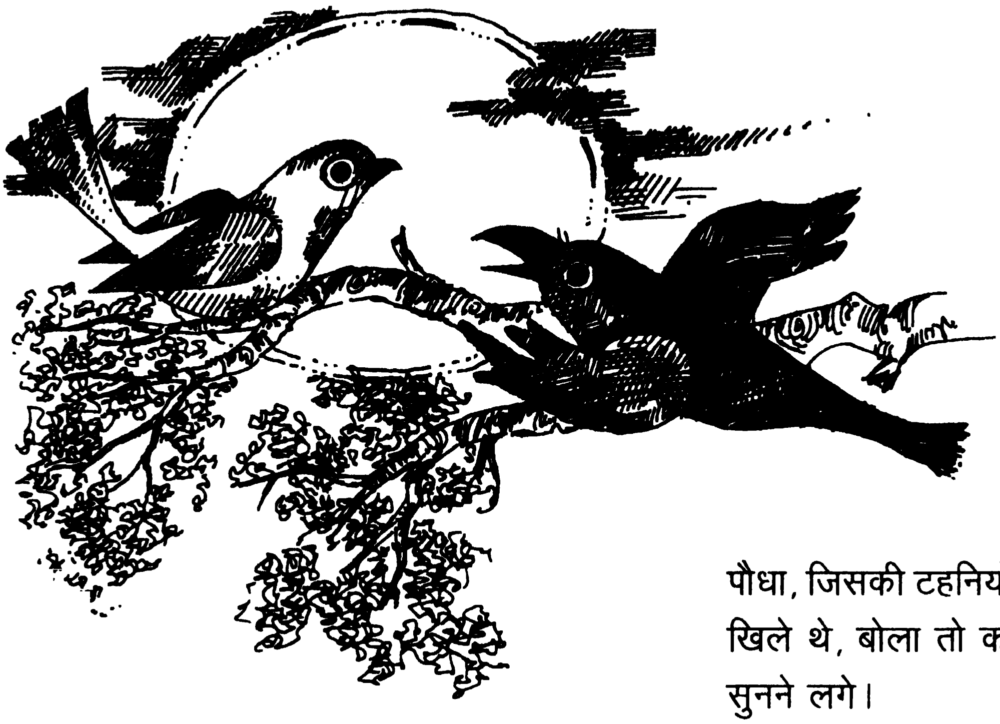
''नन्हीं बहन'' कालू लपककर नन्हीं गौरेया के पास पहुँचा– ''कुट्टू अपने घोंसले में नहीं है.. तुमने कहीं उसे देखा।''

''घोंसले में नहीं है तो ज़रूर आसमान की सैर कर रहा होगा। चिन्ता की क्या बात है कालू भाई!'' कालू उसे समझाता कि अभी वह इस तरह उड़ने लायक नहीं है, पर वह बिना सुने फुर्ती से दूसरे पेड़ पर जा बैठी।

उधर साँवरी ननकू नेवले को अपनी व्यथा-कथा सुना रही थी।

''...ज़रा पूरी बता खुलकर समझाओ'' ननकू ने कान खुजाते हुए लाल घुंघची जैसी आँखें नचाईं





''हमारी बात किसी ने भी ध्यान से नहीं सुनी।'' कालू और साँवरी ने दुखी मन से सोचा।

''तुम्हारी बात तो काफी बुलन्द है।''तभी पास ही खड़े गुलाब का पौधा, जिसकी टहनियों पर बड़े-बड़े सुर्ख फूल खिले थे, बोला तो कालू साँवरी उसकी बात सुनने लगे।

साँवरी ने सारी बात विस्तार के साथ बताई। ननकू ने दो-चार बार पलकें झपकाईं और बोला, ''कुट्टू बेशक वहीं होगा जहाँ इस समय उसे होना चाहिए।''

''ननकू भैया, यह मज़ाक का समय नहीं है'' साँवरी ने भरे गले से कहा, ''बच्चे ने सुबह से कुछ भी नहीं खाया है, जाने कहाँ भटक रहा होगा। हो सके तो तुम......''

साँवरी अपनी बात पूरी कह पाती इससे पहले ही ननकू लकड़ी के ढेर में गायब हो गया।

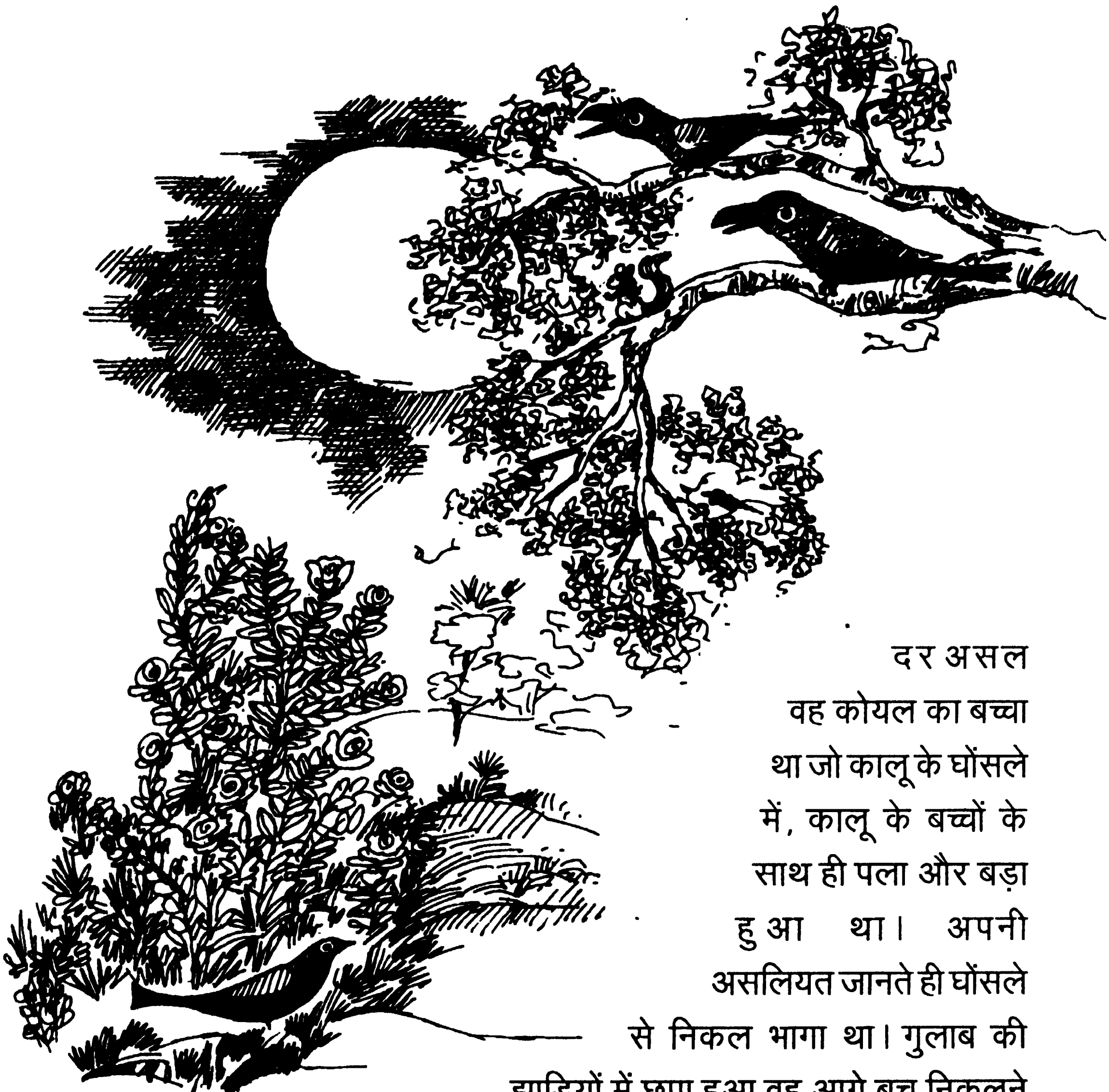
सोना गिलहरी, कनसुन मुर्गी, गुलबी मैना और पिंकु पडुंक ने भी उन्हें लगभग इसी तरह के जवाब दिए

''मेरे विचार से तुम अपने बच्चे को ज़ोर ज़ोर से पुकारो, वह सुनेगा तो ज़रूर तुम्हारे पास लौट आएगा।''

''यह सलाह अच्छी है।'' उन्होंने सोचा और दोनों बारी-बारी से पुकारने लगे, ''कुट्टू! कहाँ हो मेरे बच्चे! जल्दी आ जाओ।''

''तुम्हारे बिना हमने अभी तक कुछ नहीं





खाया है... मेरे बच्चे आ जाओ, हम तुमसे नाराज़ नहीं हैं।''

''कुट्टू... जल्दी आओ.. कहाँ हो तुम?''

उनकी पुकार पत्ता-पत्ता सुन रहा था। सारी चिड़ियाँ, गिलहरियाँ, और वे सभी जो सुन सकते थे, सुन रहे थे और कह रहे थे, ''बेचारा कालू''

कालू की आवाज सुन तो कुट्टू भी रहा था। लेकिन सुनकर बाहर आने की बजाय गुलाब की झाड़ी में और भी छुपने की कोशिश करता हुआ मन ही मन वह भी कह रहा था, ''बेचारा कालू''

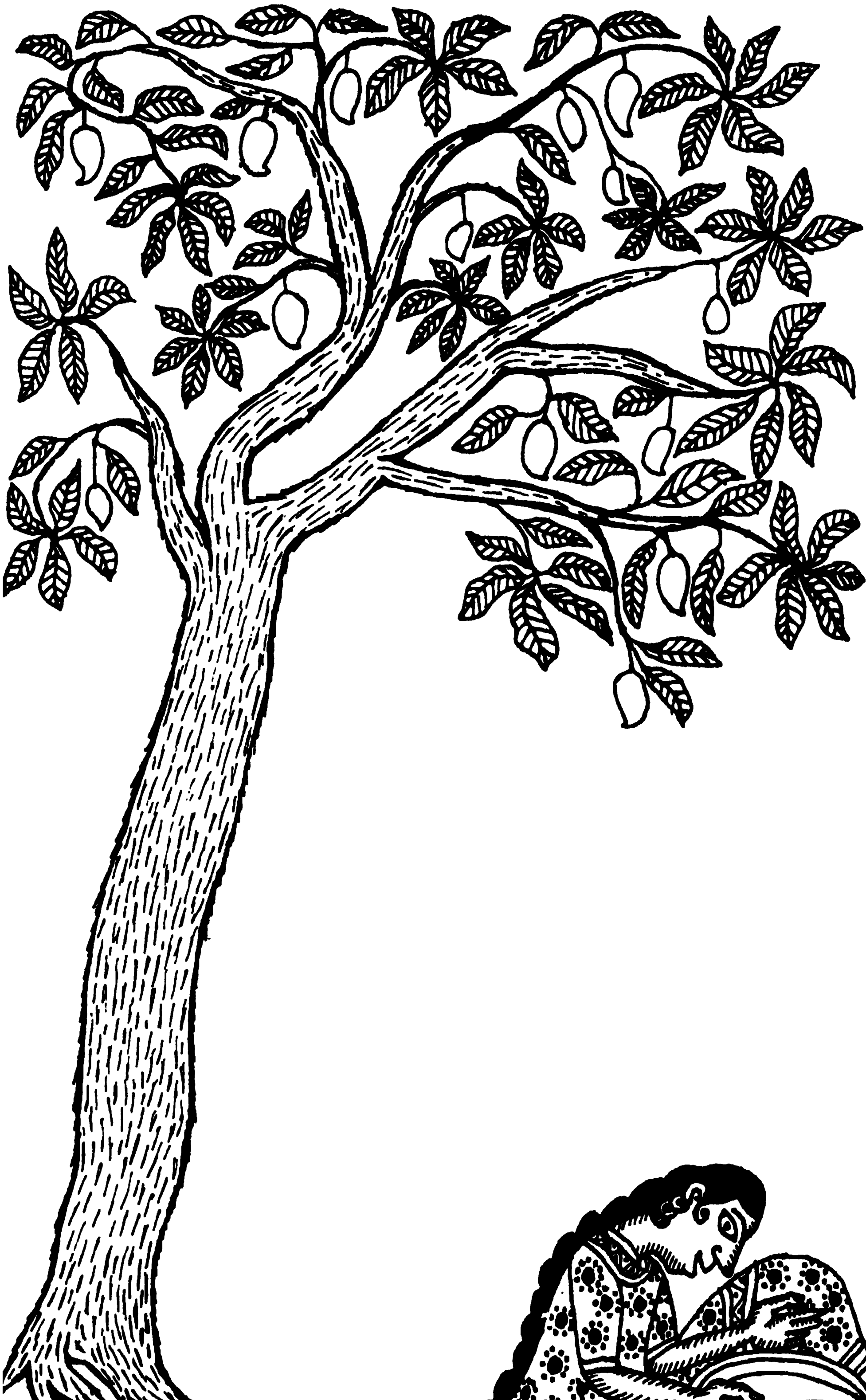
दरअसल वह कोयल का बच्चा था जो कालू के घोंसले में, कालू के बच्चों के साथ ही पला और बड़ा हुआ था। अपनी असलियत जानते ही घोंसले से निकल भागा था। गुलाब की झाड़ियों में छुपा हुआ वह आगे बच निकलने की तरकीबें सोच रहा था।

शाम आसमान से उतरकर धरती पर आ गई थी। आसमान में उड़ते चहकते पक्षी घोंसलों की तरफ लौटने लगे थे और पेड़ों व छतों की मुंडेरों पर शेष रहे एकाध धूप के टुकड़ों को झोली में डालता अँधेरा गलियों-मैदानों में दबे पाँव उतरने लगा था।

कालू और साँवरी वास्तविकता से अनजान अभी भी नीम की टहनी पर बैठे पुकार रहे थे।

''कुट्टू! मेरे बच्चे कहाँ तो तुम? हम तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं।'' ●●●

● चित्र : धनंजय



आम की ग़ज़ल

देखो कैसे कैसे आम,
नहीं मिलेंगे ऐसे आम,

मामा गोल जलेबी के,
रसगुल्ले के मौसे आम,

कोई पीला, कोई लाल,
हरियल तोते जैसे आम,

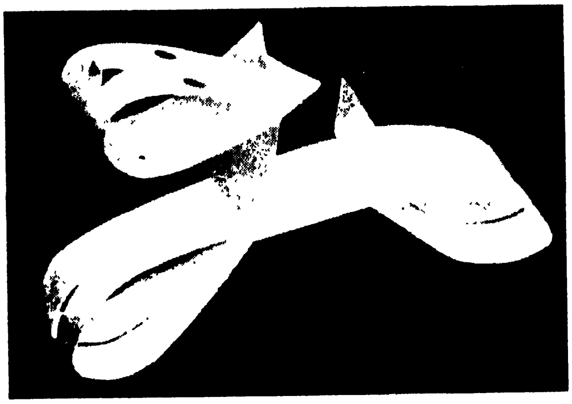
छोटू, लम्बा, पतलू और
कुछ हैं मोटे भैंसे आम,

खाने में ना मज़ा उधार
जैसे को हैं तैसे आम।

● डॉ. हरीश निगम
● चित्र : कैरन हेडॉक

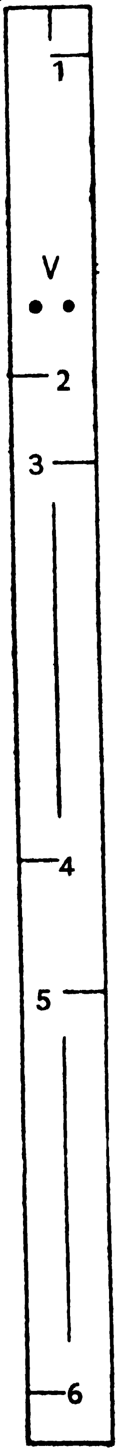


कुत्ता



आवश्यक सामग्री : थोड़ा मोटा कागज़, पेंसिल, कैंची

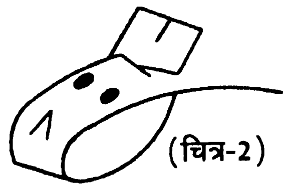
(चित्र-1)



1. कागज़ में से 2 सेंटीमीटर चौड़ी और लगभग 30 सेंटीमीटर लम्बी पट्टी काट लो।

2. इस पट्टी पर चित्र-1 में दिखाए अनुसार निशान लगा लो।

3. 1 से लेकर 6 तक के निशानों पर कट लगाओ।



(चित्र-2)

4. 1 और 2 नम्बर के कटे हुए हिस्सों को आपस में फँसा दो। (चित्र-2)

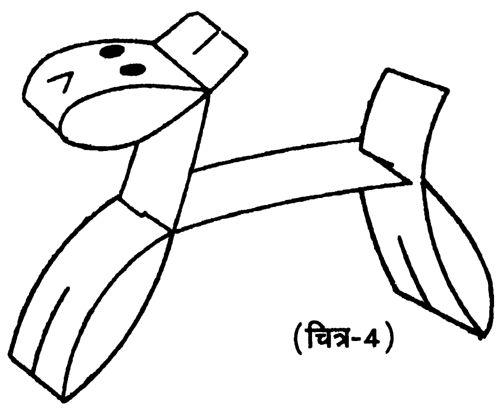
5. इसी तरह 3 को 4 में और 5 को 6 में फँसा दो। (चित्र-3 और 4)

6. चित्र-4 में कुत्ते के पैरों वाले हिस्से पर जो निशान दिख रहे हैं उन पर भी कट लगाओ।

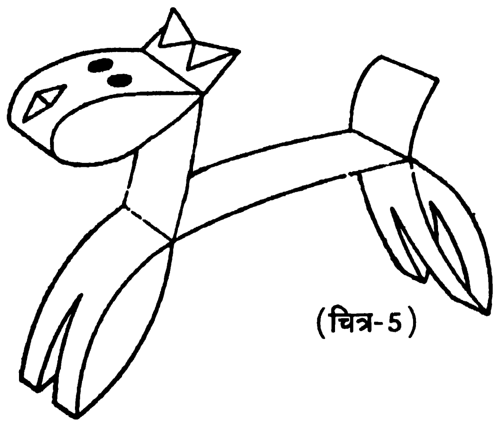
7. सिर के ऊपर के कटे हुए हिस्से को मोड़कर कुत्ते के कान बनाओ। चित्र -5 जैसा कुत्ता बना या नहीं?



(चित्र-3)



(चित्र-4)



(चित्र-5)

चले चलो, दिलों में घाव लेके भी चले चलो

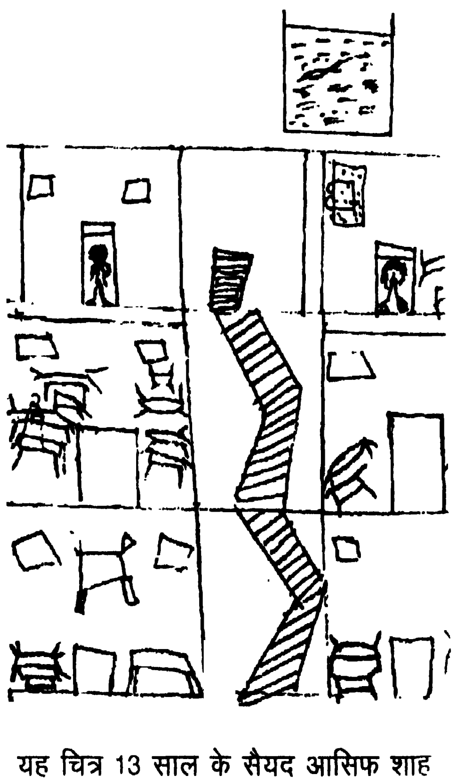
तुम सब अखबार में पढ़ते रहे हो, टी.वी. पर देखते रहे हो कि पिछले तीन महीनों से गुजरात में भयानक मार-काट चलती रही है। इस सबके पीछे कारण जो भी हो, सवाल यह है कि क्या हम लोग इन्सान की बजाय कसाई बन गए हैं। कैसे हम लोग यह स्वीकार कर सकते हैं कि एक इन्सान दूसरे को यूँ मार डाले या उसका घर जला दे? गुजरात में छोटे-छोटे बच्चों तक को इसी तरह जलाकर मार दिया गया है। लड़ाई तो बड़ों के बीच थी, फिर इन बच्चों को क्यों इसकी सज़ा भुगतनी पड़ी?

आज भी लोग गुजरात के शहरों में लगे राहत कैम्पों में डर और गुस्से और दुख के बीच दिन गुज़ार रहे हैं। मैं पिछले दिनों वड़ोदरा शहर के ऐसे ही दो राहत कैम्पों में गई थी। पहले तो कुछ भी सोचा नहीं था कि क्यों जा रही हूँ। बस मन में ढेर सारा दुख और गुस्सा था, और बेबसी थी। अपने हिन्दु होने का दुख और गुस्सा, कुछ न कर पाने की बेबसी।

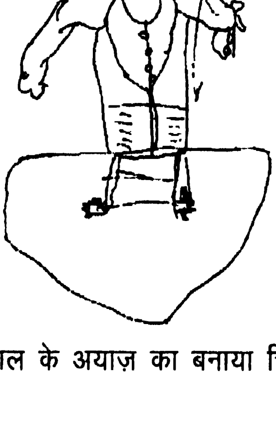
पहले दिन हम माण्डवी चौक के पास, मुग़लवाड़ा में कुरैशी जमातखाना कैम्प में गए। मेरे साथ मेरे मित्र रमेश और विजया भी थे। यहाँ दूर के कवाँट, छोटा उदेपुर जैसे कस्बों के अलावा, वड़ोदरा के ही बरानपुरा के भी लोग थे। वहाँ हमने कुछ महिलाओं और ढेर सारे बच्चों से बात की। फिर बातों-बातों में बच्चों से चित्र बनाने की बात होने लगी। शुरू में मेरे पास सिर्फ चार बच्चे बैठे थे। पर जब उन चारों ने चित्र बनाना शुरू किया तो लगभग 20 बच्चों ने आकर कागज़ और पेन माँगना शुरू कर दिया। जब मेरे बैग में कोरे कागज़ का टोटा लग गया तो मैंने अपनी डायरी में से पन्ने फाड़कर उन्हें देना शुरू किया। पेन भी सीमित ही थे। सो वे रुके रहते, कि एक का चित्र पूरा बन जाए तो दूसरे की बारी आती। तुम लोग भी देखो इनके चित्र। कुछ बच्चों ने अपने भयावह अनुभव लिखे भी। वह भी पढ़ो -



चौथी कक्षा की तनवीर ने कागज़ कलम मिलते ही अपने उस घर का चित्र बनाया जो जल चुका है। उसने कहा कि चित्र में दरवाज़े पर उसकी मम्मी खड़ी है और घर के बाहर अब्बा।



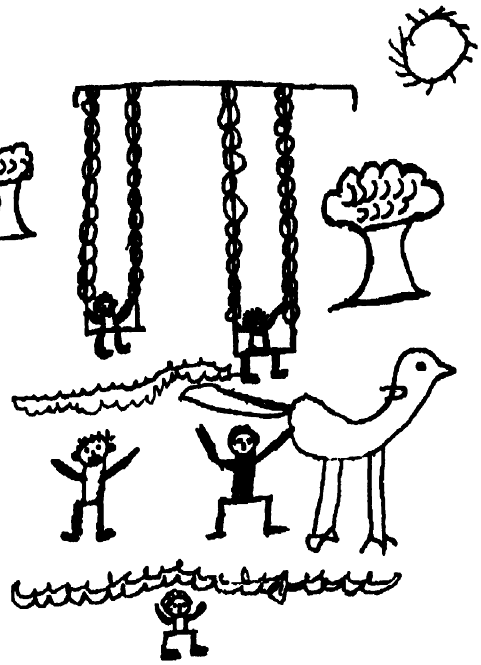
यह चित्र 13 साल के सैयद आसिफ शाह ने बनाया। उसके स्कूल का चित्र।



4 साल के अयाज़ का बनाया चित्र।



और पहली की फरज़ाना का।



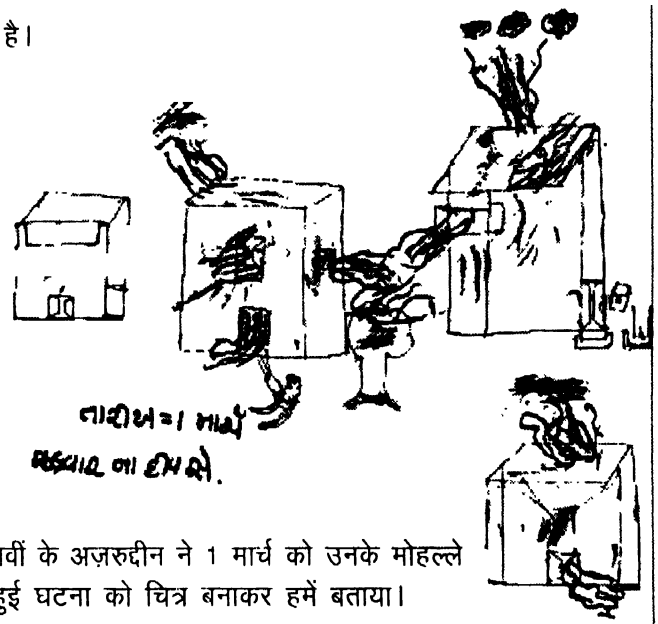
यह छठवीं क्लास के इकरामुद्दीन के घर के पास का बगीचा है।



यह चित्र 10 साल के जुम्मन ने बनाया। जुम्मन और उसके 5 साल के छोटे भाई मुनाब का घर जला दिया गया और दंगाइयों ने उनके अब्बा को मार डाला। माँ तो पहले से ही नहीं थी। जुम्मन तो इस सबके बारे में बताता है पर मुनाब चुपचाप एक कोने में बैठा रहता है। उन्हें इस कैम्प में एक पुलिस की गाड़ी छोड़ गई थी।

एक दिन स्टेशन पर एक जन को मारा। मेरे चचा ने देखके हमारे को कहा कि रिक्शा लेकर भाग जाओ। हम हमारी खाला के वहाँ गए। उसी रोज़ हमारा घर जला दिया। इसलिए हम जमातखाने में आए।

शेख इकरामुद्दीन, बरानपुरा, वड़ोदरा, गुजरात



सातवीं के अज़रुद्दीन ने 1 मार्च को उनके मोहल्ले में हुई घटना को चित्र बनाकर हमें बताया।

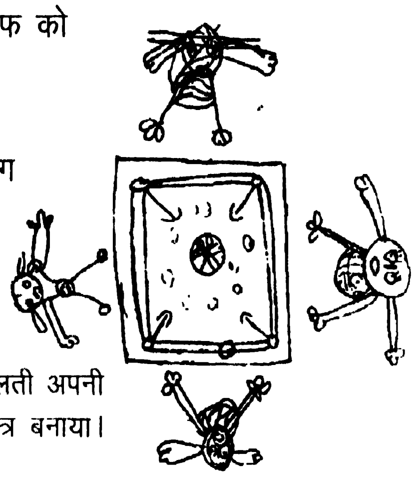


नौवीं के सैयद आसिफ अली ने पत्थरबाज़ी का चित्र बनाया।

इन चित्रों को देखकर हमें लगा कि कुछ बड़े बच्चों से इस बारे में बात की जा सकती है। बात करने पर कुछ बच्चों ने इन घटनाओं के बारे में लिखा भी। लग रहा था कि इसी प्रक्रिया से इनके मन में भरा दुख और गुस्सा शायद निकल पाएगा। उनका लिखा हुआ भी पढ़ो।

अगले दिन मैं फिर उसी कैम्प में गई - ढेर सारे कागज़ और मोम-चॉक खरीदकर। हमें लगा कि बच्चे और बड़े भी इस तरह से कुछ देर के लिए उस खौफ को भुला पाएँगे जिसके साये में वे लगातार जी रहे हैं।

वहाँ करीब दो घण्टे बिताकर हम एक और बस्ती में गए - राजा-रानी तालाब। यहाँ पास में ही कैम्प था जिसमें ज़्यादातर इसी बस्ती के लोग रुके हुए थे। कुछ लोगों के घर पूरी तरह से जलकर खाक हो गए थे। बाकी के घर कुछ-कुछ जल गए थे। वे वापस आकर अपना घर फिर से बनाने की कोशिश कर रहे थे।



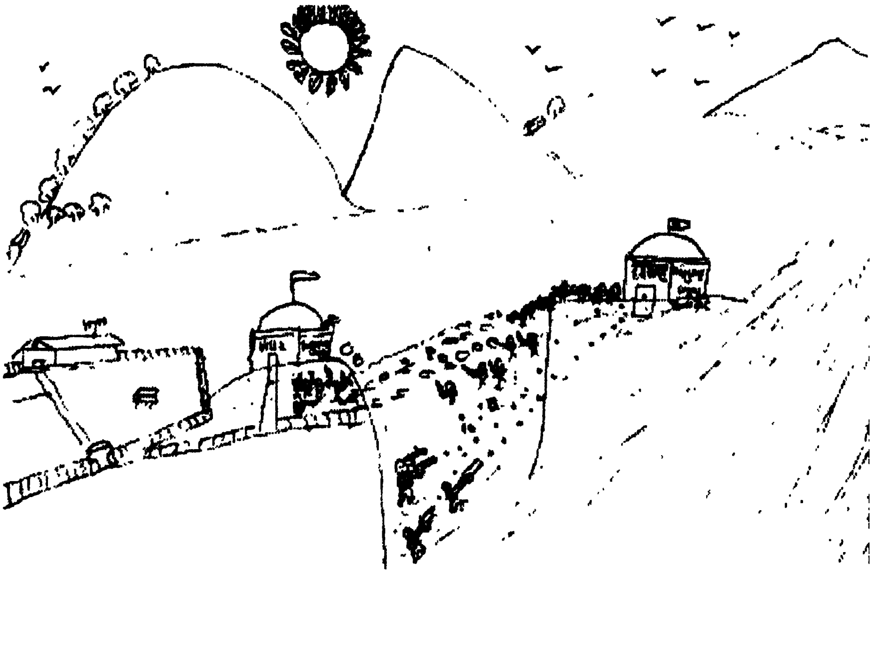
सातवीं की परवीन मंसूरी ने कैरम खेलती अपनी सहेलियों का चित्र बनाया।

27 फरवरी 2002 के दिन गोधरा के हत्याकाण्ड की वजह से हमारे मोहल्ले का माहौल खराब हो गया था। उस दिन कर्फ्यू लगा दिया गया। 28 फरवरी के रोज़ दोपहर 11.30 बजे पथराव हुआ और उसके बाद माहौल शांत हो गया। उस दिन रात साढ़े आठ बजे फिर से पथराव हुआ। दो से तीन हज़ार लोगों के हुजूम ने हथियार लेकर हमारी तरफ धावा कर दिया। उस वक्त पुलिस ने दो राउण्ड गोलीबारी की।

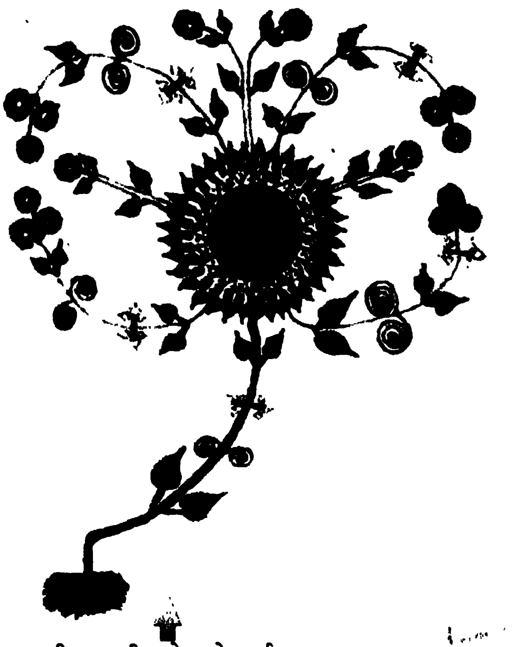
फिर 1 मार्च को शुक्रवार के दिन हमें लगा कि अब यहाँ रहने जैसी स्थिति नहीं। हमने पुलिस से विनती की कि हमारे घर की महिलाओं और बालकों को सुरक्षित इलाके में भिजवाने के लिए बन्दोबस्त कर दें। पुलिस ने कहा कि तुम लोग यहाँ से अपनी जवाबदारी पर चले जाओ, नहीं तो ज़िन्दा जला देंगे। उसके बाद हम अपनी जवाबदारी पर नज़दीक के मोहल्ले - जहाँगीरपुरा, अपने रिश्तेदारों के यहाँ चले गए। हमारे जाने के तुरन्त बाद मकानों को लूटकर जला दिया गया। हमने डी.सी.पी. वाड़ी पुलिस चौकी में फरियाद की और 17 आरोपियों के नाम दिए। परन्तु पुलिस ने अभी तक कोई भी कार्यवाही नहीं की है।

जब हम अपने घर-मकान देखने जाते हैं तो सब महिलाएँ और पुरुष हथियार लेकर हमारे पीछे पड़ जाते हैं। अभी हम सब कुरैशी हॉल राहत कैम्प में हैं। सरकार हमें जो 35 किलो अनाज देने वाली है, उसे लेकर हम जाएँ कहाँ। क्योंकि हमारे मकान तो रहने लायक नहीं रहे। सरकार को हमें रहने के लिए जगह देनी चाहिए क्योंकि अब यह राहत कैम्प भी बन्द हो जाएगा।

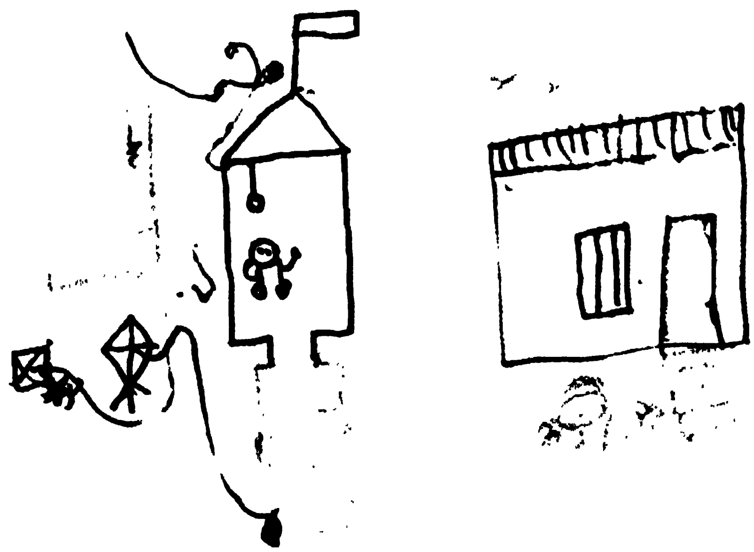
शेख साहिना बानो, आठवीं, बरानपुरा, वड़ोदरा, गुजरात



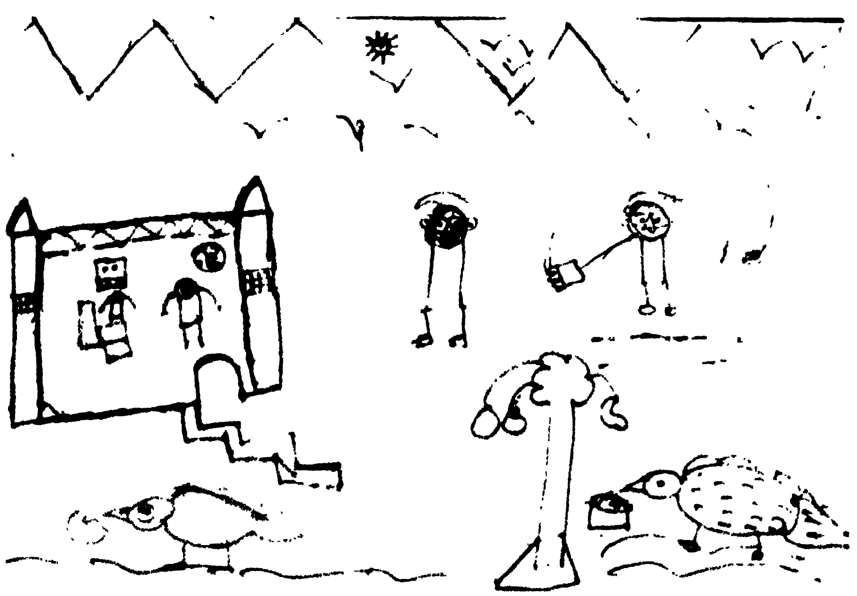
16 साल के वसीम दीवान ने अपने मोहल्ले का उस दिन का चित्र बनाया जब हिन्दु कट्टरपंथियों ने उन पर हमला किया था। पुलिस भी थी, गोलियाँ चलाती हुई। वसीम अन्त तक हमारे सामने नहीं आया। शर्म से या डर से, पता नहीं।



यह तस्वीर फहमीदा के बड़े भाई इकबाल ने तब बनाई थी जब वह 15-16 साल का था। 20 साल के इकबाल को पुलिस घर से उठाकर ले गई थी, दंगाइयों को गिरफ्तार करने के नाम पर। वह तब से जेल में है उसकी माँ ने हमें यह चित्र दिया।



चौथी के सलमान खान का बनाया चित्र।



यह चित्र बनाया 12 साल की फहमीदा बानो दीवान ने।

दो दिन के इस सफर से मैं किसी की कोई मदद कर पाई, ऐसा मुगालता नहीं है। लेकिन बहुत कुछ पाया मैंने। एक तो यह ताकत मिली कि इस पागलपन के बारे में सबको बताऊँ, ताकि इससे निकलने का कोई रास्ता हम सब मिलकर सोचें। उन बस्तियों में बहुत सारा प्यार भी पाया मैंने। भले ही हम उस धर्म या कौम के थे जिसने इनका घर-बार बर्बाद कर दिया था।

फिर भी हमें इतना प्यार दिया इन लोगों ने। हर कोई घर बुलाकर बिठाता - टूटा-फूटा जला हुआ घर ही सही। 'धूप है, ठण्डा पानी पी लो' कहकर औरतें पानी देतीं। मुझे लगा कि इतना खोकर भी कितना है इनके पास हमें देने को। सो तय किया कि इसके बारे में भी सबको बताऊँ।

-टुलटुल विश्वास



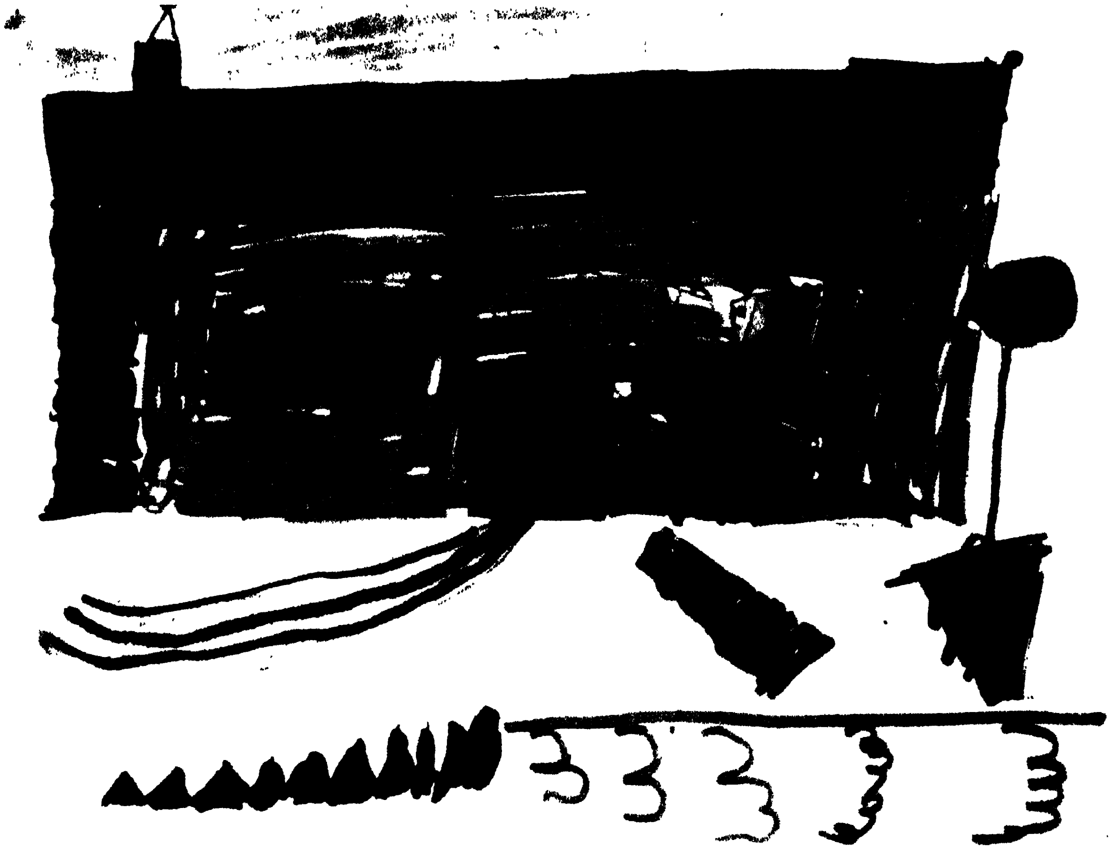
किशोर अपनी पेटिंग के साथ



इशान का बनाया
स्वयं का चित्र



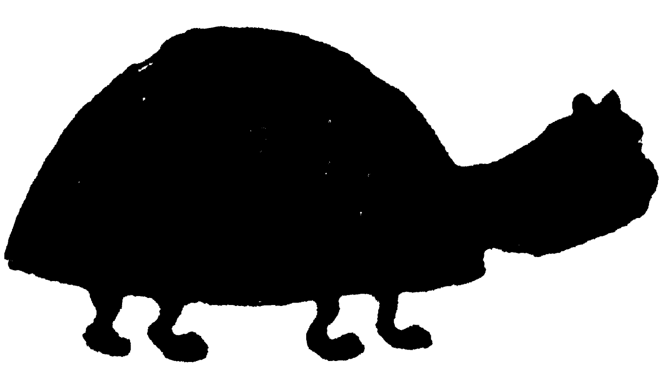
इशान का चित्र



शुभांगी मिश्रा, पाँच वर्ष, फ़ैज़ाबाद



कृष्णा कुमारी, आठवीं, धोसवास, रतलाम, म.प्र.



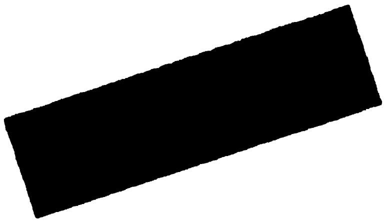
दिव्या प. प्रजापति, तीसरी,
निजामपुरा, वढ़ौदरा, गुजरात



घोंसले में बैठे हुए बतासी के बच्चे मानो गुफा की गहराई का अनुमान लगा रहे हैं।

पानी में रहनेवाला केंकड़ा। यह बीट की सतह पर भी चल सकता है और नीचे गिरनेवाले चमगादड़ या बतासी को खा जाता है।



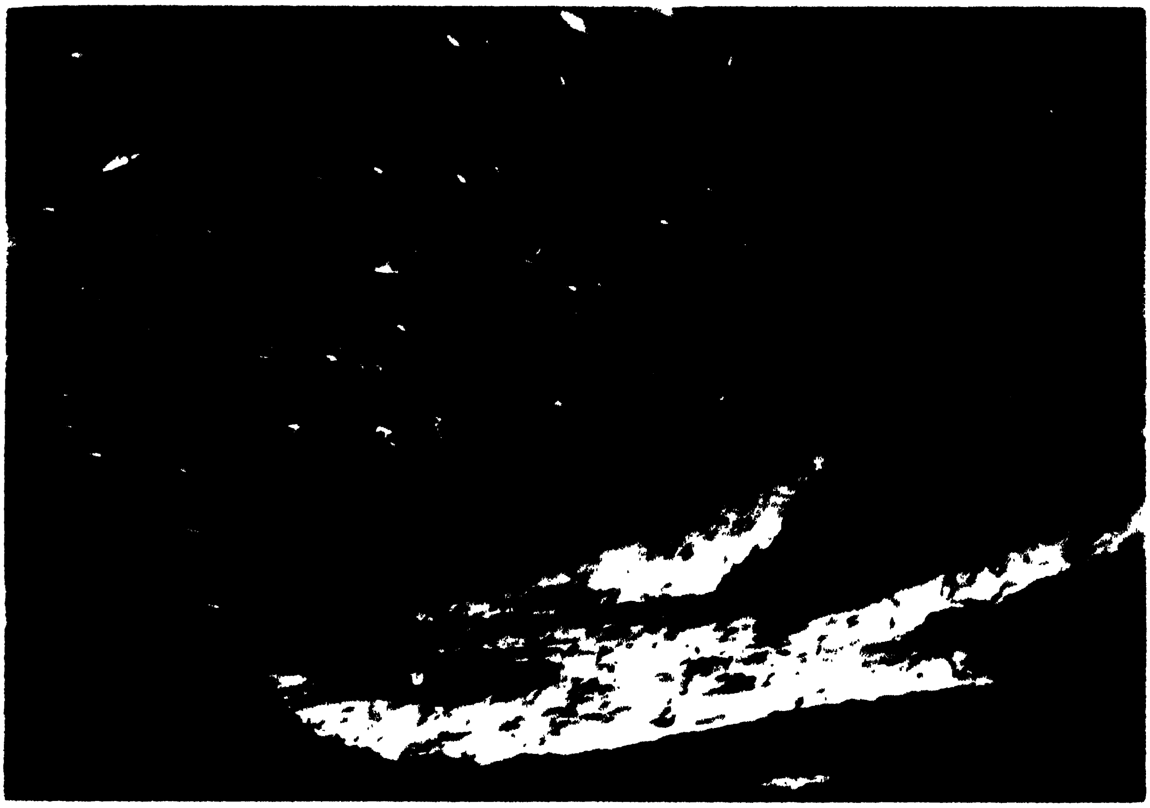




गुफा की दीवार पर चढनेवाले साँप ने झपट्टा मारकर उडते हुए बतासी को पकड लिया है।

झिंगुर को खाता हुआ गुफा में रहने वाला कनखजूरा





शाम को गुफा से बाहर निकलते हुए हजारों की संख्या में चमगादड



जीवन का जाल

प्राणियों का आपसी सम्बंध



● अरविंद गुप्ते

प्रकृति में चारों ओर जीवन के जाल फैले रहते हैं। जीवन के जाल से मतलब है किसी स्थान विशेष में रहनेवाले जीवधारियों का आपसी सम्बंध और एक दूसरे पर निर्भरता।

सब जीवधारियों में केवल हरे पौधों में ही सूर्य की ऊर्जा का उपयोग करके भोजन बना सकने की क्षमता होती है। शाकाहारी जंतु पौधों को खाकर इस ऊर्जा को लेते हैं तो माँसाहारी जंतु शाकाहारी जंतुओ को खाकर। इस प्रकार एक भोजन शृंखला बन जाती है, जिसके माध्यम से सूर्य की ऊर्जा हर जीवधारी को प्राप्त होती है। तालाब हो या जंगल, समुद्र हो या पहाड़, हर जगह हरे पौधे, उन्हें खाने वाले शाकाहारी और शाकाहारियों को खाने वाले माँसाहारी होते ही हैं।

किंतु कुछ ऐसे विचित्र स्थान होते हैं जहाँ कि भोजन की कल्पना भी नहीं कर सकते। किंतु जीवन में ऐसी जीवटता होती है कि वह ऐसे स्थानों में भी पैर जमा लेता है और कई तरह के खतरों के बावजूद फलता-फूलता रहता है।

इंडोनेशिया और थाइलैंड के कुछ भागों में घने वर्षा वन पाए जाते हैं। और इन वनों में पाई जाती हैं विशाल गुफाएँ जो 400 फीट तक ऊँची होती हैं। पहाड़ों के अंदर गहराई में फैली इन गुफाओं में दिन के समय भी सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता।

तुम सोचोगे कि जब सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता तो कैसे इनमें हरे पौधे पनपेंगे? कैसे भोजन शृंखला बनेगी? किंतु आश्चर्य की बात तो यह कि इन गुफाओं में भी दर्जनों प्रकार के जीव जंतु रहते हैं। इन गुफाओं में रहने वाले जंतुओं में दो प्रजातियाँ महत्वपूर्ण हैं। और इन दो प्रजातियों पर इन गुफाओं का जीवन जाल टिका हुआ है।

इनमें एक प्रजाति है चमगादड़ों की, जो लाखों की संख्या में हर गुफा में रहती हैं और गुफा की छत से उल्टी लटकी होती हैं। गुफाओं के फर्श पर इनकी बीट सदियों से गिरती रहने के कारण हर गुफा के तल पर बीट की एक अच्छी-खासी मोटी तह जमी रहती है। गुफा में कई नदियाँ बीट की इस तह में से रास्ता बनाकर बहती हैं। चमगादड़ छोटे-छोटे कीड़ों को खाती हैं जो गुफा के बाहर वाले जंगल में बहुतायत से मिलते हैं। चमगादड़ रात में अपना भोजन ढूँढने निकलती हैं। और सबेरा होते-होते गुफाओं में लौट आती हैं।

गुफाओं में पाए जाने वाले और जंतु एक प्रकार के पक्षी हैं, जिन्हें बतासी कहते हैं। बतासी भी छोटे कीड़ों को खाते हैं, किंतु ये दिन में गुफाओं से बाहर निकलते हैं। और दिन ढलने से पहले गुफाओं में आ जाते हैं। बतासी भी अपने नाखूनों की मदद से गुफाओं की छत से चिपके रहते हैं। गुफाओं में रहने वाले अन्य सभी और बाहर रहने वाले कुछ जंतु अपने भोजन के लिए इन दो प्रजातियों पर निर्भर रहते हैं।

सुबह-सुबह जब लाखों चमगादड़ गुफा में लौटती हैं और हज़ारों की संख्या में बतासी बाहर आ जाते हैं तब गुफा के मुहाने पर अच्छी-खासी रेलमपेल मच जाती है। और इस भगदड़ का फायदा उठाकर चीलें और बाज़ झपट्टा मार-मार कर जो भी जंतु हाथ लग जाता है उसे चट कर जाते हैं। शाम के समय भगदड़ फिर मचती है, क्योंकि उस समय बतासी फिर गुफा में लौटते हैं और चमगादड़ गुफा से बाहर निकलते हैं। शाम की भगदड़ का फायदा शाम को शिकार करने वाले पक्षी उठाते हैं जिनमें उल्लू प्रमुख होते हैं।

एक विशेष प्रजाति के साँपों ने गुफाओं में चढ़ने में सफलता हासिल कर ली है। और चमगादड़ या बतासी जो भी इनकी पकड़ में आ जाता है उसे ये चट कर जाते हैं। साँपों के अलावा कुछ झींगुर भी छतों पर चढ़कर बतासियों के घोंसलों में रखे अण्डों और नन्हें बच्चों को खा जाते हैं।

जब बतासियों के घोंसलों की बात आ ही गई तो संसार के सबसे अधिक विनाशक जंतु मनुष्य की बात भी कर ही लें। बतासी अपने घोंसले अपनी लार से बनाते हैं। लार को गुफा की दीवार पर चिपका देने से वह कड़ी हो जाती है। और उस पर और लार चिपकाकर बतासी धीरे-धीरे अपना घोंसला बनाते हैं। पूर्वी एशिया के देशों में इसे बड़े चाव से खाया जाता है, और यह बहुत महँगी बिकती है। अतः जंगलों में रहने वाले लोग गुफाओं की छतों पर चढ़कर वहाँ लगे हुए घोंसले तोड़ लेते हैं।





जाहिर है कि इससे इन पक्षियों और इनके अण्डों का बड़ी संख्या में नुकसान होता है।

चमगादड़ तो स्तनधारी होने के कारण बच्चों को दूध पिला कर पालते-पोसते हैं, किंतु बतासी माता-पिता को तो बच्चों के पोषण के लिए गुफा से बाहर जाना होता है। इतनी मेहनत से पालन-पोषण के बाद और साँप-झींगुरों से बचकर बतासी के बच्चे बड़े हो भी जाएँ, तो उनके जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा उस दिन होती है जिस दिन उड़कर वे माता-पिता के साथ पहली बार गुफा से बाहर निकलते हैं। यदि कोई बच्चा बाहर न जा सका और गिर गया तो उसकी मौत निश्चित होती है।

गुफा के तल पर सड़ती हुई बीट में लाखों जंतु इसी आस में रहते हैं कि ऊपर से कोई पक्षी गिरे और उन्हें भोजन मिले। इनमें होते हैं – कॉकरोच, केंकड़े, कनखजूरे, अंधी मकड़ियाँ जो बीट की तह पर गिरने वाले किसी भी जीवधारी को तुरंत खा जाते हैं। यदि कोई चमगादड़ या बतासी तल पर बहने वाली नदी में गिर जाए तो वहाँ भी उसके लिए मौत मौजूद रहती है – मूँछों वाली मछलियाँ और भारी-भरकम मेंढकों के रूप में, जो हिलने-डुलने वाली किसी भी चीज़ को तुरंत पकड़ लेते हैं।

अँधेरी गुफाओं में पाई जाने वाली इस अनोखी भोजन शृंखला में हरे पौधे तो हैं किंतु वे गुफाओं के बाहर जंगल में हैं और केवल दो प्रजातियों – चमगादड़ और बतासी के माध्यम से उनसे अनगिनत जंतु जुड़े हुए हैं।

लेख की सामग्री और चित्र : रीडर्स डाइजेस्ट की किताब 'द वाइल्ड लाइफ इयर' से

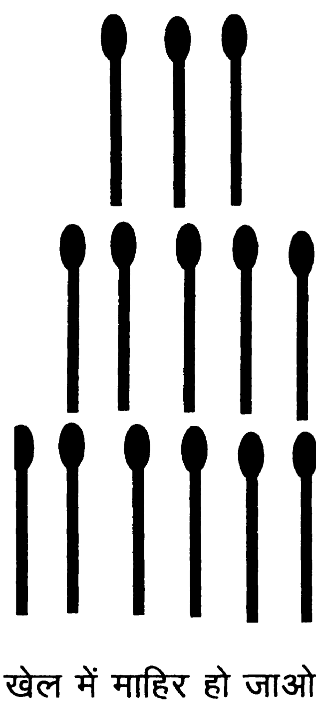
तीलियों का खेल

माचिस की पंद्रह तीलियाँ ले आओ। खेलते हैं एक मजेदार खेल!



- पहले तीलियों को तीन लाइन में इस तरह जमाना है कि पहली लाइन में तीन दूसरी में पाँच और तीसरी लाइन में सात रहें।
- यह खेल दो लोग ही खेल सकते हैं। अरे भाई ऐसी जल्दी भी क्या है... गोटियाँ जमाने से पहले इस खेल की शर्तें भी तो सुन लो।
- पहली शर्त यह है कि एक बार में एक ही लाइन से तीली उठाना है तुम्हारे उठा चुकने के बाद तुम्हारे दोस्त की बारी आएगी।
- किसी भी लाइन से तुम चाहे जितनी तीली उठा सकते हो, बस उस लाइन में कम से कम एक तीली बाकी रहनी चाहिए।
- जो सबसे आखिर में तीली उठाएगा, वही यह खेल हारेगा।
- खेल की शुरुआत कौन करे इसके लिए टॉस कर सकते हो।

चलो एक बार हम भी खेलें।



- मान लो शुरुआत मैंने की और मैंने पहली लाइन से दो तीलियाँ उठा लीं।
- अब तुम्हारी बारी। चूँकि पहली लाइन में महज एक ही तीली बची है इसलिए तुम पहली लाइन से तो तीली उठा नहीं सकते। यानी अब तुम या तो दूसरी लाइन से तीली उठाओगे या फिर तीसरी लाइन से।
- हाँ यह ध्यान रखना कि तुम्हारे चलने के बाद किसी भी लाइन में कम से कम दो तीलियाँ बची रहें... वरना तुम खुद हार जाओगे।
- मान लो तुमने तीसरी लाइन से छह तीलियाँ उठा लीं। अब मेरी बारी होगी।
- मैं सिर्फ दूसरी लाइन से तीलियाँ उठा सकता हूँ। अगर मैं इस लाइन की तीन तीलियाँ उठा लूँ तो दूसरी लाइन में दो तीलियाँ बचेंगी। यानी तुम्हें हर हाल में एक तीली उठाना पड़ेगा और तुम जीत नहीं पाओगे।
- हाँ लेकिन अगर तुम तीसरी लाइन से चार तीलियाँ उठाते तो बात बन सकती थी। क्योंकि तब दूसरी लाइन में पाँच और तीसरी लाइन में तीन तीलियाँ होतीं। और खेल कुछ और आगे बढ़ता।

खैर! ये तो एक उदाहरण था। दो-चार बार खेलने के बाद तुम भी इस खेल में माहिर हो जाओगे।

बच्चों के अधिकारों के लिए दुनिया के बच्चों का पुरस्कार

तुमने यह तो सुना होगा कि बच्चों के भी कई सारे अधिकार होते हैं। चकमक में भी बीच-बीच में इस पर कई लेख दिए जाते रहे हैं। तुम लोग भी इस बारे में लिखते रहे हो कि कैसे कभी किसी के किसी अधिकार का हनन हुआ तो कैसे किसी ने अपने अधिकार के लिए संघर्ष किया।

इसी तरह दुनिया में कई लोग, कई संस्थाएँ बच्चों के अधिकारों के लिए काम करती हैं। ऐसा ही एक बहुत ही दूर-दराज़ का देश है स्वीडन। वहाँ की एक संस्था बच्चों के लिए एक पत्रिका निकालती है। पत्रिका का मुख्य उद्देश्य यह है कि दुनिया भर के बच्चों में उनके अधिकारों के बारे में जानकारी फैलाई जाए। और बच्चों को यह भी पता चले कि उनके कई साथियों के अधिकार किस-किस तरह से छीने जाते हैं। ताकि वे अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें और दूसरे बच्चों के अधिकारों को भी बचाने के लिए एकजुट होकर कोई कदम उठा सकें।



पत्रिका निकालने के अलावा ये लोग बाल अधिकारों के लिए मेहनत से काम करने वाले कुछ संगठनों या व्यक्तियों को हर साल एक पुरस्कार भी देते हैं। इसी का नाम है -

बच्चों के अधिकारों के लिए दुनिया के बच्चों का पुरस्कार

मज़ेदार बात यह है कि संस्था अपनी तरफ से सिर्फ यह तय करती है कि हर साल पुरस्कार पाने के लायक संगठन या व्यक्ति कौन हैं। फिर अन्त में इनमें से किसे पुरस्कार मिले, इसका फैसला बच्चों की एक टीम करती है। दुनिया भर के अलग-अलग देशों के 18 साल से कम उम्र के ये लड़के-लड़कियाँ ही होते हैं इस पुरस्कार के जज। इस साल इत्तफाक से मुझे इसी टोली में से एक लड़की के साथ इनकी फैसला करने वाली मीटिंग में शामिल होने का मौका मिला था। चूँकि सारे लड़के-लड़कियाँ अलग-अलग भाषाएँ बोलते और समझते हैं, इसलिए उनके साथ एक-एक ऐसे व्यक्ति को भी रहना होता है जो उनकी भाषा से अंग्रेज़ी में और अंग्रेज़ी से उनकी भाषा में अनुवाद कर सके। तो मेरा भी प्रमुख रूप से यही काम था।

पहले मैं तुम्हें थोड़ा-सा इन जजों के बारे में बताती हूँ। फिर उन संगठनों और उनके कामों के बारे में बताऊँगी जो इस साल पुरस्कार पाने के लिए काबिल चुने गए थे। इस साल 16 जज थे। इनमें से कुछ तो इसलिए चुने गए थे कि वे अपने बचपन से ही बच्चों के हकों के लिए संघर्ष करते आ रहे थे। इनमें थे कनाडा की लॉरा हैनन्ट, इंग्लैंड की फ्रान्सीन लैंसडाउन, भारत की कृति पारेख और

स्वीडन की रेबेक्का गोएथ।

इसके अलावा बाकी जज ऐसे थे जिनके अपने अधिकारों का किसी न किसी तरह से हनन हो रहा हो, या कभी हुआ हो। जैसे भावना पाटीदार, जिसके साथ मैं थी। भावना नर्मदा किनारे के महेश्वर इलाके के सुलगाँव की रहने वाली है। भावना का गाँव इस इलाके में बन रहे एक खूब बड़े बाँध के कारण डूब जाएगा। इसके साथ ही उनकी खेती की ज़मीन भी डूबने वाली है। सरकार और बाँध बनाने वाली कम्पनी कहते हैं कि वे इस बाँध से बिजली बनाने वाले हैं। परन्तु यहाँ काम करने वाले और जानकार लोग बताते हैं कि यह बिजली आज मिलने वाली बिजली से लगभग चार गुना महँगी होगी। तो तुम ही बताओ कौन खरीद पाएँगे ऐसी बिजली? और अगर इतनी महँगी होगी यह बिजली, तो इसके लिए इतनी अच्छी फलने-फूलने वाली ज़मीन क्यों डुबाई जाए? और तो और,


भावना

सरकार की तरफ से इन लोगों को कोई और ज़मीन भी नहीं दी जा रही है कि ये कहीं और खेती करके अपना गुज़ारा कर सकें। फिर इतनी अच्छी ज़मीन और इतने सारे झाड़-पेड़ डुबाने से पर्यावरण का जो नाश होगा, वह तो है ही। तो भावना उन बच्चों की ओर से जजों की इस टीम में शामिल है जिनके जीने का अधिकार और जिनके आस-पास का पर्यावरण किसी बड़ी परियोजना के कारण खतरे में हो।

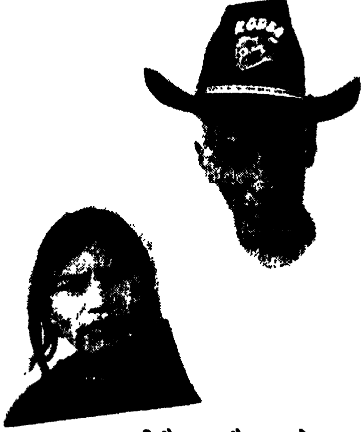
इसी तरह एक और जज है युगान्डा का चार्ल्स ओपिरो। युगान्डा में कई सालों से गृह युद्ध चल रहा है। कई सारे बागी सैनिक समूह हैं जो वहाँ की सरकार के खिलाफ लगातार लड़ रहे हैं। चार्ल्स जब 10 साल का था और एक दिन स्कूल से घर लौट रहा था तो इसी तरह का कोई बागी सैनिक समूह उसे अगुवा करके ले गया। उन्होंने उसे एक बाल-सैनिक बनाने के लिए बन्दूक चलाने की, भूखे रहने की, शहरों में जाकर खाने का सामान और दवाइयाँ चुराने की ट्रेनिंग दी। यह सब न करने पर इन लोगों को बहुत मारा-पीटा जाता था और जान की धमकी भी दी जाती थी।

दो साल पहले, 14 साल की उम्र में चार्ल्स जब एक बार



भोजन चुराने के लिए कुछ और लोगों के साथ शहर गया था, तो वह उनकी नज़रें बचाकर भाग निकला। फिर वह भागते-भागते अपने घर पहुँचा। उसके माँ-पिता उसे वापस पाकर बहुत खुश थे। परन्तु वे डरे भी थे कि कहीं वो सैनिक फिर से चार्ल्स को पकड़ने या बदला लेने न आ जाएँ। इस डर से वे पास के एक सरकारी सैनिक कैम्प में रहने चले गए। और हुआ भी वैसा ही। उसी रात सैनिकों ने उनके घर की तलाशी ली और जब कोई न मिला तो उसे जला डाला। तब से चार्ल्स का परिवार सरकारी सैनिक कैम्प में ही रहता है। अब चार्ल्स फिर से स्कूल जाने लगा है। जजों की टीम में चार्ल्स उन सभी बच्चों की ओर से शामिल है जो युद्ध के कारण सताए जाते हैं और जबरन बाल-सैनिक बनाए जाते हैं।

इसी तरह हरेक बच्चे की ज़िन्दगी की कहानी अलग ही तरह की थी। सब अगर यहाँ



12 साल की कैरन और उसके पापा। कैरन के पापा उसे बहुत प्यार करते हैं पर इतने बूढ़े हैं कि काम पर नहीं जा सकते। इसलिए कैरन को ही कमाना पड़ता था। अब वो कासा अलियांज़ा के घर में रहकर पढ़ती है।

बताने लगूँ तो बात बहुत लम्बी हो जाएगी। सोचती हूँ अगले अंक से हर अंक में इन जजों में से एक की कहानी सुनाऊँ। तुम्हारा क्या ख्याल है? जानना चाहते हो दुनिया के अलग-अलग देशों में रहने वाले इन बच्चों के बारे में?

चलो अब तुम्हें उन समूहों के बारे में थोड़ा बताती हूँ जिनमें से इस साल के पुरस्कार विजेता का चुनाव होना था। वैसे तो यह पुरस्कार इतना खास है कि इसके लिए चुना जाना ही अपने आप में जीतने जैसा है। खास क्यों? इसलिए कि यह बच्चों के हकों के लिए बच्चों द्वारा ही दिया जाने वाला पुरस्कार है।

तो इस बार तीन समूह थे जिनमें से इन जज बच्चों को विजेता चुनना था। एक थे मध्य अमरीका के देशों में सड़कों में जीने वाले बच्चों के बीच काम कर रही संस्था – 'कासा अलियांज़ा'। अपने काम के ज़रिए ये इस इलाके में सड़क पर जीने वाले कई बच्चों को इस बात के लिए राज़ी कर पाए हैं कि वे सड़क छोड़कर इनके द्वारा चलाए जा रहे घरों में रहें। कई बच्चे सड़क की आपाधापी और नशीली दवाओं से मुक्त होकर अब एक नई ज़िन्दगी गढ़ने की कोशिश कर रहें हैं। इन घरों में वो बच्चे भी आकर रह सकते हैं जो या तो बहुत गरीब हैं या फिर घर पर सताए जाते हैं। सबसे बड़ी बात यह

सड़क पर कुछ बच्चों के साथ ताश खेलता रेने। रेने कासा अलियांज़ा में काम करने वाला एक शिक्षक है जो सड़क पर रहने वाले बच्चों को सड़क पर ही पढ़ाता है। बच्चे कहते हैं कि वह उनका अच्छा दोस्त भी है क्योंकि वह ज़रूरत के वक्त प्यार से मदद करता है, पर कभी भाषण नहीं देता।



कि कासा अलियांज़ा बच्चों को कभी भी ज़बर्दस्ती पकड़कर नहीं लाती। इन घरों में केवल वही बच्चे रहते हैं जो खुद से यहाँ आकर रहना चाहते हैं।

कासा अलियांज़ा का उद्देश्य यह है कि इन बच्चों को शिक्षा मिले और ऐसी स्थितियाँ बनें कि बच्चे खुशी से घर लौटकर अपने माता-पिता के साथ रह सकें। इसके साथ ही कासा अलियांज़ा बच्चों के प्रति समाज में मौजूद हिंसा व मार-पीट के खिलाफ भी आवाज़ उठाती है। वह इस बारे में बच्चों के हक में जनमत बनाने का काम भी करती है।

दूसरी संस्था जो इस पुरस्कार के लिए चुनी गई थी, नेपाल की 'माइती' है। नेपाल के गाँवों से छोटी लड़कियों को पकड़कर उन्हें कई बार बेच दिया जाता है। कभी ये लड़कियाँ गुलामी में फँस जाती हैं तो कई बार इन्हें सीमा पार करवाकर भारत के बड़े शहरों में कोठों पर बेच दिया जाता है। फिर इन बच्चियों से जबरन वेश्यावृत्ति करवाई जाती है। माइती इस प्रक्रिया को रोकने के लिए काम कर रही है। यह गरीब परिवारों की लड़कियों को इस बारे में जानकारी देती है कि कैसे वे खुद को इस तरह के चंगुल में फँसने से बचा सकती हैं।



दिलमाया माइती के एक शिविर में आई है। उसे यहाँ यह जानकारी दी जाएगी कि कैसे- कैसे छोटी लड़कियों को फाँसकर ले जाया जाता है। फिर वह अपने गाँव जाकर और लड़कियों को इस बारे में बताएगी।

माइती ऐसी लड़कियों को कोठों से छुड़ाकर एक सम्मान की ज़िन्दगी जीने के लिए पढ़ाई व कोई हुनर आदि सिखाने का काम भी करती है। ऐसी कई लड़कियों को इन्होंने प्रशिक्षित किया है ताकि वे भारत की सीमा पर पुलिस के साथ मिलकर चौकीदारी का काम करें। चूँकि ये लड़कियाँ खुद इस रास्ते से गुज़र चुकी हैं, इसलिए ये सबसे अच्छी तरह समझ सकती हैं कि कैसे बच्चों को सीमा पार ले जाया जाता है। इसीलिए इसे रोकने में ये कारगर साबित होती हैं। माइती का एक भाग भारत के मुम्बई शहर में काम करता है। इसमें काम कर रहे लोग कई बार अपनी जान जोखिम में डालकर लड़कियों को कोठों से छुड़ाकर लाए हैं।

माइती की स्थापना अनुराधा कोइराला ने की थी।



इस साल के पुरस्कार के लिए चुना गया तीसरा नाम दक्षिण अफ्रीका के एक छोटे से लड़के - न्कोसी जॉनसन - का है। न्कोसी अब इस दुनिया में नहीं है। वह पिछले साल सिर्फ 12 साल की उम्र में, एड्स नाम की एक गम्भीर जानलेवा बीमारी के कारण मारा गया। उसे इस पुरस्कार के लिए इसलिए चुना गया क्योंकि वह एड्स से पीड़ित बच्चों के अधिकारों के लिए ताउम्र लड़ता रहा।

एड्स किसी मरीज़ को छूने, हाथ पकड़ने या एक थाली में खाना खाने से भी नहीं फैलता है। फिर भी जानकारी की कमी और गलत धारणाओं के कारण एड्स के मरीज़ों के साथ लोग बहुत छुआछूत बरतते हैं। कई बार तो एड्स वाले बच्चों को स्कूल में दाखिला तक नहीं दिया जाता। तो न्कोसी ने अपनी माँ की मदद से इसलिए भी संघर्ष किया कि ऐसे बच्चों को स्कूल में पढ़ाई करने दिया जाए और उनसे सामान्य बच्चों की तरह ही व्यवहार किया जाए।



जीना कुछ साल पहले मुम्बई से छुड़ाई गई थी। आज वह खुद भारत नेपाल सीमा पर एक बॉर्डर गार्ड है। ताकि और लड़कियाँ वह न सहें जो उसने भुगता है।

न्कोसी का एक सपना था कि गरीब एड्स पीड़ित माँओं और उनके बच्चों के लिए एक सुरक्षित रहने की जगह बनाई जानी चाहिए। एक ऐसी जगह जहाँ वे सम्मान से जी सकें और उनका इलाज भी होता रहे। उपनी मृत्यु से पहले न्कोसी ने अपना यह सपना भी पूरा किया और न्कोसीस हेवन नाम का एक घर बनाया।



न्कोसी

इसके अलावा न्कोसी दक्षिण अफ्रीकी सरकार पर लगातार दबाव बनाता रहा कि वह एड्स पीड़ित माँओं को मुफ्त दवा उपलब्ध कराए। अगर किसी गर्भवती माँ को एड्स हो तो बहुत अधिक सम्भावना होती है कि उसके पेट में पल रहे बच्चे को भी वह बीमारी होगी। परन्तु अब ऐसी दवाएँ भी ढूँढ ली गई हैं जो अगर माँएँ लें तो उनके बच्चों को एड्स का खतरा काफी कम हो जाता है। न्कोसी द्वारा शुरू की गई यह कोशिश अब सफल होने को है क्योंकि अब दक्षिण अफ्रीका के उच्चतम न्यायालय ने भी सरकार को आदेश दिया है कि वे एड्स पीड़ित माँओं को मुफ्त दवा उपलब्ध कराए।

न्कोसी ने अपने जैसे एड्स पीड़ित बच्चों को यह साहस दिलाया कि वे मायूस न हों, बल्कि अपने अधिकारों के लिए लड़ें। उसने सामान्य बच्चों के दिलों में यह बात जगाई कि एड्स से पीड़ित बच्चे भी सामान्य ही हैं, उनसे डरने या दूर भागने की ज़रूरत नहीं। उनसे भी दोस्ती की जा सकती है।

तो यह थे इस साल के पुरस्कार के तीन बेहद काबिल दावेदार। तुम सोच रहे होगे कि आखिर इन तीनों में से पुरस्कार मिला किसको? क्या इनके बारे में पढ़कर तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि तीनों ही इसके काबिल थे? यही बात इस साल की जजों की मीटिंग में भी हुआ। मीटिंग दोपहर के खाने के बाद शुरू हुई थी, लगभग 1.30 बजे। शाम के 6.30 बजे तक चर्चा, तर्क, बहस लगातार चलती रही। फिर रात के खाने की छुट्टी हुई और लगभग एक घण्टे के अन्दर ही सब लोग फिर मीटिंग वाले



म्हनीनी और उसकी सहेली डेलफीना। मनीनी की माँ एड्स के कारण गुज़र गई और अब वह न्कोसीस हेवन में रहती है।



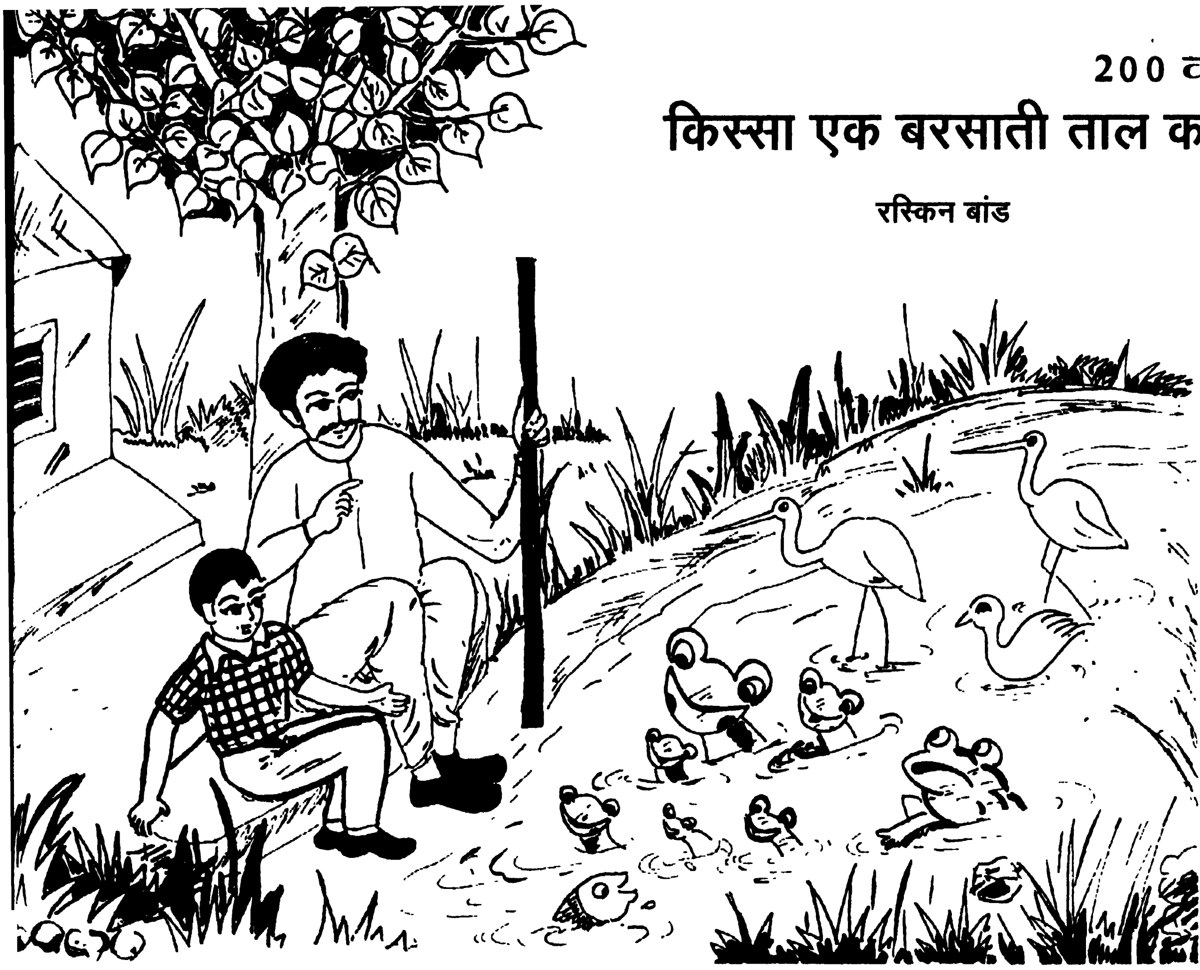
म्होशे जब 9 साल का था तो उसके मम्मी-पापा एड्स के कारण चल बसे। उसे, उसके बड़े भाई और बहन को तो यह बीमारी नहीं है, पर उसके छोटे भाई को एच.आई.वी. है। सभी भाई बहन अब न्कोसीस हेवन में रहते हैं।

कमरे में बन्द हो गए। रात 10.30 बजे तक वही चर्चाएँ फिर चलीं। अन्त तक, पूरी कोशिश के बाद भी पुरस्कार के दो दावेदारों के बीच बराबरी का स्कोर बना रहा। न्कोसी और माइती के काम को लोग बराबरी से पसन्द कर रहे थे। तब जजों ने तय किया कि वे इस साल का पुरस्कार इन दोनों के बीच बराबर-बराबर बाँटेंगे।

तो इस तरह, इस साल का बच्चों के अधिकारों के लिए दुनिया के बच्चों का पुरस्कार मिला नेपाल की 'माइती' और दक्षिण अफ्रीका के 'न्कोसी जॉनसन' को।

● टुलटुल विश्वास

सभी चित्र 'द ग्लोब' पत्रिका से



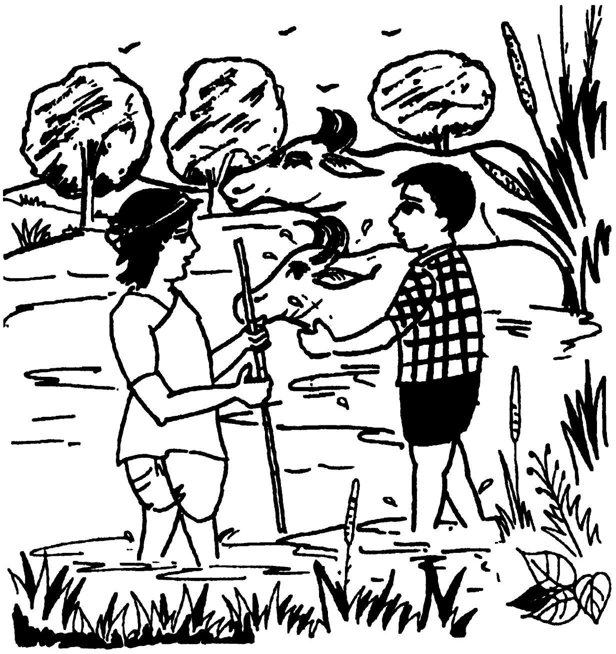
किस्सा एक बरसाती ताल का

रस्किन बांड

मैंने यह कभी भी नहीं सोचा था कि हमारे घर के पिछवाड़े जो बरसात का पानी जमा होकर ताल-सा बन जाता है, उसमें दलदल और कभी-कभार भैंसों के सिवाय कुछ और भी होता होगा। मेरे दादाजी ने ही उस ताल के ऐसे पहलुओं से मेरा परिचय करवाया जो प्रकृति ने इतनी सुंदरता से सँजो रखे थे। तलैया में रहने वाले जीवों का तो वह पूरा संसार ही था।

जब दादाजी ने मुझे पहली बार ताल के संसार से परिचय करवाया, तब हम एक पुराने पीपल के वृक्ष के तले घंटा भर बैठे रहे और पानी पर जमी हरी काई को देखते रहे। दोपहर के स्नान के लिए अभी कोई भैंस पहुँची नहीं थी। ताल का पानी शांत था। पहले दस मिनट तो हमें कुछ नहीं दिखा। फिर एक छोटा सा काला धब्बा पानी के बीचों बीच प्रकट हुआ। जब वह धीरे-धीरे ऊपर उठा तो हमने देखा कि एक मेंढक अपना सिर उठाए बड़ी-बड़ी आँखों से हमारी ओर घूर रहा था। शायद वह देख रहा था कि हम दोस्त हैं या दुश्मन। उसने अपना शरीर पानी के अंदर ही रखा। उसे भय था कि उसका जानी शत्रु, कोई बगुला उसे ढूँढ न रहा हो। जब उसे विश्वास हो गया कि हम बगुले नहीं हैं, तो उसने यह समाचार पानी के अंदर अपने मित्रों और पड़ोसियों को दिया। देखते ही देखते कई सिर और आँखें पानी के ऊपर दिखने लगीं। उनके गले फूल रहे थे और 'वर्क.... वर्क.... वर्क का राग छिड़ गया।

वृक्ष के पास जहाँ पानी कम था, वहाँ हमें एक छाया-सी दिखी। जब हमने उसे अपनी लकड़ी से छुआ तो वहाँ हजारों छोटे-छोटे नन्हें-नन्हें मेंढक जीवित हो उठे और एक-दूसरे को धकियाने लगे। मैंने दादाजी से पूछा, ''ये खाते क्या हैं?'' दादाजी



ने जवाब दिया, ''यह एक दूसरे को खाते हैं। यह सुनने में बुरा लगता है, परंतु इतनी बड़ी संख्या में पैदा होते हैं कि यदि सारे मेंढक बन जाएँ तो यहाँ से हमारे घर तक मेंढक ही मेंढक भर जाएँगे।''

अब मैं ताल पर अपने-आप जाने लगा। मैं अपने जूते उतारकर कीचड़वाले पानी में चला जाता था। तब तक चलता जाता जब तक पानी मेरे घुटने तक न आ जाए। वहाँ लगे हुए कुमुदिनी के फूलों को तोड़ लेता था। एक दिन मैं जब पहुँचा तो देखा कि भैंसें पानी में मौजूद थीं। उनका मालिक, एक लड़का जो मुझसे थोड़ा ही बड़ा होगा, वहाँ तैर रहा था। वह किनारे पर न लौटकर पास की किसी भैंस की पीठ पर चढ़ जाता और भैंस के ऊपर लेटकर गाने लगता।

जब लड़के ने मुझे देखा कि मैं उसकी ओर घूर रहा था तो मुस्कुराया। उसके सफेद दाँत साँवले चेहरे में से चमक रहे थे। मैंने जब उसे बताया कि मैं तैरना नहीं जानता तो उसने मुझे सिखाने का वायदा किया। अपनी भैंस की पीठ पर से पानी में छलाँग लगाकर वह मेरी ओर तैरकर आया। मैं अपनी कमीज़ और हाफ पैंट उतारकर पानी में घुस गया और फूलों के आसपास पाँव मारने लगा।

लड़के का नाम रामू था। वह मुझे रोज दोपहर तैरना सिखाने लगा। गर्मी की दोपहर में जब सब सोते हैं, तब हम मिलने लगे।

शीघ्र ही मैं भी तालाब में तैरकर रामू के साथ, जुगाली करती हुई किसी भैंस के ऊपर चढ़कर बैठ जाता। यह भैंस ऐसे लगती मानो दलदल के समुद्र में कोई चट्टान हो। रामू किसान परिवार का था और स्कूल गया ही नहीं था। परंतु उसे लोक-कथाओं तथा पशु-पक्षियों के विषय में अच्छी जानकारी थी।

मुझे भी भैंसें अच्छी लगती थीं। कभी-कभी हम दोनों अलग-अलग भैंस पर चढ़कर दौड़ लगाया



करते। परंतु भैंस बहुत सुस्त जीव है। इसलिए एक आरामदेह स्थान से दूसरे आरामदेह स्थान तक ही जाती है। कभी उनका दौड़ लगाने का मन न होता तो वहीं लुढ़क पड़तीं और हम दलदल और काई में गिर जाते। जब मैं निकलता तो मेरा रंग भी काई के कारण हरा हो जाता। ऐसे अवसरों पर मैं गुसलखाने के दरवाज़े से घुसकर नहाने के बाद, कपड़े बदलकर ही घर में घुसता।



रामू और मैं भैंस की पीठ पर बैठकर सारस पक्षी को देखते। इनकी गर्दन और टाँगें लम्बी होती हैं। कहते हैं कि सारस आपस में बहुत अच्छे मित्र होते हैं। एक को मारा जाए तो उसका साथी हफ्तों तक वहाँ चक्कर काटता है। कभी-कभी उदासी और गम में मर भी जाता है। गाँव के लोग इन्हें बहुत प्यार करते हैं। अगर इनके बच्चे पाले जाएँ तो अच्छे पालतू बन जाते हैं। मेरे दादाजी ने कभी कोई सारस नहीं पाला, परंतु वे बताते थे कि किसी पालतू कुत्ते से यह कम वफ़ादार नहीं होते। कोई इन्हें छेड़े तो भोंपू की तरह आवाज़ करते हैं।

रामू ने मुझे बताया कि कई पक्षी शुभ माने जाते हैं, जैसे नीलकण्ठ। भगवान शिव ने मानव-जाति को बचाने के लिए विष पी लिया था और वह नीलकण्ठ कहलाए। इसी कारण यह पक्षी भी वंदनीय माना जाता है। ''क्या गिलहरियाँ भी वंदनीय होती हैं? मैंने पूछा।

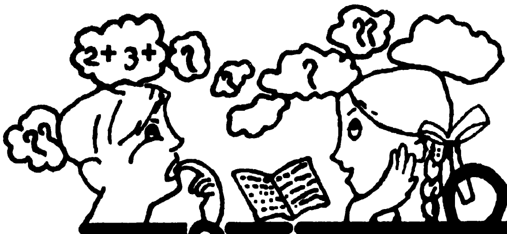
रामू ने बताया, ''भगवान कृष्ण को गिलहरियाँ बहुत प्यारी थीं। वह अपनी बाँह में लेकर अपनी उँगलियों से उन्हें प्यार से दुलराया करते थे। भगवान कृष्ण साँवले थे, इसलिए जो चार गहरी लाइनें गिलहरी के शरीर पर हैं वह भगवान कृष्ण की उँगलियों के निशान हैं।''

मुझे हमेशा यही लगता कि रामू और मेरे दादाजी दोनों की राय में पशुओं और पक्षियों से हमें अच्छा व्यवहार करना चाहिए और उन्हें मारना नहीं चाहिए।

दादाजी अक्सर कहते थे, ''हमें सदैव इनका आदर करना चाहिए और पृथ्वी पर उनके जीवित रहने के अधिकार को मान्यता देनी चाहिए। अब तो सब तरफ इनका रहना दिन पर दिन मुश्किल होता जा रहा है, क्योंकि हम लोग जंगलों का सर्वनाश कर रहे हैं। पशु-पक्षियों को तो वृक्षों के न रहने पर अपना स्थान भी बदलना पड़ता है।''

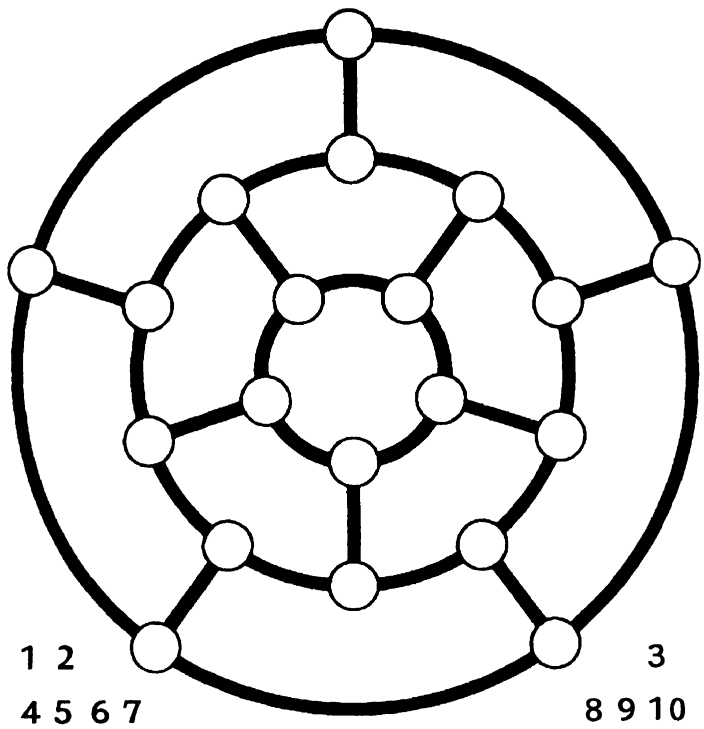
रामू और मैंने कई गरम दोपहरियाँ इसी तालाब पर बिताईं। हमारी मित्रता को केवल वे भैंसें, मेंढक और सारस ही पहचानते थे। उन्होंने हमें अपने संसार का हिस्सा मान लिया था। उनका संसार वही दलदल-भरा आरामदायक ताल था। जब मैं वहाँ से चला आया तो उन साथियों और रामू ने यही समझा होगा कि मैं पक्षियों की तरह एक दिन फिर लौट आऊँगा।

सभी चित्र : आशा रोमन



माथापच्ची

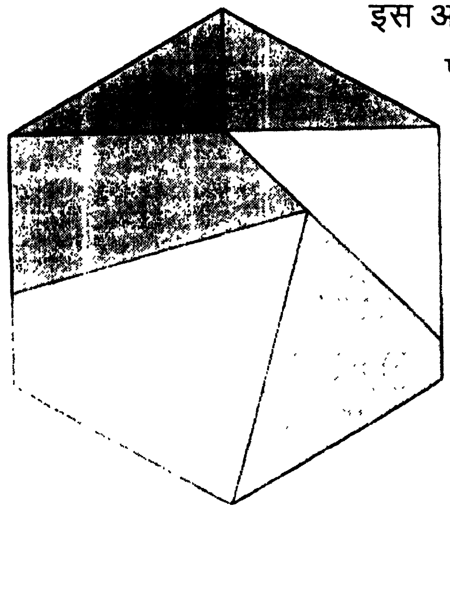
इस गोले में 1 से 20 तक भरना है। –
– एक संख्या एक बार आएगी।
– संख्याएँ क्रम में होनी चाहिए, मतलब 1 से 2 पर, 2 से 3 पर जा सकें।
– कहीं से भी शुरू करो पर एक गोले पर दो बार नहीं आ सकते।



1 2 3
4 5 6 7 8 9 10
11 12 13 14 15 16 17 18 19 20

❷

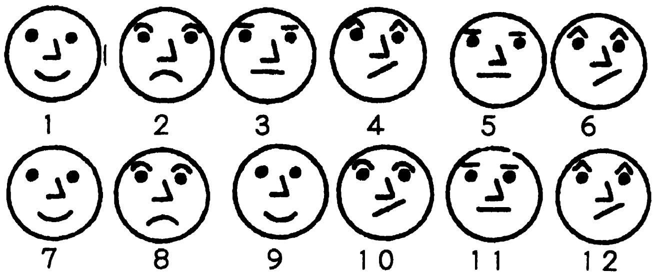
सम संख्या और विषम संख्या से तो तुम वाकिफ होगे ही। सवाल विषम संख्या से जुड़ा है। क्या तुम ऐसी पाँच विषम संख्याएँ (अंक) बता सकते हो जिनका जोड़ बीस हो! हाँ एक अंक दो बार इस्तेमाल कर सकते हो?



इस आकृति को एक कागज़ पर उतार लो। इस षटकोण में छह हिस्से दिख रहे हैं न! इन हिस्सों को काटकर अलग कर लो। फिर इनसे एक त्रिभुज बनाने की कोशिश करो।

3/2 और –3/2 बड़े कमाल की चीज़ हैं।
एक ऐसा अंक है जिससे अगर –3/2 को घटाओ तो हल वही आता है जो +3/2 को उस अंक से गुणा करने पर। अगर ढूँढने की शुरुआत 1 से करोगे तो तुम्हें ज़्यादा देर नहीं लगेगी।

5



यहाँ कुल मिलाकर 12 चेहरे हैं, 6 की दो लाइनों में। हर चेहरे के नीचे उसी भाव वाला चेहरा है। हाँ लेकिन एक जोड़ा बेमेल भी है। बस तुम्हें इसी जोड़े को ढूँढ निकालना है।

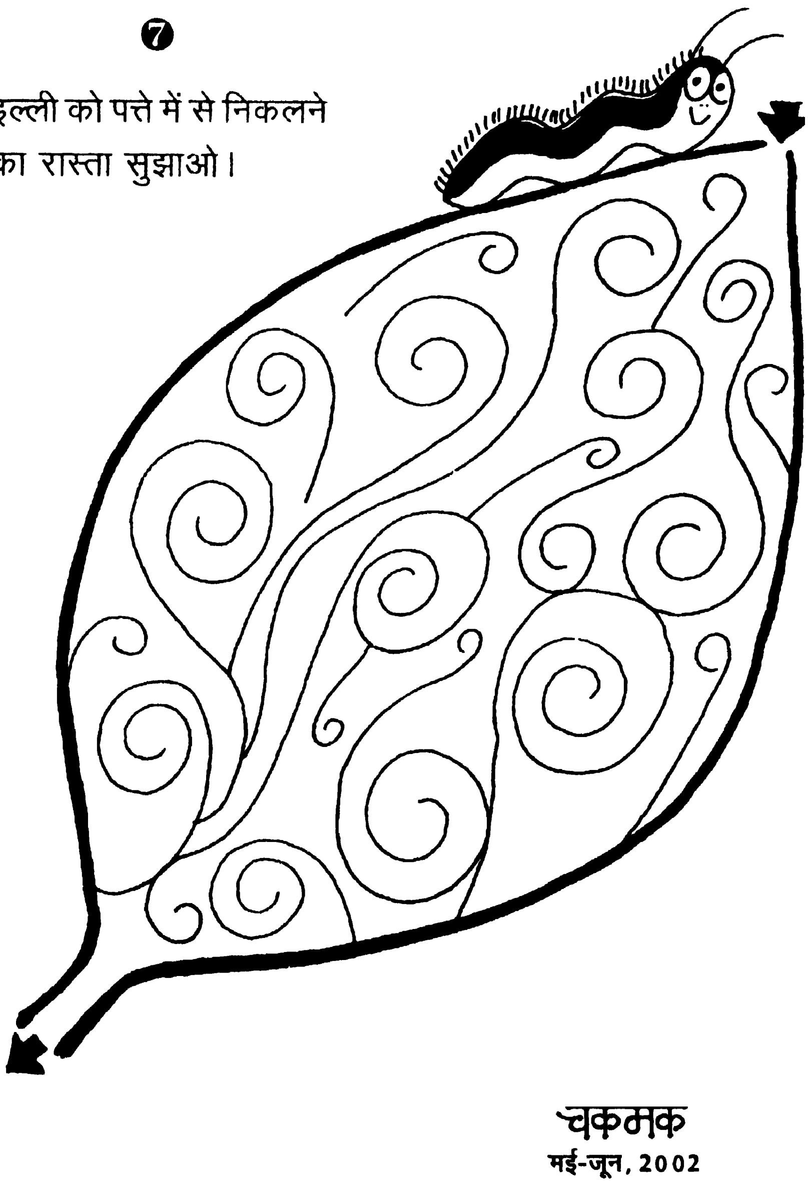
6

काजल, कमर, तलब, दरस, गलत .... हजारों ऐसे शब्द होंगे जो रोज़ हमारी जुबान से गुज़रते हैं। क्या खासियत है इनमें ?

इनकी खासियत यह है कि चाहे पहले और तीसरे अक्षर को जोड़ो या चाहो तो दूसरे तीसरे या फिर पहले तीसरे को। सब के सब से अर्थ वाले अक्षर बनते हैं। मसलन काजल को ही ले लो। काजल से काज, जल, काल बनते हैं। क्या तुम दस मिनिट में ऐसे पाँच शब्द ढूँढ सकते हो ?

7

इल्ली को पत्ते में से निकलने का रास्ता सुझाओ।



8

एक बहुत पुराना बरगद का पेड़ है। उसके तने में पिछले साल राशिद ने एक कील ठोंक दी थी।

यह पेड़ हर साल आधा फीट बढ़ जाता है। पाँच साल में पेड़ कितना बढ़ेगा? और हाँ, कील पहले की अपेक्षा कितनी ऊँची हो जाएगी?

200 वाँ अंक

कैसा मौसम

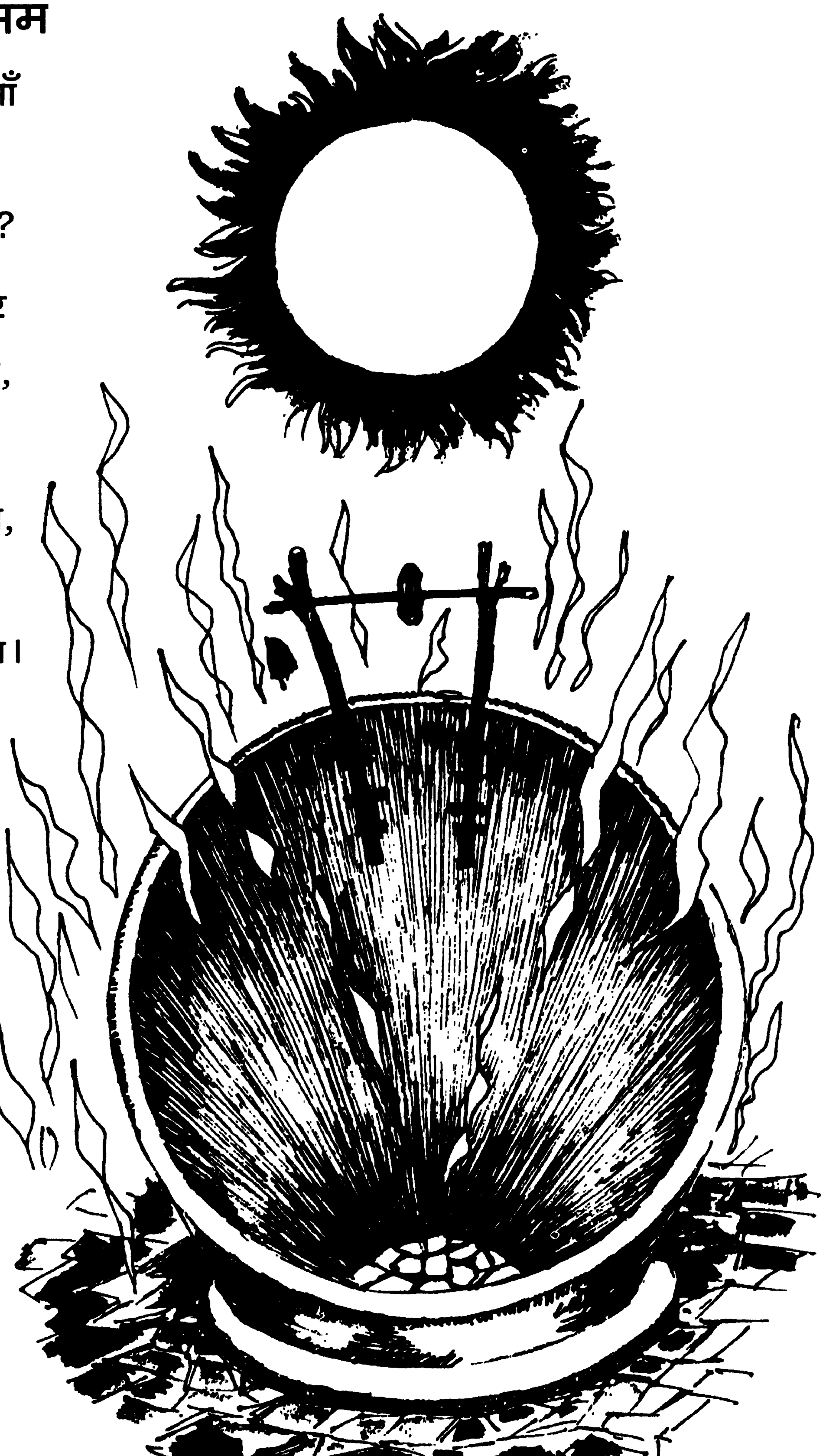
प्यासा खुद ही पड़ा कुआँ
बिना आग के उठे धुआँ
अम्मा, कैसा मौसम है?

गरम हवाए फरफर फर
धूल पाँव की है सिर पर,
अम्मा नाकों में दम है।

काटे नहीं कटे पल-छिन,
इतने फैल गए हैं दिन,
अम्मा, रात बची है कम।

● हरीश निगम

● चित्र : मनोज कुलकर्णी



झूम-झूम चली हवाएँ

हवा, जिसके कहने को तो पंख नहीं हैं मगर वह कहीं भी उड़ सकती है। हवा असल में कई गैसों से मिलकर बनी है। इनके नाम और अनुपात तो तुम भी जानते होगे! हवा में सबसे बड़ा भाग नाइट्रोजन का है, लगभग 78 प्रतिशत। ऑक्सीजन लगभग 21 प्रतिशत और बाकी के 1 प्रतिशत में कार्बन डाइऑक्साइड के अलावा अन्य कई गैसें भी हैं। हमारी पृथ्वी के चारों तरफ इन्हीं सब गैसों की मिली-जुली परत होती है जिसे हम वायुमंडल कहते हैं।

चली हवा

हवा का चलना उसके गर्म और ठण्डे होने से जुड़ा है। सूर्य की रोशनी से धरती गर्म होती है। इसी से हवा भी गर्म होती है। गर्म होने से उसमें नमी की मात्रा कम होती जाती है। और वह हल्की होती जाती है। हल्की हवा अपने स्थान से उपर उठ जाती है। इस खाली जगह को भरने आसपास की ठण्डी हवा आ जाती है।

हर कहीं हवा

कभी-कभी लगता है कि जैसे हवा बहुत शांत है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हवा चलना ही बन्द हो गई।



हो सकता है कहीं हवा किसी चिमनी के धुएँ को एक ओर उड़ा रही हो तो उसी जगह के ऊपर कोई और तेज़ हवा बादलों को दूसरी ओर धकेल रही हो।

जेट हवाएँ

बादलों की ऊँचाई यानी तकरीबन 8 किलोमीटर ऊँचाई पर हवाएँ सबसे तेज़ यानी लगभग 483 किलो मीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से चलती हैं। इन्हें जेट हवाएँ कहते हैं। इन जेट हवाओं की कई धाराएँ एक साथ मिलकर एक बड़ी हवा धारा में बदल जाती हैं जो पृथ्वी का चक्कर लगाती हैं। ये हवाएँ पश्चिम से पूर्व की ओर चलती हैं।

जेट हवाईजहाज़

जब किसी जेट हवाईजहाज़ को एक लम्बी दूरी तय करना होती है और उसका मार्ग पश्चिम से पूर्व ही होता है तो पायलट अपने जेट हवाईजहाज़ को इन्हीं हवाओं में प्रवेश कराता है। इन हवाओं से हवाई जहाज़ को इतना धक्का मिलता है कि कभी-कभी तो उसकी यात्रा का समय आधा हो जाता है।

हवा आई कहाँ से :

वैज्ञानिक कहते हैं कि आज से अरबों साल पहले जब पृथ्वी बनी होगी, तब से अब तक इसके वायुमंडल में बहुत अन्तर आया है।

पृथ्वी शुरू के कई सालों तक गर्म रही। पृथ्वी में दरारें पड़ने या ज्वालामुखी फटने से कई गर्म गैसें बादलों के रूप में बाहर आ गईं। धीरे-धीरे गर्म गैसों के ये बादल पूरे अंतरिक्ष में फैलकर वायुमंडल का हिस्सा हो गए।

इन गैसों से वायुमंडल में कुछ अन्तर तो आया होगा। मगर तब भी यह साँस ले पाने लायक तो नहीं ही हुआ था। क्योंकि वहाँ ऑक्सीजन तो थी ही नहीं

हवाएँ तरह-तरह की

शांत हवा : 1 मील या 1.6 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार। प्रभाव : पत्तियाँ झूलती दिखती हैं।

मंदहवा : रफ्तार – शांत हवा से ज़्यादा लेकिन 28 किलोमीटर प्रति घण्टे से कम। प्रभाव : शाखें झूलने लगती हैं, धूल पत्ते उड़ने लगते हैं।

तेज़ हवाएँ : रफ्तार – 19 से 38 किलोमीटर प्रति घण्टा। छोटे पेड़ उखड़ सकते हैं। झीलों में लहरें उठने लगती हैं।

प्रचण्ड हवाएँ : रफ्तार – 38 से 49 किलोमीटर प्रति घण्टा। पेड़ों की बड़ी-बड़ी शाखाओं को भी तोड़ देती है। यह आसानी से छाते को उलट देती है।

मंद झंझावात : रफ्तार – 50-74 किलोमीटर प्रति घण्टा। ये पेड़ों को जड़ से उखाड़ फेंकती हैं। इनमें पैदल चलना बहुत मुश्किल होता है।

शक्तिशाली झंझावात : मंद झंझावातों की रफ्तार बढ़कर 75 से 88 किलोमीटर प्रति घण्टा हो जाती है। ये छतों को उड़ा ले जाती हैं। इनसे बड़ी इमारतों को नुकसान पहुँच सकता है।

विनाशकारी झंझावात : जब हवाओं की रफ्तार 89 से 120 किलोमीटर प्रति घण्टा हो जाती है तो यह बहुत विनाशकारी हो जाता है।

जो हम साँस में लेते हैं। तब वहाँ नाइट्रोजन, भाप और कार्बन डायऑक्साइड जैसी गैसें ही थीं।

ज्यों-ज्यों ये गैसें और वाष्प ठण्डी हुईं, ये टूटती गईं। इनका एक बड़ा हिस्सा पानी बन गया। इसी पानी से बड़े-बड़े सागर बने। इनके एक छोटे हिस्से से ऑक्सीजन भी बनी। फिर लाखों साल बाद इन्हीं सागरों में छोटे-छोटे असंख्य पौधे पनपे। ये पौधे पानी, धूप और कार्बन डायऑक्साइड से ही अपना भोजन बना लेते थे, जैसे कि आज भी पौधे बनाते हैं। तुम तो जानते ही हो कि जब पौधे भोजन बनाते हैं तो उस क्रिया में ऑक्सीजन भी निकलती है।

ऑक्सीजन की यही छोटी सी मात्रा लाखों सालों में हवा में इतनी मिल गई कि वायुमण्डल में हवा का एक बड़ा हिस्सा बन गई।

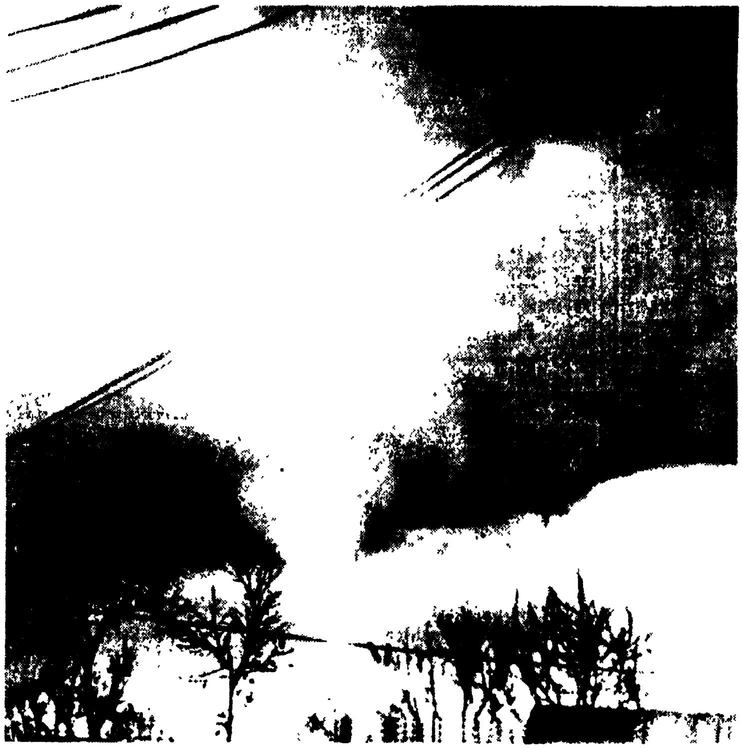
जैसे मछली पानी में रहती है वैसे ही हम हवा में रहते हैं। मछली के चारों तरफ पानी बहता रहता है वैसे ही हमारे आसपास से हवा गुज़रती रहती है। इसका हम पर दवाब भी पड़ता है मगर हमें अहसास नहीं होता है। तुम चाहो तो एक छोटे से प्रयोग से जान सकते हो कि हवा हर चीज़ पर दबाव डालती है।

इसके लिए ज़्यादा कुछ नहीं बस एक पुराना पोस्टकार्ड और एक काँच का गिलास ले आओ।

पहले गिलास को ऊपरी किनारे तक पानी से भर लो। फिर उसके मुँह को पोस्टकार्ड से ढँक दो। इस पोस्टकार्ड पर हथेली रखो और आहिस्ता से गिलास को हथेली पर उल्टा कर दो। अब थोड़ी देर बाद दूसरे हाथ से गिलास के पेंदे को पकड़ो और पोस्टकार्ड के नीचे से हथेली हटा लो। तुम देखोगे कि हथेली हटाने के बाद भी पोस्टकार्ड या पानी नहीं गिरता। कौन सी चीज़ है जो पोस्टकार्ड को गिरने से रोक रही है और वह पानी के वज़न को सँभाले है?

हवा का गुस्सा : तूफान

तूफान 1 0 3 से 1 1 7 किलोमीटर प्रतिघण्टे के हिसाब से चलनेवाली हवाएँ हैं। हालाँकि ऐसी हवाएँ कम ही चलती हैं। दो तरह के तूफान बहुत तबाही मचाते हैं। एक है हरीकेन और दूसरा टॉरनाडो।



हरीकेन

हरीकेन बादलों का सैकड़ों मील चौड़ा वलयाकार घूमता तूफान है। इसके बीच के क्षेत्र में हवा बहुत शांत रहती है। इस क्षेत्र को हरीकेन की आँख कहते हैं। हालाँकि अभी तक यह नहीं जाना जा सका है कि हरीकेन के आने के क्या कारण हैं।

हरीकेन भूमध्यरेखा के पास सागरों के ऊपर से उठते हैं जहाँ की हवा नम गर्म और ठहरी-सी होती है। जब इसकी बड़ी मात्रा गर्म होकर ऊपर उठती है तो ऊँचे-ऊँचे बादल बनते हैं।

कभी-कभी ऐसा होता है कि ये बादल घूमना शुरू कर देते हैं। तब इनके केंद्र की गर्म हवा हरीकेन की आँख बन जाती है और बाहर की हवाएँ 70 से लेकर 1 1 9 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से घूमने लगती हैं। यही तूफान हरीकेन कहलाता है।

कभी-कभी इसकी रफ्तार 3 2 2 किलोमीटर प्रति घण्टे तक पहुँच जाती है, तब ये बड़ा खतरनाक हो उठता है। इसके कारण समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगती हैं जो तटीय भागों में बाढ़ का कारण बन सकती हैं। अगर हरीकेन ज़मीन पर आ जाए तो तबाही मच जाती है। ये बड़े-बड़े पेड़ों, इमारतों को भी आसानी से तहस-नहस कर देता है। अलग-अलग क्षेत्रों में इसको अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। हिंद महासागर में हरीकेन को चक्रवात कहते हैं, जबकि पश्चिमी प्रशांत में इसे टाइफून कहते हैं। ऑस्ट्रेलिया में इसका नाम 'विली-विली' है।

टॉरनाडो

दूसरा खतरनाक तूफान है टॉरनाडो। यूँ तो दुनिया के किसी भी भाग में ये आ सकता है मगर मध्य अमेरिका में ये अक्सर आता रहता है।

टॉरनाडो की एक ख़ासियत यह है कि वह हमेशा दोपहर के कुछ देर बाद आता है जब हवा खूब गर्म और चिपचिपी होती है। हवा के बादल एक लम्बी-सी लाइन में इकट्ठे हो जाते हैं और फिर तेज़ गड़गड़ाहट होती है। फिर नीचे के बड़े बादलों से रोएँदार बादलों की ढेर सारी 'डली' ऊपर उठती हैं। फिर ज़ोरदार बारिश होती है और तेज़ गरज के साथ बिजली चमकती है।

फिर अचानक ही बादलों के नीचे से बड़ी मात्रा

में छोटे-छोटे बादलों की डली नीचे आती हैं। ज़मीन पर तेज़ी से आते वक्त ऐसा लगता है जैसे बादलों से कोई खाँचेदार साँप लटका हो। फिर होती है एक डरावनी गरजन और घूमती हवा चलती है। यही होता है टॉरनाडो।



असल में टॉरनाडो तेज़ी से घूमती एक हवा भरी लम्बी नली है। यह इतनी शक्तिशाली होती हैं कि आसानी से किसी भरे ट्रक को भी उठाकर दूर फेंक सकती हैं।

जब टॉरनाडो आते हैं तब गर्म आर्द्र हवा के नीचे ठण्डी सूखी हवा होती है। जब ऊपर की गर्म हवा और ऊपर उठती है और तेज़ी से ठण्डी होती है पानी और ऊष्मा में अलग-अलग हो जातीहै। तो इससे वर्षा के साथ ओले भी गिरते हैं। ऊपर उठती गर्म हवा का स्थान लेने के लिए आसपास की ठण्डी हवाएँ तेजी से आती हैं और इसलिए ये चक्कर में घूमना शुरू कर देती हैं।

● सुशील शुक्ल

कितनी हवा है कमरे में . . .

ज़रा अंदाज़ा लगाओ कि एक छोटे कमरे में कितनी हवा होगी? कई किलो।

पहले कुछ इक्के–दुक्के लोग ही थे जो यह मानते थे कि हवा का वज़न होता है।

कहते हैं गर्मी के दिनों की एक लीटर हवा का वज़न 1.2 ग्राम होता है। और 1 घन मीटर के बर्तन में 1000 लीटर हवा आएगी। और इस तरह 1000 लीटर हवा का वज़न होगा 1.2× 1000 ग्राम।

यानी 1200 ग्राम मतलब 1.200 किलोग्राम। इसके मायने यह हुए कि 1 घन मीटर जगह में कम से कम 1 किलो 200 ग्राम हवा होगी। अगर मान लें कि एक कमरा जिसका क्षेत्रफल 15 वर्ग मीटर है और ऊँचाई 3 मीटर है। यानी इसका आयतन हुआ – 15 ×3 = 45 वर्ग मीटर।

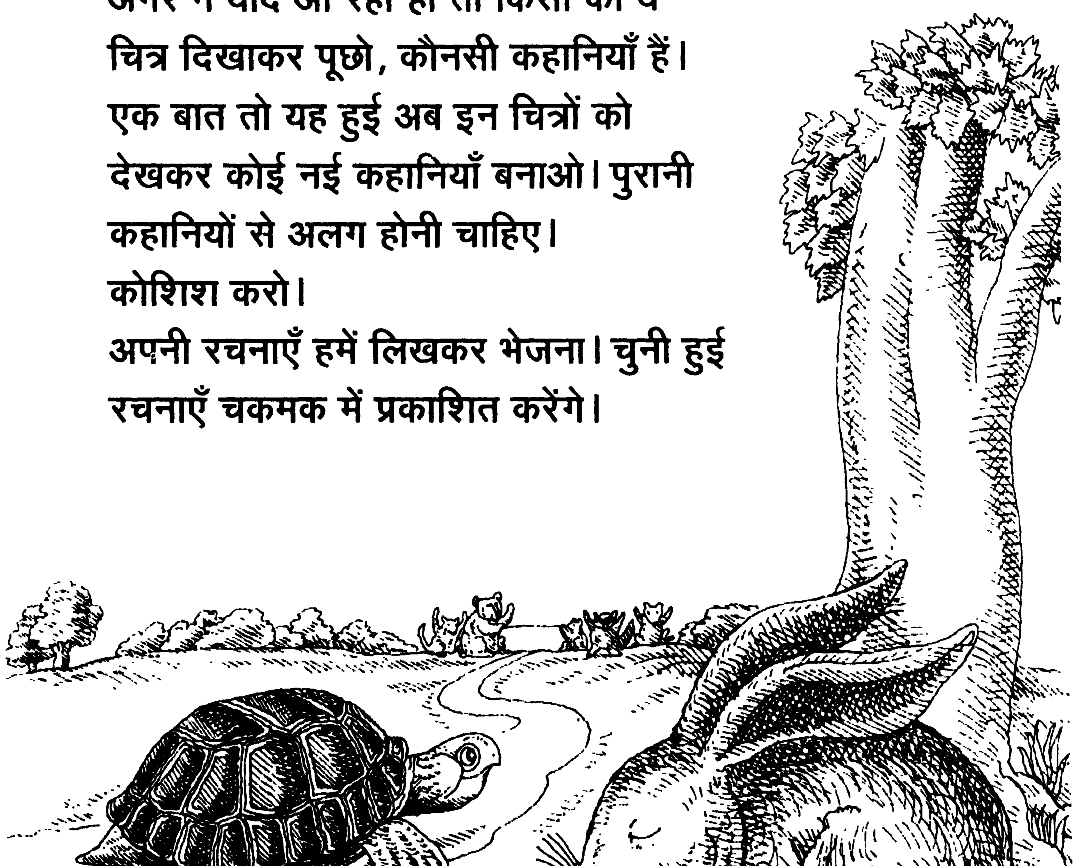
अब यदि एक घन मीटर की जगह में 1200 ग्राम हवा आती है तो 45 घन मीटर में हवा का वज़न – 45×1200 ग्राम होगा।

मतलब 54000ग्राम या 54 किलोग्राम वज़नीहवा इस कमरे में होगी।



इन चित्रों को ध्यान से देखो, तुम्हें इनसे जुड़ी कहानियाँ याद आ जाएँगी। याद आईं! अगर न याद आ रही हों तो किसी को ये चित्र दिखाकर पूछो, कौनसी कहानियाँ हैं। एक बात तो यह हुई अब इन चित्रों को देखकर कोई नई कहानियाँ बनाओ। पुरानी कहानियों से अलग होनी चाहिए। कोशिश करो।

अपनी रचनाएँ हमें लिखकर भेजना। चुनी हुई रचनाएँ चकमक में प्रकाशित करेंगे।



गमला

रावेन्द्रकुमार रवि



स्कूल के गेट के पास आज एक नया ठेलेवाला खड़ा था। ठेले पर गमले रखे थे। गमलों में कई तरह के पौधे लगे थे। कुछ पौधों में फूल भी खिले हुए थे।

बच्चे ठेले के पास आ गए और फूल पौधे देखने लगे। ठेले वाला उन्हें फूल-पौधों के बारे में बताने लगा।

एक बच्चे के घर में कोई पौधा नहीं था। उसने ठेले वाले से पूछा, ''लाल फूल किसमें आता है?''

ठेले वाले ने एक पौधे की तरफ इशारा कर दिया।

''इसका नाम क्या है?'' बच्चे ने पूछा।

''गुड़हल।'' ठेले वाले ने बताया। ''इसमें खूब बड़ा लाल फूल खिलता है।''

बच्चे ने फिर पूछा, ''कितने दिन में खिलेगा?''

''पंद्रह-बीस दिन में।''

''यह पौधा कितने का है?'' बच्चे के मन में उसे घर ले जाने की इच्छा जागी।

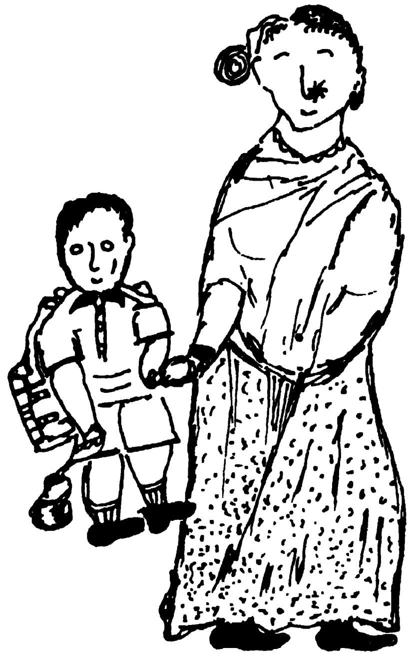
ठेले वाले ने बीस रुपए बताए। तब तक बच्चे को लेने उसकी दीदी आ गई। घर आकर उसने माँ से पैसे माँगे।

माँ ने डाँट दिया, ''गमलों से गंदगी होती है।''



अगले दिन बच्चे ने आइसक्रीम नहीं खाई। ठेले वाले से पूछा, ''क्या आप यहाँ रोज़ आएँगे?''

उसके हाँ कहने पर बच्चे ने उसे एक रुपया दिया और कहा, '' मैं रोज़ एक



रुपया दूँगा। यह पौधा किसी और को मत देना।"

दूसरे दिन बच्चे ने टॉफियाँ नहीं खाईं। तीसरे दिन बच्चे ने ककड़ी नहीं खाई। चौथे दिन . . . ।

बच्चा सपना देखने लगा। जब फूल खिलेगा, तो मधुमक्खी आएगी। गुनगुन करके गाने जैसा कुछ सुनाएगी। पर उसे दूर से देखना होगा। टिड्डा आएगा जो मटक-मटककर नाच दिखाएगा। तितली आएगी। उससे बातें करेगी। वह उसके पंखों में कुछ और रंग भर देगा।

बीस दिन में उसने चकमक की उम्र के बराबर रुपए जमा कर दिए। पौधे में कली आ चुकी थी। बड़ी भी हो गई थी। ठेले वाले ने बताया, "कल इसमें फूल खिल जाएगा।"

बच्चा उदास हो गया। वह चाहता था कि फूल उसके घर पर ही खिले। दीदी आ गई। वह घर चल दिया। उसने बुझे हुए मन से मुड़कर पौधे की ओर देखा। फिर चल दिया।

ठेले वाले को भी बहुत बुरा लगा। अचानक उसकी आँखें चमक उठीं। वह गमला लेकर दौड़ा और बच्चे को दे दिया। दीदी भी पौधा देखकर खुश हो गई। उसने गमला पकड़ लिया और बोला, "तीन रुपए बाद में जमा कर दूँगा।"

ठेले वाले ने कहा, "नहीं, अब और पैसे नहीं देने हैं।"

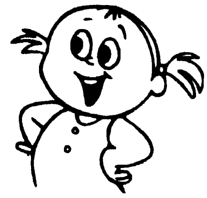
बच्चे ने खुश होकर ठेले वाले को देखा और दीदी से फूल के बारे में बात करता हुआ चल दिया।

रात को सोने से पहले वह फूल के बारे में ही सोचता रहा। सपने में उसने बड़ा-सा फूल देखा और देखा कि वह फूल के ऊपर नाच रहा है। टिड्डा, तितली और मधुमक्खी भी उसके साथ नाच रहे हैं।

सुबह जब उसकी आँख खुली तो वह पौधे की ओर दौड़ा। सुन्दर फूल खिलखिलाता हुआ झूम रहा था। एक तितली उस पर बैठी झूल रही थी। बच्चा उससे बात करने उसके पास गया। तितली डर गई। उड़ने लगी। बच्चा बोला, "तितली रानी, आना। कल फिर मिलने आना।

● चित्र : हूताराम अधिकारी



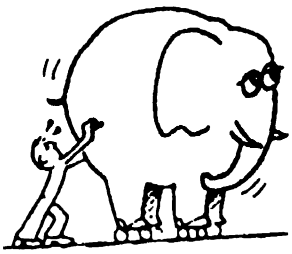


ाटाकशी

तुमने अखबार या पत्रिकाओं में कार्टून देखे होंगे। जिनमें हर रोज़ घटने वाली घटनाओं पर, किसी बात को लेकर व्यंग्य या छींटाकशी की जाती है। कभी-कभी लोग इस तरह व्यंग्य करने से नाराज़ भी हो जाते हैं लेकिन ज़्यादातर लोग इससे मज़े लेते हैं।



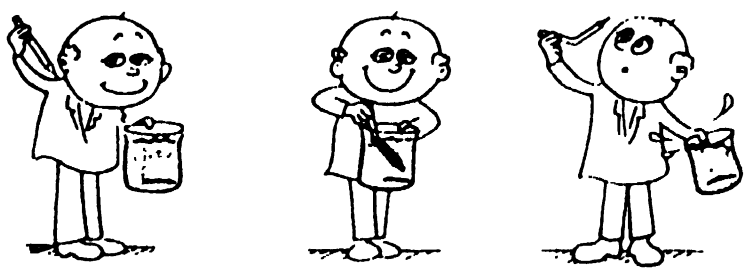
व्यंग्य करना भी एक कला है। इस तरह हम कही जाने वाली बात का मज़ा लेते हुए उसकी गम्भीरता को भी समझ सकते हैं। ऐसे ही विज्ञान की कुछ घटनाओं और सिद्धांतों पर मज़ेदार छींटाकशी की जाती रही है। यहाँ पढ़ो और देखो ऐसी ही कुछ बातें।



मुसीबत कितनी ही बड़ी क्यों न हो लेकिन चक्कों पर हो तो निपटना आसान होता है।

किसी बरसाती दिन आपका छाता उलट जाए तो छाते की कमानी को कमज़ोर मत बताना। यह सब बर्नोली के सिद्धांत की वजह से होता है।





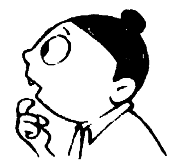
एक माध्यम से दूसरे माध्यम में जाती हुई प्रकाश किरणें मुड़ती हैं। लेकिन यह क्या हुआ?

बर्नोली का सिद्धांतः
किसी द्रव (गैस भी) की दाब ऊर्जा, स्थितिज ऊर्जा एवं गतिज ऊर्जा का जोड़ हर बिन्दू पर निश्चित होता है। जिन बिन्दुओं पर द्रव या गैस का दाब अधिक होता है वहाँ पर द्रव या गैस का वेग कम होता है। और जहाँ दाब कम होता है वहाँ प्रवाह वेग अधिक होता है। यानी छाते की ऊपरी सतह पर तेज़ हवाओं से दाब पहले की अपेक्षा कम हो जाएगा। और छाते के अंदर का दाब भी वायुमंडलीय दाब के आसपास या कुछ कम होगा। हाँ लेकिन ऊपरी सतह का दाब निश्चित रूप से अंदर की तरफ के दाब से कम होगा। इसी दाब के अंतर के कारण छाता पलट जाता है।

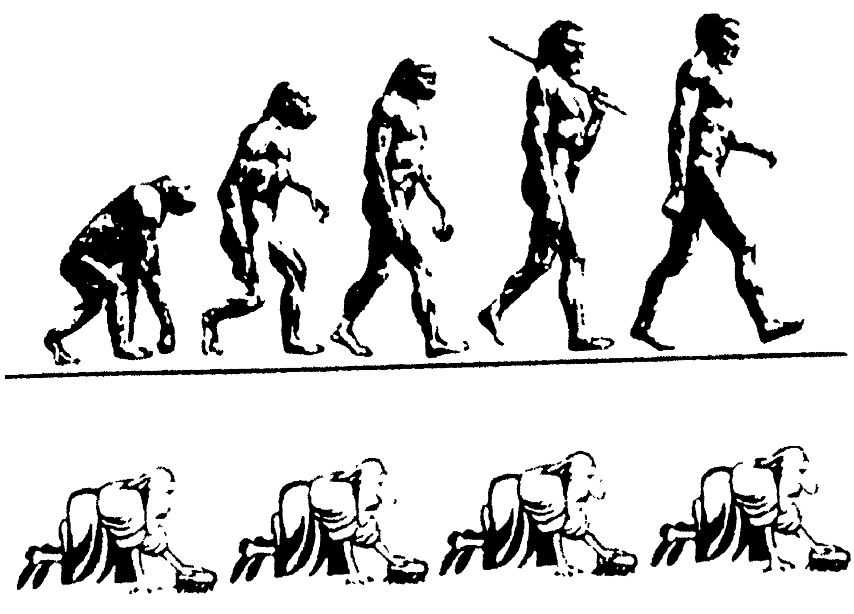
एक दिन जब हवा बिल्कुल भी न बह रही हो



उस दिन यदि पाल वाली नाव की सवारी
करनी हो तो यह तरकीब कैसी रहेगी?



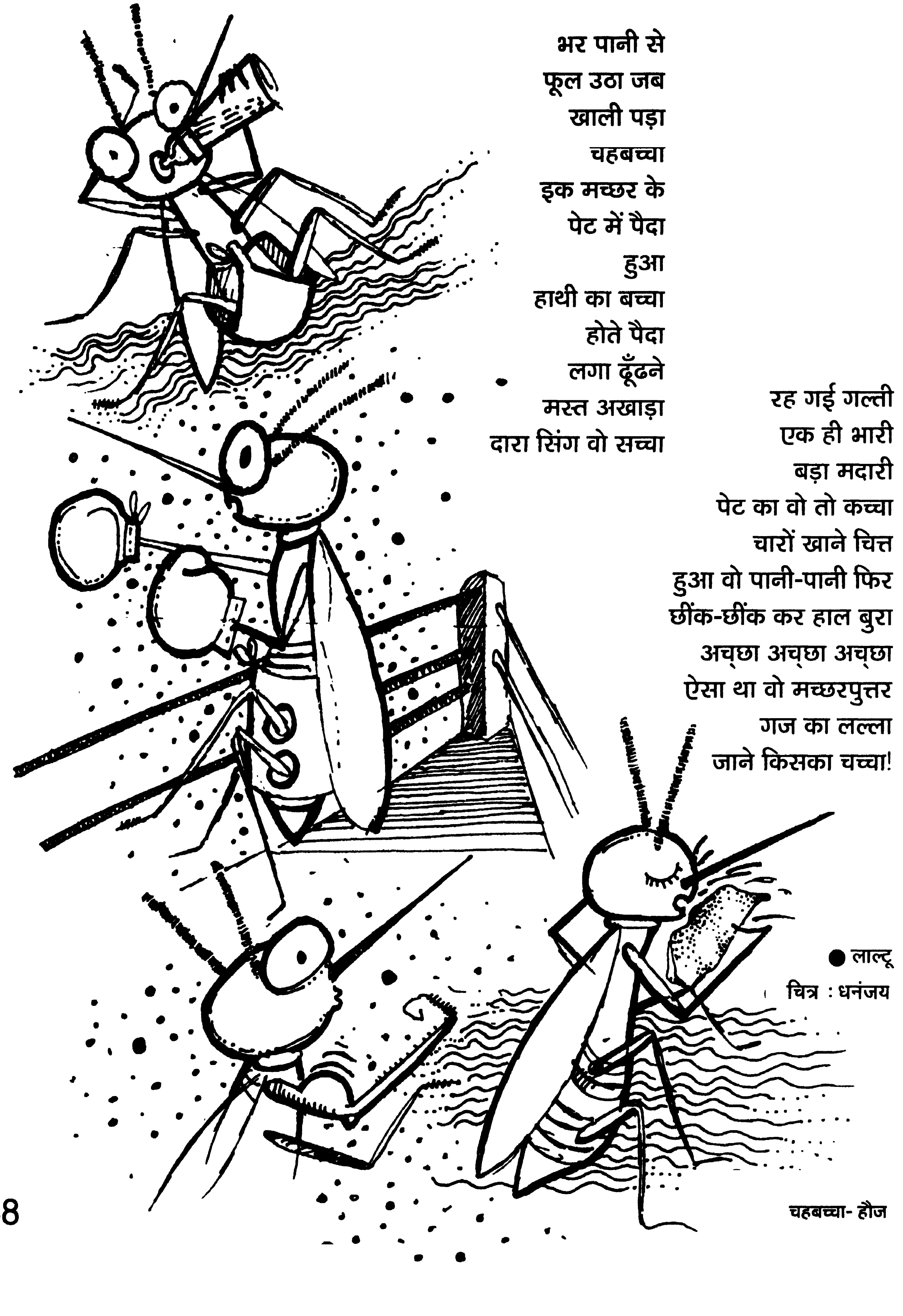
मानव के विकास सम्बंधी चित्रों में हमेशा झुके हुए नाटे मर्द से अकड़कर चल रहे ताकतवर मर्द को दिखाया जाता है। क्या इस दौरान औरतों का कोई विकास नहीं हुआ है?



ये चित्र और सामग्री –पॉल जी हेविट की कॉन्सेप्चुअल फिजिक्स और स्टीफन जे गोल्ड की वन्डरफुल लाइफ से साभार।

प्रस्तुति : माधव केलकर

मच्छर पुत्तर गज का लल्ला



भर पानी से
फूल उठा जब
खाली पड़ा
चहबच्चा
इक मच्छर के
पेट में पैदा
हुआ
हाथी का बच्चा
होते पैदा
लगा ढूँढने
मस्त अखाड़ा
दारा सिंग वो सच्चा

रह गई गल्ती
एक ही भारी
बड़ा मदारी
पेट का वो तो कच्चा
चारों खाने चित्त
हुआ वो पानी-पानी फिर
छींक-छींक कर हाल बुरा
अच्छा अच्छा अच्छा
ऐसा था वो मच्छरपुत्तर
गज का लल्ला
जाने किसका चच्चा!

● लाल्टू
चित्र : धनंजय

चहबच्चा- हौज


चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक
चकमक

12509